भारत की आर्थिक समस्यायें

(Economic Problems of India)

[विक्रम व सागर विश्वविद्यालयों के बी० कॉम० त्रिवर्षीय डिग्री कोर्स एवं
अन्य भारतीय विश्वविद्यालयों के स्वीकृत पाठ्य क्रमानुसार]

प्रथम संस्करण

आगरा
साहित्य भवन
शिक्षा सम्बन्धी साहित्य के प्रकाशक

अन्य उपयोगी प्रकाशन–

१ कम्पनी अधिनियम एवं सचिविय पद्धति
(Company Law & Secretarial Practice)
लेखक–एस० एम० शुक्ल

२ भारत में उद्योग लेखक–डा० एस० सी० सक्सेना

३ भारतीय व्यापार एवं परिवहन (प्रश्नोत्तर)
प्राक्कथन लेखक–डा० एस० डी० सिंह चौहान

मूल्य सात रुपये मात्र

प्रकाशक–साहित्य भवन
२७३२ सुई कटरा,
आगरा।

मुद्रक – आगरा पापूलर प्रेस,
मोतीकटरा,
आगरा।

भूमिका

प्रारम्भिक :—

वर्तमान युग हमारे देश के लिये 'आर्थिक विकास का युग' है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत की आर्थिक समृद्धि के लिए हमने प्रथम पंच-वर्षीय योजना का निर्माण किया, जिसकी सफल पूर्ति सन् १९५५ में हुई। तत्पश्चात, देश में तीव्र औद्योगीकरण के लिए हमने द्वितीय पंच वर्षीय योजना का निर्माण किया, जिसके अन्तर्गत कुटीर, लघु एवं विशाल उद्योगों की प्रगति के लिए समन्वित योजनायें बनाई गई है। भारत के प्रत्येक क्षेत्र में आज आर्थिक पुनरुत्थान की एक लहर सी दिखलाई पड़ती है। प्रत्येक नागरिक के हृदय में उत्साह है और वह अपने राष्ट्र के निर्माण में तन्मय सा दृष्टिगत होता है। शासकीय एवं नागरिक दोनों ही क्षेत्रों में राष्ट्र के पुनर्निर्माण के लिये आयोजित ढंग से कार्य हो रहा है। स्वच्छन्द क्रीड़ा करने वाली नदियों को नियन्त्रण में रखकर विकास योजनायें कार्यान्वित की जा रही हैं। सस्ती जल शक्ति प्राप्त करने के लिये बड़ी बड़ी योजनायें चल रही हैं। भिलाई, रूरकेला तथा दुर्गापुर के विशालकाय लौह-इस्पात के कारखाने औद्योगिक क्षेत्र में हमारी प्रगति के द्योतक हैं। कृषि उत्पादन के बढ़ाने के लिये सहकारी कृषि के विकास पर बल दिया जा रहा है। यातायात के साधनों की भी वृद्धि हो रही है। परन्तु, इतना सब होते हुए भी जन साधारण सुखी नहीं है। कृषि, उद्योग, औद्योगिक अर्थ-प्रबन्धन, आर्थिक नियोजन आदि सभी क्षेत्रों में कुछ न कुछ उलझनें हैं। उदाहरण के लिए, कृषि के विकास में भारतीय किसानों की ऋणग्रस्तता, भूमि का उप विभाजन व अपखन्डन, ग्रामीण साख आदि से सम्बन्धित अनेक समस्याएँ हैं। सहकारी कृषि का भी बड़े जोरों के साथ विरोध किया जा रहा है। बिचारे भूमिरहित कृषकों की भी बड़ी गहन समस्या है, जिसके निवारणार्थ संत बिनोवा भूदान आंदोलन में संलग्न हैं। इसी प्रकार भारत के प्राय सभी संगठित उद्योग, जैसे सूती वस्त्र मिल उद्योग, लौह एवं इस्पात उद्योग जूट उद्योग आदि, विवेकीकरण, आधुनिकीकरण, अर्थाभाव आदि समस्याओं से ग्रस्त हैं। जनाधिक्य की समस्या भी हमारे देश के लिए एक सिर दर्द है। 'श्रम' का क्षेत्र भी समस्याओं से खाली नहीं है। इन आर्थिक समस्याओं को बिना हल किए हम मनोवांछित आर्थिक विकास नहीं कर सकते। प्रस्तुत पुस्तक में देश की विविध आर्थिक समस्याओं पर गम्भीरता से प्रकाश डाला गया है तथा उनको सुलझाने के लिए किए गए प्रयत्नों व सुझावों की भी विवेचना की गई है।

पुस्तक की उपयोगिता —

"भारत की आर्थिक समस्याएँ" शीर्षक विषय विक्रम व सागर विश्वविद्यालयों

की त्रिवर्षीय वाणिज्य कक्षाओं के लिए अनिवार्य है। नियत पाठ्य-क्रम के अनुसार अभी तक इस विषय पर कोई भी पुस्तक नहीं थी। विद्यार्थियों को 'भारतीय अर्थशास्त्र' अथवा भारत के आर्थिक विकास से सम्बन्धित पुस्तकों में से आवश्यक सामग्री निकालनी पड़ती थी। उनकी इस कठिनाई को दूर करने के उद्देश्य से ही प्रस्तुत पुस्तक की रचना की गई है। आशा ही नहीं वरन् पूर्ण विश्वास है कि अब हमारे विद्यार्थियों को इस विषय की सामग्री के हेतु कहीं अन्यत्र भटकना नहीं पड़ेगा वरन् यह एक पुस्तक ही "कल्पवृक्ष' की भांति उनकी समस्त आवश्यकताओं की सतुष्टि कर देगी।

प्रस्तुत पुस्तक को सात लघु पुस्तिकाओं में बांटा गया है —कृषि, उद्योग, औद्योगिक अर्थ प्रबन्धन भारत की जन-संख्या भारत मे आर्थिक नियोजन की आधुनिक प्रवृत्तियां और भारत की श्रम समस्याऐं। प्रथम पांच पुस्तिकाऐं सागर व विक्रम दोनों ही विश्वविद्यालयों की आवश्यकताओं की पूर्ति करती है, शेष दो पुस्तिकायें केवल विक्रम विश्वविद्यालय के लिए हैं।

कतिपय विशेषतायें :—

(i) पुस्तक की रचना अत्यन्त सरल व मुहावरे दार हिन्दी में की गई है।

(ii) "भारत सन् १९६०' व अन्य आर्थिक व वाणिज्यिक पत्र-पत्रिकाओं के आधार पर नवीनतम आंकड़ों का समावेश किया गया है।

(iii) परीक्षा की दृष्टि से अधिक उपयोगी बनाने के लिए प्रत्येक अध्याय के अन्त में अभ्यास के प्रश्न दिए गए हैं तथा पुस्तक के अन्त में सागर व विक्रम विश्वविद्यालयों की सन १९६० की परीक्षा के प्रश्न-पत्र भी दे दिए गए हैं।

(iv) पुस्तक के प्रारम्भ में विक्रम व सागर विश्वविद्यालयों का सन् १९६१ की परीक्षा के हेतु निर्धारित पाठ्यक्रम भी दिया गया है।

आभार प्रदर्शन :—

प्रस्तुत पुस्तक की रचना में अनेक प्रमाणिक पुस्तकों, पत्र पत्रिकाओं एवं विशेषज्ञों से पर्याप्त सहायता मिली है जिनके प्रति कृतज्ञता प्रगट करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। पाण्डुलिपि के लेखन में श्री एम० एम० धारीवाल ने जो सहयोग दिया है उसके लिए वे धन्यवाद के पात्र है।

सुझाव के हेतु मेरा सबको निमन्त्रण है।

आनन्द निवास,
जेंसव परेड,
ग्वालियर।

एस० सी० सक्सेना

SYLLABUS OF THE VIKRAM UNIVERSITY

(For B Com Part II of the Three Years Degree Course)

ECONOMIC PROBLEMS OF INDIA

1 AGRICULTURE

Causes of Rural indebtedness Causes and evils of subdivision and fragmentation of holdings Consolidation of holdings with special reference to M P Co-operation Co-operative Farming, Rural Finance Community Projects

2 INDUSTRIES

A brief survey of the following industries

1 Cotton textile
2 Sugar,
3 Iron and Steel and
4 Jute

Problems of Industrial Finance

3 TRADE UNION MOVEMENT IN INDIA

Indian Labour problems

4 RECENT TRENDS IN ECONOMIC PLANNING IN INDIA

5 INDIA S POPULATION PROBLEM

SYLLABUS OF THE SAUGAR UNIVERSITY

(For B Com Preliminary)

ECONOMIC PROBLEMS OF INDIA

1 AGRICULTURE

Causes of Rural indebtedness A brief survey of important legislative measures against this evil, Sub division and fragmentation of Holdings, Consolidation of Holdings with special reference to M P Rural Finance—Short and long term Co operative Societies The problem of rural finance Problems of landless labour Community projects

2 INDUSTRIES

A brief survey of the following Indian Industries

1 Cotton ,

2 Iron and Steel ,

3 Sugar ,

4 Jute , and

5 Coal

Problems of Industrial Finance

3 GROWTH OF POPULATION IN INDIA AND ITS PROBLEMS

विषय-सूची

अध्याय		पृष्ठ

प्रथम भाग

प्रथम पुस्तिका–परिचय

द्वितीय पुस्तिका–कृषि

द्वितीय भाग

तृतीय पुस्तिका–उद्योग

चतुर्थ पुस्तिका–औद्योगिक अर्थप्रबन्धन

पचम पुस्तिका—भारत की जन-सख्या

षष्ठम् पुस्तिका—भारतीय श्रम समस्याऐं

सप्तम पुस्तिका—भारत में आर्थिक नियोजन की आधुनिक प्रवृत्तिया

परीक्षा प्रश्न पत्र १९६०

अध्याय १

विषय-प्रवेश

(Introduction)

प्रारम्भिक—

वर्तमान युग मे 'अर्थशास्त्र' के अध्ययन का महत्व दिन प्रति दिन बढता ही जा रहा है। अर्थशास्त्र के अध्ययन के द्वारा हम मानव के आर्थिक जीवन से सम्बन्धित अनेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हैं, किन्तु अर्थशास्त्र का महत्व केवल मानव जीवन की आर्थिक पृष्ठभूमि के सम्बन्ध मे अनेक सिद्धान्तो के प्रतिपादन मात्र मे ही नही है, वरन् इसका महत्व इस कारण भी अधिक है कि इसके द्वारा हम अपने दैनिक व्यावहारिक जीवन की जटिल से जटिल समस्याओ को सुलझाने मे समर्थ होते हैं। प्रत्येक देश मे कालान्तर से ही नवीन परिस्थितियो के फलस्वरूप नवीन समस्याएँ उत्पन्न होती रही हैं। आखेट-युग के मानव की आवश्यकताएँ चाहे कितनी ही नगण्य व सरल रही हो, उसके लिए भी आर्थिक समस्याएँ अवश्य रही होगी और उसने उन पर अपने ढग से विचार भी किया होगा। फिर जैसे-जैसे मनुष्य का बौद्धिक, सामाजिक एव सास्कृतिक विकास होता गया, उसकी आर्थिक, समस्याओ का स्वरूप भी परिवर्तित होता गया। आधुनिक वैज्ञानिक युग मे भी जबकि हम चन्द्रलोक की यात्रा के लिए प्रयत्नशील हैं, आर्थिक समस्याओ का अभाव नही है। सयुक्त राष्ट्र अमेरिका व रूस जैसे उन्नतिशील औद्योगिक राष्ट्र भी अनेक आर्थिक समस्याओ का सामना कर रहे हैं, फिर भारत जैसे अर्द्ध-विकसित राष्ट्र के लिए क्या कहा जाय। अर्थशास्त्र का प्रमुख उद्देश्य इन आर्थिक समस्याओं के समाधान के लिए उपयुक्त उपाय प्रस्तुत करना है, जिससे देश एव मानव समाज का अधिकतम भौतिक कल्याण हो सके। 'भारत की आर्थिक समस्याओ' के अध्ययन का भी यही उद्देश्य है।

वर्तमान युग हमारे देश के लिए आर्थिक विकास का युग है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत की आर्थिक समृद्धि के लिए हमने प्रथम पच-वर्षीय योजना का निर्माण किया, जिसकी सफल पूर्ति सन् १९५५ मे हुई। तत्पश्चात् देश मे तीव्र औद्योगीकरण के लिए हमने द्वितीय पच-वर्षीय योजना का निर्माण किया, जिसके अन्तर्गत कुटीर लघु एव विशाल उद्योगो की प्रगति के लिए समन्वित योजनाएँ बनाई गई हैं। भारत

के प्रत्येक क्षेत्र मे आज आर्थिक पुनरुत्थान की एक लहर सी दिखलाई पड़ती है। शासकीय एवं नागरिक दोनों ही क्षेत्रों मे राष्ट्र के पुनर्निर्माण के लिए आयोजित ढंग से काम हो रहा है। स्वच्छन्द क्रीडा करने वाली नदियों को नियन्त्रण मे रखकर विकास योजनाएँ कार्यान्वित की जा रही है। सस्ती जल शक्ति प्राप्त करने के लिए बड़ी बड़ी योजनायें चल रही हैं। भिलाई, रूरकेला व दुर्गापुर के विशाल उद्योगों ने लोहा उगलना शुरू कर दिया है। यातायात के साधनों की भी वृद्धि हो रही है। कृषि के क्षेत्र मे उत्पादन बढाने के उद्देश्य से सहकारी कृषि पर बल दिया जा रहा है इत्यादि। परन्तु इतना सब होते हुए भी जन साधारण सुखी नही है। कृषि, उद्योग औद्योगिक अर्थ प्रबन्धन आर्थिक नियोजन आदि सभी क्षेत्रों मे कुछ न कुछ उलझनें है। उदाहरण के लिए कृषि के विकास मे भारतीय किसानों की ऋण ग्रस्तता, भूमि का उप विभाजन व अपखण्डन, ग्रामीण साख आदि से सम्बन्धित अनेक समस्याएँ है। सहकारी कृषि का भी बड़े जोरों के साथ विरोध किया जा रहा है। बिचारे भूमि रहित कृषकों की भी बड़ी दयनीय दशा है। इसी प्रकार भारत के प्राय सभी सगठित उद्योग, जैसे सूती वस्त्र मिल उद्योग लोह एव इस्पात उद्योग जूट उद्योग, आदि वैज्ञानिकरण, आधुनिकीकरण अर्थाभाव आदि समस्याओं से ग्रस्त है। जनाधिक्य की समस्या भी हमारे आर्थिक विकास मे बाधक सिद्ध हो रही है। इन समस्याओं के निवारणार्थ हम तृतीय पंच वर्षीय योजना को कार्यान्वित करने जा रहे हैं। आज हमको एक युग का निर्माण करना है एक नई आशा का सचार करना है, अथवा यों कहिए कि हमें देश मे एक प्रगतिशील आर्थिक व्यवस्था का निर्माण करना है **किन्तु आर्थिक समस्याओं की पूर्ण जानकारी के अभाव में देश में प्रगतिशील आर्थिक व्यवस्था का निर्माण पूर्णतया असम्भव है।**

आज से २५-३० वर्ष पूर्व जब रूस मे पंच-वर्षीय योजना का श्रीगणेश किया गया था, उस समय वहा के नागरिकों में उत्साह और आनन्द की एक नई लहर व नई उमग पैदा हो गई थी। सारा देश पंच वर्षीय योजना चार वर्ष मे पूरी करो के नारे से गुन्जायमान हो उठा था। रूस का प्रत्येक पुरुष, प्रत्येक महिला, यहा तक कि छोटे-छोटे बालक व वृद्ध—सभी उस योजना को पूर्ण करने मे अपना अपना योग देने लगे थ। इसी प्रकार सयुक्त राष्ट्र अमेरिका मे भी प्रेसीडेन्ट रुजवल्ट ने घोर आर्थिक सकट के दिनो में जब देश से अपील की थी कि 'बैंकों मे राशि जमा करो' तब सारे देश मे उत्साह की नई लहर दौड गई थी। समस्त देश ने आर्थिक सकट की अवधि को हसते हसते पार कर लिया था। इन दोनों उदाहरणों मे वहा की सफलता का रहस्य छिपा है। सफलता का एक मात्र कारण था जनता *का अर्थ समस्याओं के प्रति सचेत होना और सरकार को योग देने में आगरूक* रहना। अत स्पष्ट है कि **किसी देश को आर्थिक समृद्धि केवल सरकार के बनाए गए कानूनों अथवा आर्थिक योजनाओं पर भी निर्भर नहीं करती। वह निर्भर करती है जनता के उत्साहपूर्ण सहयोग पर। परन्तु जनसाधारण का सहयोग तब तक प्राप्त**

वाले उपायों के विश्लेषण को समष्टि रूप से हम 'भारतीय अर्थशास्त्र' से अभिहित कर सकते है। यह राष्ट्रीय दृष्टिकोण से देश की आर्थिक स्थिति का अध्ययन है।

विषय का क्षेत्र—

भारत की आर्थिक समस्याओ के अध्ययन का क्षेत्र अत्यन्त ही व्यापक है। भूतकाल मे हमारे देश का आर्थिक कलेवर कैसा था वर्तमान युग मे उसमे कहा तक सुधार हो सका है एव भविष्य मे आर्थिक विकास किस प्रकार होना है, इन सब बातो का विषद विवेचन ही भारतीय आर्थिक समस्याओ के अध्ययन का क्षेत्र है। विश्व के अन्य सभी देशो की भाँति भारत का आर्थिक कलेवर भी अनेक सीढियो के पार करने के बाद वर्तमान स्थिति पर पहुँचा है। भारत की आर्थिक समस्याओ के अन्तर्गत हम देश के प्राचीन आर्थिक सगठन, उसके पश्चात् हुए परिवतन तथा उन परिवर्तन के परिणामो का विश्लेषण करते हैं। किन्तु हमारा क्षेत्र यही समाप्त नही हो जाता। प्रथम विश्व युद्ध से लगाकर सन् १६२६-३० की विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी द्वितीय विश्व युद्ध और इसके बाद तक की आर्थिक प्रगति की प्रत्येक समस्या का अध्ययन एव विश्लेषण हमारे अध्ययन का क्षेत्र है।

१५ अगस्त सन् १६४७ के पूव लगभग डढ सौ वर्षों तक हम दासता की शृङ्खला मे जकडे रहे। यदि राज्य की आर्थिक नीति हमारे प्रतिकूल न होती तो सम्भव था कि हम उस युग मे ही कही आगे बढ गये होते। प्रथम महासमर के पूर्व तक हमारे देश मे मुख्यत वस्त्र मिल उद्योग, जूट उद्योग एव चाय उद्योग ही वृहत स्तर पर स्थापित हो सके थे। युद्ध के बाद स्वर्गीय बापू के स्वदेशी आन्दोलन एव औद्योगीकरण की माग के फलस्वरूप राजकीय नीति मे किंचित परिवर्तन हुआ और कुछ उद्योगो को सरक्षण प्रदान किया गया। सरक्षण की गोद मे लोह एव इस्पात उद्योग, चीनी उद्योग, सीमेन्ट उद्योग कागज उद्योग दियासलाई उद्योग आदि ने विशेष प्रगति की। तत्पश्चात् सन् १६२६-३० की विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी मे भारतीय कृषि एव उद्योग दोनो के ही पैर लडखडाने लगे। सन् १६३६ के द्वितीय विश्व युद्ध ने औद्योगीकरण के क्रम को पुन प्रोत्साहित किया। अत्यधिक माग को पूरा करने के लिए अनेक उद्योग-धन्धे स्थापित किये गये। मुद्रा की कमी का स्थान मुद्रा-स्फीति ने ले लिया। वस्तुओ के मूल्य गगन-चुम्बी स्तर तक पहुँचने लगे। परिणाम यह हुआ कि कृषको की आर्थिक दशा भी कुछ सुधरी एवं उनकी ऋणग्रस्तता कम हो गई। विदेशी वस्तुओ के आयात मे कठिनाई के कारण अनेक छोटी-मोटी चीजों का निर्माण देश मे ही होने लगा जैसे—सिलाई की मशीनें साइकिलें बिजली का सामान, रेडियो सेट, मशीनों के पुर्जे, इत्यादि।

१५ अगस्त सन् १६४७ की अर्द्ध रात्रि के बाद भारत के आर्थिक विकास मे एक नये युग का प्रारम्भ हुआ। ब्रिटिश शासन काल मे आर्थिक क्षेत्र मे हमने जो प्रगति की वह ब्रिटेन के स्वार्थ के कारण नगण्य थी—उसमे भारतीय जन समाज का

नहीं वरन् ब्रिटेन अथवा भारत के ही किंचित व्यक्तियों को लाभ हुआ। स्वतन्त्रता के समय भारत के आर्थिक सगठन में किंचित अच्छाइयों के साथ हमें अनेक बुराइयां भी उत्तराधिकार में मिली। आर्थिक समस्याओं की एक बाढ़ सी आ गई, जैसे—खाद्य समस्या, विस्थापितों की समस्या, मुद्रा-स्फीति एवं मूल्य वृद्धि की समस्या, यातायात एवं सन्देशवाहन के साधनों की कमी, भूमि सुधार की समस्या, इत्यादि।

उपर्युक्त समस्याओं के निवारणार्थ हमारी जन-प्रिय सरकार ने 'योजनाकरण' का आश्रय लिया। यह प्रथम अवसर था, जबकि देश की आर्थिक प्रगति के लिये, पूर्व निर्धारित लक्ष्यों को लेकर हम आगे बढ़े। योजना आयोग द्वारा प्रस्तुत भारत की प्रथम पंच-वर्षीय योजना हमारी आर्थिक समस्याओं का सर्वश्रेष्ठ विश्लेषण है और देश की भावी आर्थिक विकास की एक सुन्दर रूप-रेखा है। इसका प्रधान उद्देश्य भारत के प्राकृतिक प्रसाधनों के समुचित उपयोग एवं बढ़े हुए उत्पादन द्वारा जनता के जीवन-स्तर को ऊँचा उठाना है। कुछ क्षेत्रों में तो हमने योजनानुसार अपने निर्धारित लक्ष्यों से अधिक सफलता प्राप्त कर ली है। आजकल हमारी द्वितीय पंच-वर्षीय योजना, जिसका प्रधान उद्देश्य देश का शीघ्रतम औद्योगीकरण करना है, दिन दूनी रात चौगुनी प्रगति से कार्यान्वित की जा रही है। आजकल तृतीय पंच-वर्षीय योजना की तैयारियां भी बड़े जोरों के साथ हो रही हैं। ये योजनायें हमारी भावी आर्थिक प्रगति की आधार शिलायें हैं।

इस प्रकार ये सब भूत, वर्तमान एवं भावी आर्थिक समस्याएँ ही हमारे अध्ययन का क्षेत्र है। परन्तु हमारा अध्ययन यहां पर ही समाप्त नहीं हो जाता। हमको विभिन्न समस्याओं के कारणों का विश्लेषण करके उनके हल करने के उपायों का अध्ययन करना होगा तथा उनको हल करने के लिए जो भी आर्थिक नीति अपनाई गई हो अथवा अपनाई जा रही हो, *उसकी भी उपयोगिता देखनी होगी। इस प्रकार* भारत की आर्थिक समस्याओं का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक विस्तृत एवं महत्वपूर्ण है।

विषय का महत्व—

"भारत की आर्थिक समस्याओं" के अध्ययन के जितने भी गुण गाए जाएँ कम ही होंगे। भारत की आर्थिक समस्याओं का अध्ययन केवल सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से ही नहीं, वरन् व्यावहारिक दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण है। निम्न बातों से इस विषय के अध्ययन की उपयोगिता स्पष्ट हो जाती है—

(१) देश की धीमी आर्थिक प्रगति के कारणों का ज्ञान करने के लिए— हमारा देश प्रत्येक दृष्टिकोण से अत्यन्त धनाढ्य है। भौगोलिक दृष्टि से हमारी स्थिति सर्व श्रेष्ठ है। हमारे सिर पर हिमालय का ताज है, जो राजनैतिक एवं भौगोलिक दृष्टि से हमारी रक्षा करता है। देश के वक्षस्थल पर गंगा, यमुना और ब्रह्मपुत्र अपने विस्तृत परिवार सहित क्रीड़ा करती है और उनका यह क्रीड़ा स्थल अत्यन्त उर्वरा भूमि के कारण अनाज का विशाल भण्डार है। दक्षिण का प्राचीनतम

(४) देश की सही आर्थिक स्थिति का तुलनात्मक मूल्यांकन—भारत की आर्थिक समस्याओं के अध्ययन का एक महत्वपूर्ण लाभ यह भी है कि हम विश्व की सतत परिवर्तनशील परिस्थितियों में भारत की आर्थिक स्थिति का सही अनुमान लगा सकते हैं। वर्तमान युग में सभी राष्ट्र एक दूसरे के इतने निकट आ गए हैं कि किसी भी देश की नई आर्थिक घटना से हम अछूत नहीं रह सकते। आधुनिक युग में हमारे लिए यह आवश्यक हो गया है कि विश्व के विभिन्न देशों की तुलना में हम भारत की वर्तमान आर्थिक स्थिति का सही-सही मूल्यांकन कर सकें जिससे कि देश की आर्थिक प्रगति के लिए किसी देश से कुछ सीखना हो, तो निसंकोच होकर ऐसा कर सकें।

(५) योजना-निर्माणकर्त्ताओं के लिए महत्व—जब तक हमको किसी देश की विगत एवं वर्तमान आर्थिक समस्याओं का समुचित ज्ञान न हो, तब तक हम भावी विकास के लिये योजनायें नहीं बना सकते। जब तक हम अपने देश के कृषकों उद्योगपतियों व्यापारियों, श्रमजीवियों एवं जन साधारण की आर्थिक समस्याओं का हल न करें तब तक हम उनकी आर्थिक स्थिति को सुधारने में सफल नहीं हो सकते। कृषकों की दशा को सुधारने के लिए उनकी वर्तमान परिस्थिति से परिचित होना आवश्यक है और इसी प्रकार श्रमजीवियों के जीवन-स्तर में वृद्धि करने के लिए उनकी वर्तमान गृह दशा, काम के घन्टे मजदूरी और महगाई की दर कारखाने में दी जाने वाली सुविधाएँ, श्रम-संघ, श्रम सम्बन्धी सन्नियम राज्य की औद्योगिक नीति का ज्ञान होना अति आवश्यक है। जिन लोगों के हाथ में राज्य की बागडोर है, जैसे हमारे मन्त्रीगण लोक सभा एवं राज्य सभा के सदस्य आदि—यदि इन्हें भारत की आर्थिक दशाओं और समस्याओं का भली प्रकार न ज्ञान होगा तो वे जन साधारण की दशा सुधारने के लिए सन्नियम कैसे बना सकेंगे। भोजन एवं वस्त्र की समस्या दरिद्रता और निरक्षरता दूर करना कृषि सुधार और जन हित की योजनायें सब कुछ भारतीय अर्थशास्त्र के अध्ययन पर निर्भर है जिसके बिना देश का आर्थिक पुनरुत्थान नहीं हो सकता।

(६) जन सहयोग एवं राष्ट्रीय कल्याण के लिए अध्ययन आवश्यक है—स्वतन्त्रता के उपरान्त अपने देश के आर्थिक विकास का उत्तरदायित्व स्वयं हमारे कन्धों पर आ गया। अब हम अपनी दुर्बलता के लिए किसी अन्य व्यक्ति को दोषी नहीं ठहरा सकते। स्वयं अपनी समस्याओं का अध्ययन करके देश के आर्थिक पुन-निर्माण में हमें सहयोग देना चाहिए। हमारी सरकार समय-समय पर कृषि, उद्योग व्यापार, यातायात एवं कर नीति में संशोधन करती रहती है। सरकार की निश्चित आर्थिक नीति एवं तत्पश्चात् घोषित समाजवादी ढाँचा हमारे भावी आर्थिक जीवन में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन की ओर संकेत करते हैं। इन सब परिवर्तनों का प्रायः प्रत्येक नागरिक पर प्रभाव पड़ेगा, अतः हम सबका यह कर्त्तव्य हो जाता है कि देश के भावी

आर्थिक सगठन में अपनी व्यक्तिगत स्थिति का मूल्यांकन कर जिससे कि भारत आर्थिक पुनरुत्थान मे सक्रिय सहयोग प्रदान कर सकें ।

Standard Questions

(1) What do you understand by the term 'Ecomonic Problems' Discuss the meaning and scope of Indian Economic Problems

(2) Carefully discuss the importance of the study of Economi Problems of India under the present circumstances

(3) 'India is a land of Plenty amidst Poverty' Comment

को उप-विभाजन एवं अप-खण्डन के दोषों तथा चकबन्दी के लाभों से अवगत् कराते थे। इस हेतु विभिन्न स्थानों पर सभाओं का आयोजन किया जाता था और व्याख्यानों तथा पारस्परिक वार्तालाप के द्वारा कृषकों को इस दिशा में समस्त ज्ञान प्रदान करने एवं सहकारी चकबन्दी के लिए अनुकूल वातावरण तैयार करने का प्रयत्न किया जाता था। जब किसी विशिष्ट स्थान पर अनुकूल वातावरण तैयार हो जाता था, तो भूमि की चकबन्दी के लिये सहकारी समिति का निर्माण कर दिया जाता था। व्यवहार में, इस दिशा में भी अनेक कठिनाइयों का अनुभव किया गया। श्री डार्लिंग के शब्दों में, विभिन्न स्वार्थों का समन्वय करके प्रत्येक व्यक्ति को सन्तुष्ट करना, अज्ञान को दूर करके अड़ियल व्यक्तियों को समझाना, धनी, शक्तिशाली एवं लाचार लोगों के साथ निर्धन अशक्ति एवं शान्त लोगों का ही उतना ध्यान रखना बड़ा ही कठिन कार्य है, विशेषकर जबकि केवल समझाना बुझाना ही हमारा साधन हो और जिह्वा ही हमारा अस्त्र हो। इसके अलावा पड़ोसियों की ईर्ष्यालु प्रवृत्ति एवं कृषक का पैतृक भूसम्पत्ति के प्रति प्रगाढ़ प्रेम और अधिक कठिनाइयाँ पैदा कर देते हैं। अतः समस्त योजना पर विचार करने के उपरान्त यदि कुछ व्यक्ति चकबन्दी सुझावों को ठुकरा दें, तो सारे कार्य को पुनः आरम्भ से करना पड़ेगा और इस दिशा में किया हुआ समस्त परिश्रम व्यर्थ जायगा। कहने का तात्पर्य यह है कि किसी क्षेत्र के किञ्चित जिद्दी लोगों का अल्पमत भी बहुमत में बाधा पैदा कर सकता है। इस कठिनाई को दूर करने के लिये सन् १६३६ में कानून बनाया गया, जिसके अनुसार यदि बहुमत चकबन्दी के पक्ष में हो जाय, तो अल्पमत उनकी प्रगति में बाधा नहीं डाल सकता। यद्यपि पंजाब ने इस दिशा में मार्ग-प्रदर्शन करके बड़ा सराहनीय कार्य किया है, किन्तु फिर भी सहकारी ढंग से चकबन्दी करने के प्रयास में अत्यन्त सीमित सफलता मिली है।

सहकारी समितियों द्वारा चकबन्दी के क्षेत्र में दूसरा उल्लेखनीय प्रयास उत्तरप्रदेश राज्य में किया गया है। सहारनपुर तथा बिजनौर के क्षेत्र में सन् १६२५ में सहकारी समितियों द्वारा चकबन्दी का कार्य किया गया है। बाद में यह योजना मेरठ व बस्ती जिला में भी शुरू की गई। सन् १६३६–४० में उत्तरप्रदेश राज्य में १८२ सहकारी समितियाँ कार्य कर रही थीं। सन् १६४७ में यह कार्य समाप्त कर दिया गया, क्योंकि कर्मचारियों में भ्रष्टाचार अधिक बढ़ रहा था। सहकारी आधार पर इतनी लम्बी अवधि में अब तक कुल १.२० लाख एकड़ भूमि की ही सहकारी विभाग द्वारा चकबन्दी की जा सकी है। सहकारी चकबन्दी की गति को तीव्र करने के उद्देश्य से सन् १६३६ व १६५३ में चकबन्दी के लिए नए कानून बनाए गए। मद्रास राज्य में भी सहकारी आधार पर ही चकबन्दी का कार्य किया गया है, परन्तु उसका क्षेत्र अत्यन्त सीमित रहा है।

(३) राजकीय अधिनियम द्वारा चकबन्दी—चकबन्दी की दिशा में जो

भी र जकीय आधार पर प्रयास किये गये हैं उनम मध्य प्रदेश का नाम उल्लेखनीय है मध्य प्रदेश मे सन १९२८ मे चकबन्दी अधिनियम पास हुआ जिसके अनुसार अनिवार्य चकबन्दी का सिद्धान्त सबसे पहले भारत मे लागू हुआ। यदि किसी गाव के ५० प्रतिशत कृषक जिनके पास ३/२ भूमि से कम न हो चकबन्दी के लिये राजी हो जाय तो फिर अन्य लोगो पर भी यह अनिवार्य रूप से लागू कर दी जायगी। यह अधिनियम सर्व प्रथम छत्तीसगढ़ के क्षेत्र मे लागू किया गया और वहा इसके द्वारा पर्याप्त सफलता भी मिली स्व श्री नानावती व अंजारिया ने भारतीय ग्रामीण समस्यायें शीर्षक पुस्तक मे एक स्थान पर लिखा है कि सन १९३७ तक १ लाख स्थायी कृषकों की ११३३०० एकड़ भूमि के २४३३००० खेतों की संख्या चकबन्दी के द्वारा घटाकर ३६१००० कर दी गई।

मध्य प्रदेश के चकबन्दी अधिनियम के उपरात सन १९३६ मे पजाब ने चकबन्दी अधिनियम पास किया और इसके बाद सन १९३९ म उत्तर प्रदेश मे और सन १९४० म जम्मू व काश्मीर मे इसी प्रकार के अधिनियम पास किये गये। इन समस्त अधिनियमो मे इसी सिद्धान्त को प्राथमिकता दी गई है कि यदि किसी ग्राम के एक निश्चित प्रतिशत व्यक्ति जोकि एक निश्चित प्रतिशत भूमि के स्वामी हो चकबन्दी के लिये अपनी इच्छा प्रगट कर तो फिर राज्य अनिवार्य रूप म उस योजना को समस्त गाँव पर लागू कर सकता है यहा यह उल्लेखनीय है कि चकबन्दी सम्बन्धी इस अधिनियम का लाभ उठाना मुख्यत ग्रामीणों की इच्छा पर छोड़ा गया है अर्थात यदि बहुमत इसके पक्ष म अपनी इच्छा प्रगट करे तो चकबन्दी अनिवार्यत अल्प मत पर भी लागू की जा सकती है।

यह अधिनियम कृषि के शाही कमीशन की सिफारिशों के आधार पर बनाये गये थे इनमे सबसे बड़ा दोष यह था कि यह सीमित क्षेत्रो म ही लागू किया गया जिन क्षेत्रो म चकबन्दी के लिये उपयुक्त वातावरण नही था वहाँ इसको लागू नहीं किया गया यह उचित भी था क्योंकि कोई भी राज्य सरकार केवल उसी दशा म कदम उठा सकती था जबकि बहुमत चकबन्दी के लिये इच्छुक हो। अनिवार्य चकबन्दी के लिये विभिन्न राज्यों म जो अधिनियम पास किये गये वे निम्न है —

(१) बम्बई अपखण्डन निवारण एव चकबन्दी अधिनियम १९४७

(२) पूर्वी पजाब अपखण्डन निवारण एव चकबन्दी अधिनियम १९४८

(३) पूर्वी पजाब पटियाला सघ चकबन्दी अधिनियम १९५१

(४) सौराष्ट्र अपखण्डन निवारण एव चकबन्दी अधिनियम १९५१

(५) उत्तरप्रदेश भूमि चकबन्दी अधिनियम १९५३

चकबन्दी की दिशा म सबसे पहला अधिनियम बम्बई राज्य म पास हुआ अत सन १९४७ के बाद जिन जिन राज्यों ने इस दिशा म प्रयास किये वे प्राय सभी

बम्बई अप-खण्डन निवारण एवं चकबन्दी अधिनियम पर ही अवलंबित हैं। चकबन्दी के क्षेत्र में भारत के विभिन्न राज्यों में जो प्रगति हुई है उसका संक्षिप्त ब्यौरा इस प्रकार है—

पंजाब—भारत में सर्व प्रथम १९२०-२१ में पंजाब में श्री कालवर्ट की निगरानी में सहकारी समितियाँ बनाकर प्रचार और प्रेरणा के आधार पर चकबन्दी का कार्य शुरू किया गया। इसमें भू-स्वामियों की स्वीकृति एवं इच्छा की आवश्यकता थी अतः प्रगति बहुत धीमी रही और ३० वर्ष की अवधि में केवल ७०७ लाख एकड़ भूमि की ही चकबन्दी की जा सकी। इस कार्य को और अधिक प्रोत्साहित करने के लिये नवम्बर १९३६ में एक चकबन्दी अधिनियम (Consolidation of Holdings Act) बनाया गया जिसने चकबन्दी की गति को कुछ अधिक तीव्र किया। इस अधिनियम के अनुसार अल्प संख्यक व्यक्तियों के विरोध के होने हुए भी चकबन्दी को अनिवार्य बनाया गया। चकबन्दी से पंजाब राज्य की कृषि को बहुत अधिक लाभ पहुँचा है। जोती जाने वाली भूमि के क्षेत्रफल तथा उत्पादन में काफी वृद्धि हुई, पारस्परिक झगड़े, तथा मुकदमेबाजी काफी कम हो गई एवं जन-साधारण में सुधार के लिये एक अभिलाषा पैदा हो गई। पंजाब में चकबन्दी योजना की सफलता के लिये वहाँ की विशेष परिस्थिति—जैसे सिंचाई की सुव्यवस्था तथा भूमि के बहुत छोटे-छोटे टुकड़ों में बँटे होने की न्यूनता काफी सीमा तक उत्तरदायी है।

उत्तर प्रदेश—उत्तर प्रदेश राज्य में सहकारी आधार पर चकबन्दी का काम तो सन् १९२५ में ही शुरू हो गया था, परन्तु वहाँ पर प्रगति बहुत धीमी रही। सन् १९३९ के चकबन्दी अधिनियम के अन्तर्गत कुछ प्रगति हुई किन्तु सन् १९४७ तक ६४ ६४ गाँवों में केवल ४ लाख ६४ हजार एकड़ की ही चकबन्दी की जा सकी। सन् १९५० में चकबन्दी के सम्बन्ध में सुझाव देने के लिये राज्य द्वारा एक समिति नियुक्त की गई। इस समिति की सिफारिशों के अनुसार उत्तर प्रदेश चकबन्दी अधिनियम १९५३ पास किया गया, जिसके अनुसार राज्य को अनिवार्य रूप से चकबन्दी की योजना लागू करने का अधिकार मिला। कम मूल्य की भूमि के लिये तथा खड़ी फसल की हानि के लिये क्षति पूर्ति की व्यवस्था रखी गई है, गाँव की भूमि को उपज व मिट्टी के प्रकार के अनुसार कुछ वर्गों में विभाजित कर दिया जायेगा और फिर यथासंभव प्रत्येक को उसी वर्ग में भूमि दी जायेगी, जिसमें उसकी सबसे अधिक भूमि है। एक ही परिवार के व्यक्तियों को पास-पास भूमि दी जायेगी। भूमि देते समय, खेत पर *यदि किसी का निवास गृह है अथवा कोई अन्य स्थायी विकास किया गया है, तो* उसका भी ध्यान रखा जायेगा। छोटे-छोटे भूमिधारियों को गाँव के निकट ही भूमि दी जायेगी। जहाँ तक सम्भव होगा ६¼ एकड़ या इससे अधिक के चक पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। यह अधिनियम उत्तर प्रदेश राज्य में सर्वप्रथम सहारनपुर एवं मुजफ्फरनगर जिलों की एक-एक तहसील में लागू किया गया और बाद में अन्य

म त्रा म न्ना यह धार धार बन्ना गया। ऐसा अनुमान है कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्त तक सारे राज्य में चकबन्दी का कार्य पूरा कर दिया जायगा। इस सम्पूर्ण कार्य में लगभग १८ लाख रुपये व्यय होने का अनुमान है।

बम्बई—बम्बई राज्य में सन १९२७ में अल्प जोत बिल (Small Holdings Bill) राज्य की विधान परिषद में पेश किया गया था किन्तु तीव्र विरोध के कारण यह स्वीकार न हो सका। इसके बाद सन १९४७ में चकबन्दी अधिनियम पास किया गया। यह अधिनियम सचमुच में एक आदर्श अधिनियम था जिसका अनुकरण बाद में अनेक राज्यों ने किया। इस अधिनियम में चकबन्दी की व्यवस्था अनुमत्यात्मक कानून (Permissive Act) की अपेक्षा अनिवार्य कानून (Compulsory Act) के रूप में की गई थी। यद्यपि यह अधिनियम ८ अप्रैल १९४८ से लागू हो गया परन्तु कार्य रूप में इस सन १९५० में ही परिणित किया गया। इसके बाद सन १९५३ में इस अधिनियम में कुछ संशोधन किये गये। चकबन्दी का समस्त व्यय राज्य सरकार का ओर से होता है और कृषकों से कोई फीस नहीं ली जाती।

मध्य प्रदेश—अनिवार्य चकबन्दी के लिये मध्य प्रदेश राज्य में सन १९२८ में चकबन्दी अधिनियम बनाया गया। इस अधिनियम के अनुसार गाँव के कम से कम आधे स्थायी भूस्वामी जिनके पास गाँव की कम से कम दो तिहाई भाग भूमि है यदि भूमि की चकबन्दी के लिए राजी हो तो शेष सारे भूस्वामियों को ऐसा करने के लिये बाध्य होना पड़ेगा।

भू अभिलेख सचालय मध्य प्रदेश से प्राप्त सूचनाओं के अनुसार जोतों की चकबन्दी योजना मध्य प्रदेश के ६ जिलों में कार्यान्वित की जा रही है। सन् १९५९-६० में २०६ गावों के २,२८,३३४ एकड़ क्षेत्र में यह काम पूरा कर दिया गया। ३५६ गावों के लगभग २,४६,००० एकड़ क्षेत्र में यह कार्य विभिन्न स्तरों पर चल रहा है।

अन्य राज्य—इनके अतिरिक्त दिल्ली, जम्मू तथा काश्मीर, बिहार और उड़ीसा आदि राज्यों में भी चकबन्दी सम्बन्धी अधिनियम बनाये गये हैं। प्रथम एवं द्वितीय पंचवर्षीय योजनाओं में भी प्रत्येक राज्य में भूमि की चकबन्दी को प्रोत्साहित करने का सुझाव दिया गया है। योजना आयोग ने इस बात की सिफारिश की है कि सामुदायिक विकास एवं राष्ट्रीय विस्तार सेवा खण्डों में चकबन्दी को कृषि विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत प्राथमिकता देनी चाहिये।

भूमि की चकबन्दी और पंच-वर्षीय योजनायें—

प्रथम योजना काल में कुछ प्रमुख राज्यों में चकबन्दी की प्रगति इस प्रकार हुई—बम्बई २१ लाख एकड़, मध्य प्रदेश २६ लाख एकड़, पंजाब ४८ लाख एकड़, पेप्सू १२ लाख एकड़ व उत्तर प्रदेश ४४ लाख एकड़। द्वितीय योजना का लक्ष्य ३६० लाख एकड़ भूमि की चकबन्दी करना है। जून १९५९ तक कुछ प्रमुख राज्यों

मे निम्न सीमा तक चकबन्दी की जा चुकी थी —पजाब ६५ ५५ लाख एकड, उत्तर-प्रदेश ३० ७० लाख एकड, बम्बई १८ १२ लाख एकड और मध्य प्रदेश ३३ ३९ लाख एकड ।

सयुक्त ग्राम व्यवस्था
(Joint Village Management)

उप-विभाजन व अप-खण्डन की समस्या को सुलझाने के लिये श्री त्रिलोकसिंह ने एक नया प्रस्ताव रखा है । उन्होंने अपनी पुस्तक 'Poverty and Social Change' मे सयुक्त ग्राम प्रबन्ध का सुझाव दिया है । द्वितीय पचवर्षीय योजना मे इस जनतन्त्रात्मक विचारधारा को बडा महत्व दिया गया है । योजना आयोग ने इस प्रणाली को देश के लिए आदर्श माना है और इसी कारण अपनी भूमि नीति को इसी पर आधारित किया है ।

योजनाओ की विशेषताए—

संयुक्त ग्राम व्यवस्था के अन्तर्गत गाँव की समस्त भूमि को एकत्रित कर लिया जायगा और इसका प्रबन्ध ग्राम-प्रबन्धक सस्था (ग्राम पचायत व ग्राम सभा) को सौप दिया जायगा । यही सस्था इस बात का निर्णय करेगी कि कौनसी फसल बोनी चाहिये अथवा फसल के हेर फेर का कौनसा तरीका अपनाना चाहिये । यह वित्त, सुन्दर बीज, उत्तम खाद और उचित कृषि-यन्त्रो आदि का प्रबन्ध करेगी । यह कुटीर व कृषि के अन्य सहायक उद्योग-धन्धो की भी व्यवस्था करेगी । कृषि उपज को बढाने के उद्देश्य से भूमि को उचित जोतो मे बाँटा जा सकता है, जिनको प्रबन्धक सस्था एक या एक से अधिक परिवारो को काश्त के लिये दे देगी । जिन शर्तो पर भूमि खेती के लिए दी जायगी, वे ऐसी होगी, जिनसे कृषको के हृदय मे उत्साह तथा कार्य की भावना जागृत हो सके । गाँव की बजर भूमि, तालाबो, वनो और सिंचाई के छोटे छोटे साधनो का प्रबन्ध भी यही सस्था करेगी । इस प्रणाली की एक अनोखी विशेषता यह है कि साधारण सहकारी कृषि समिति से उसके सदस्य जब चाहे अलग हो सकते हैं, परन्तु सहकारी ग्राम प्रबन्ध के अन्तर्गत गाँव की समस्त भूमि सदैव के लिये एकत्रित कर ली जाती है । यहाँ भू-स्वामित्व का अधिकार तो रहता है, परन्तु सयुक्त कृषि से पृथक होने का अधिकार नही रहता है । जहाँ तक सहकारी, ग्राम प्रबन्धक सस्था के आय के बँटवारे का सम्बन्ध है, वह दो तरीको से बाँटी जायगी ।

(१) आय का कुछ भाग तो स्वामित्व अधिकारो के अनुसार बाँटा जायगा और (२) कुछ खेत पर लगाये गये श्रम के अनुसार । इस प्रणाली को हम रूस की सम्मिलित कृषि और साधारण सहकारी कृषि के मध्य की प्रणाली की सज्ञा दे सकते है । यह प्रणाली सम्मिलित कृषि की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है, क्योकि इसमे

उन दोनों नियमा (अर्थात स्वामित्व अधिकार तथा समानाधिकार) जिन पर कि हमारे ग्रामीण समाज का आधार है को स्वीकार कर लिया जाता है। यही कारण है कि हमारे देश की वर्तमान परिस्थितियों के अन्तगत यह प्रणाली भारत के लिय अधिक उचित है। यह प्रणाली साधारण सहकारी कृषि से इसलिय श्रेष्ठ है क्योंकि इसमे उसमे अधिक सगठन होता है।

इस प्रकार सयुक्त ग्राम व्यवस्था के अन्तगत प्रत्यक गाव म तीन प्रकार क काय क्षत्र हाग —

(१) निजी काय
(२) एच्छिक सहकारी क्षत्र
(३) सम्मिलित पचायती क्षेत्र।

शनै शनै सहकारी क्षत्र को इस प्रकार विस्तृत किया जायगा कि अन्त म समस्त ग्रामीण जनता सम्मिलित क्षत्र म सम्मिलित हो जाय। सहकारी आन्दोलन का भविष्य म यह उद्देश्य होगा कि वह माल तैयार करने और उसे बचने म इसी सिद्धान्त का पालन कर। आजकल सयुक्त ग्राम प्रबन्ध को लागू करने म निम्न लिखित साधन तथा सस्थायें सहयोग दे रही हैं —

(१) राष्ट्रीय विस्तार सवायें
(२) ग्राम-पचायत
(३) सहकारी साख विक्रय तथा गोदाम समितियों म उन्नति
(४) लघु उद्योगों की उन्नति
(५) एच्छिक सहकारी समितियाँ और
(६) ग्राम म पचायती क्षत्र का विकास

इस योजना के अन्तगत लगान पचायता द्वारा एकत्रित किया जायगा और व्यक्तिगत ऋण या तो पचायत की जमानत पर अथवा सम्मिलित कृषि म व्यक्तिगत भागों की जमानत पर दिए जाने चाहिय।

सयुक्त-ग्राम प्रबन्ध के लाभ—

(१) कृषि उत्पादन में वृद्धि—सयुक्त ग्राम प्रबन्ध की प्रणाली के अन्तर्गत कृषि की उत्पादन क्षमता अवश्य बढेगी। आजकल कृषि उत्पादन म न्यूनता का सबसे बडा कारण जोतों के आकार का छोटा और बिखरा हुआ होना है। इस प्रणाली के अनुकरण से जोतें बडी हो जायेंगी एव विभिन्न प्रकार की मितव्ययितायें प्राप्त हो सकेंगी। कृषि करने के तरीकों म उन्नति होगी वित्त का सुप्रबन्ध हो सकेगा और किसान खेती का बिना कारण खाली नहीं छोड सकेंगे। सक्षेप म हम यह कह सकते हैं कि समता को उत्पन्न की योजना एक व्यावहारिक रूप धारण कर लगी।

(२) समान अधिकार—यह प्रणाली एक ऐसी अवस्था उत्पन्न कर देगी जिसमें गाँव के सभी लोगों को समान अधिकार मिल सकेंगे। थोडे से स्वामित्व अधिकारों को छोड कर शेष समस्त आय खेत पर लगाए गए श्रम के अनुसार बाँट दी जायगी। गाँव के सभी लोगो को मिल कर काम करना पडेगा। उदाहरण के लिए जमीदारो को भी काश्तकारो के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर काम करना पडेगा। ग्रामीण वातावरण मे यह परिवर्तन लोकतन्त्रात्मक स्थिति को ध्यान मे रखते हुए अत्यन्त श्रेष्ठ एव हितकारी है।

(३) एकता में वृद्धि—इस प्रणाली के द्वारा जमीदारो तथा काश्तकारो और जमीदारो एव श्रमिको के पारस्परिक सघर्ष समाप्त हो जायेंगे तथा समाज मे स्नेह व सहकारिता का वातावरण फैल जायगा।

(४) यह प्रणाली अन्य सभी प्रणालियो की अपेक्षा अधिक व्यावहारिक है।

योजना के विरोध में विचार—

इतने लाभ होते हुए भी इस प्रणाली के विरोध मे निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किये गये हैं —

(१) कुछ लोगो के मतानुसार हमारा देश अभी इतनी बडी क्रान्ति को स्वीकार करने के लिए तैयार नही है। इस सम्बन्ध मे यह कहा जा सकता है कि यह वास्तव मे प्रणाली का दोष नही है। कुछ भी हो, इस लक्ष्य को सामने रख कर हम धीरे-धीरे प्रगति की ओर बढ सकते हैं।

(२) कुछ लोगों के विचारानुसार इस योजना को कार्यान्वित करने से गाव की बहुत सी जनता बेरोजगार हो जायगी, क्योकि पुनर्निमाण के पश्चात् थोडे श्रमिको की आवश्यकता पडेगी। यह दलील भी विशेष महत्त्वपूर्ण प्रतीत नही होती, क्योकि यह तो तभी होगा जबकि परिवर्तन आकस्मिक हो।

(३) वामपक्षियो (Leftists) का मत है कि स्वामित्व अधिकार के लाभ की आशा देकर भू स्वामित्व अधिकार को कायम रखा गया है। वास्तव मे तो यह अधिकार उसी काश्तकार को मिलना चाहिये, जो स्वय कृषि करता हो, किन्तु जब तक भारत मे व्यक्तिगत सम्पत्ति की प्रणाली को स्वीकार किया जायगा, तब तक ऐसा करना ही पडेगा।

(४) सरकारी अथवा सहकारी दोनो प्रकार के कार्यों के विरुद्ध प्राय यह कहा जाता है कि ऐसे प्रबन्धको से कार्य करने की भावना मे कोई वृद्धि नही होती, वरन् यह केवल एक नित्य-कर्म (Routine) रह जाता है।

योजना आयोग ने भी उपर्युक्त कठिनाइयो को ध्यान म रखते हुए यह सुझाव दिया है कि इस प्रणाली को धीरे-धीरे लागू किया जाय। प्रारम्भ म ग्राम पचायतो को बजर भूमि का प्रबन्ध सभालना चाहिये और बाद मे इसके क्षेत्र को

धीरे धीरे समस्त गांव पर बढाना चाहिये। स्थिति के अनुसार खेतों को कई जोतो मे बाँट दिया जाय और प्रत्यक जोत को एक परिवार को अथवा अनेक परिवारो के समुदाय को काश्त या खेती के लिए दे दिया जाय। जैसे-जैसे आर्थिक प्रगति के साथ अन्य क्षेत्रो मे श्रमिको की आवश्यकता बढती जाय, वैसे-वैसे जोतो के आकार को भी बढा लिया जाय और सहकारी ढग से उसकी काश्त की जाय।

अन्त मे यह कहा जा सकता है कि सयुक्त ग्राम-व्यवस्था मे जो बाधायें हैं, वे इतनी कठिन नही है कि उनको दूर न किया जा सके। अत हमे इस प्रणाली के अनुसार कार्य करना आरम्भ कर देना चाहिये।

(५) उत्तराधिकार तथा पैतृक सम्पत्ति के अधिनियम में परिवर्तन—भूमि के उपविभाजन पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए पैतृक सम्पत्ति तथा उत्तराधिकार के नियमो मे इस प्रकार सशोधन करना चाहिए, जिससे भू सम्पत्ति का अधिकार पिता के बाद सबसे बडे लडके को ही मिले। हां, वर्तमान परिस्थितियो के अन्तर्गत यह सशोधन अधिकांश लोगो को मान्य न होगा। साथ ही, अन्य उत्तराधिकारियो की व्यवस्था भी करनी होगी। देश मे उद्योग-धन्धो के अभाव मे ऐसा सशोधन बेकारी की समस्या को प्रोत्साहित कर सकता है। इससे समाज मे भूमिहीन कृषको की सख्या भी बढेगी। अत इन कठिनाइयो के फलस्वरूप इस प्रकार की व्यवस्था देश की वर्त्तमान परिस्थितियो के लिए उपयुक्त प्रतीत नही होगी। परन्तु फिर भी यह व्यवस्था की जा सकती है कि एक न्यूनतम क्षेत्र से कम की जोतो का विभाजन नही हो सकता और इस प्रकार परिवार के सदस्यों को उस पर सयुक्त कृषि के लिये बाध्य किया जा सकता है।

(६) भूमि की आर्थिक इकाई नियत करना—एक सुझाव यह भी है कि कानूनी द्वारा यह नियत कर दिया जाय कि भूमि का विभाजन केवल आर्थिक जोतो मे ही हो सकता है। कृषि व्यवस्था मे स्थाई सुधार करने के उद्देश्य से यह आवश्यक प्रतीत होता है। हमारे योजना आयोग ने भी सभी राज्यों द्वारा आर्थिक जोत निर्धारित करने का प्रस्ताव दिया है। सरकार द्वारा आर्थिक जोत की सीमा निर्धारित कर दी जाय और किसी भी व्यक्ति को आर्थिक जोत से छोटे टुकडे में भूमि विभाजित करने का अधिकार नही दिया जाय। सौभाग्य का विषय है कि भारत के अधिकाश राज्यो मे इस दिशा म अधिनियम बनाये जा चुके हैं। मध्य प्रदेश मे सन् १९५९ तक सीचित भूमि के लिये ५ एकड और असीचित भूमि के लिये १० एकड की न्यूनतम सीमा निश्चित की गई है जिससे परे विभाजन नहीं हो सकता।

उप-सहार—

जोतो के उप-विभाजन एव अप-खण्डन को रोकने के लिए ऊपर जिन उपायो

की चर्चा की गई है, उनमें सहकारी कृषि ही सर्वश्रेष्ठ उपाय है। हमारे देश की वर्तमान परिस्थितियों के अन्तर्गत यह सबसे अधिक उपयुक्त प्रस्ताव है। इसके द्वारा खेती, पूँजी और श्रम के सभी साधनों को एकत्रित कर उनका समुचित उपयोग किया जा सकता है। इसमें छोटे छोटे कृषक भी बड़े पैमाने की कृषि के लाभों को प्राप्त कर सकते हैं।

STANDARD QUESTIONS

1. Carefully distinguish between an Economic Holding and Optimum Holding, and briefly point out the factors which affect the economic holdings of an agriculturist.
2. What are the causes of subdivision of holding in India? How does this affect our agricultural production?
3. Discuss the causes of Subdivision and Fragmentation of holdings in India. Suggest measures for their solving these problems.
4. Discuss the lines on which attempts have been made in some parts of India to remedy the evils of excessive subdivision and fragmentation of holdings.
5. What do you mean by consolidation of holdings? What measures have been taken by the Govt. to achieve it?
6. "Small and uneconomic holdings are at the root of many of the difficulties in the way of agricultural development." Examine this Statement.

अध्याय ५

ग्रामीण साख

(Rural Credit)

ग्रामीण साख का महत्व—

वर्तमान युग में साख का बहुत महत्त्व है। बिना साख के बड़े पैमाने पर उद्योग धन्धों का विकास हो ही नहीं सकता। किसी भी उद्योग को भलि-प्रकार सचालित करने के लिये स्थाई एवं सक्रिय पूँजी की आवश्यकता होती है। उद्योगकर्त्ता यह पूँजी यथासम्भव अपने व्यक्तिगत साधनों द्वारा जुटाता है। यदि उसके निजी साधन अपर्याप्त होते है, तो वह बाहरी साधनों से ऋण प्राप्त करके पूँजी का प्रबन्ध कर लेता है। कृषि भी एक उद्योग है और अन्य उद्योगों की भाँति कृषि के लिए भी साख की आवश्यकता होती है। परन्तु अन्य उद्योगों की तुलना में कृषि उद्योग अपनी कुछ अनोखी विशेषता रखता है, यही कारण है कि साधारण औद्योगिक साख सस्थाओं द्वारा कृषि साख की पूर्ति नहीं हो सकती। साख की दृष्टि से कृषि एवं अन्य उद्योगों में पांच प्रमुख अन्तर है। प्रथम, कृषि में नियोजित पूँजी का प्रतिफल देर से प्राप्त होता है। उदाहरण के लिए यदि कोई कृषक आज बीज बोता है, तो कई महीनों के बाद उसको उपज प्राप्त होती है। अतः कृषि में अपेक्षाकृत लम्बी अवधि के लिये ऋण की आवश्यकता होती है। दूसरे, कृषि व्यवसाय में जोखिम अधिक है। प्राकृतिक प्रकोपों एवं वर्षा की अनिश्चितता के कारण लाभ भी अनिश्चित होता है। तीसरे, कृषि व्यवसाय में मांग और पूर्ति म सतुलन करना सम्भव नहीं होता उदाहरणार्थ, एक बार फसल बोने के बाद फिर उत्पादन को घटाया नहीं जा सकता। इसके विपरीत अन्य निर्माण उद्योगों में मूल्य स्तर के गिरने के साथ-साथ उत्पादन भी कम किया जा सकता है। चौथे, व्यापार एवं अन्य उद्योगों की तुलना में कृषकों की आर्थिक स्थिति भी सुदृढ नहीं होती और जब ऋण की सुरक्षा का प्रश्न आता है, तो कृषक के पास भूमि के अतिरिक्त अन्य कोई जमानत नहीं होती। पाँचवें, कृषि एक मौसमी उद्योग है, अत. ऋण की मांग भी साल भर न रह कर कुछ विशेष महीनों म ही होती है।

उपर्युक्त विवरण म स्पष्ट है कि कृषि उद्योग को भी अपनी विशिष्ट आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिए साख की आवश्यकता होती है। यदि कृषक के सीमित

साधनो को ध्यान मे रखते हुये सच पूछा जाय, तो कृषि के क्षेत्र मे साख का महत्व और भी अधिक हो जाता है। यहाँ यह लिखना अनावश्यक होगा कि भारतीय कृषि के पिछड़े होने के विभिन्न कारणो मे उचित साख व्यवस्था का अभाव भी एक महत्वपूर्ण कारण है। भारतीय कृषक की दरिद्रता एक सर्व विदित तथ्य है। भारतीय कृषक के पास कृषि सम्बन्धी आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए पर्याप्त पूँजी का अभाव रहता है।

ऐसी परिस्थिति मे उसे भूमि में सुधार लाने तथा नये नये यन्त्रो, उत्तम बीज उत्तम खाद, स्वस्थ पशु आदि के प्रयोग के लिये बहुधा ऋण पर निर्भर रहना पडता है। भारतीय गाँव में एक कहावत प्रचलित है कि, "वही गाँव बसने योग्य है, जहां पर आवश्यकता पडने पर ऋण देने के लिए महाजन हों, दवा दारू के लिये वैद्य हो, पूजा-पाठ आदि के लिए पण्डित हो तथा जल का एक ऐसा साधन हो, जो कभी भी सूखता न हो।" इस कथन से भारतीय कृषक के जीवन मे साख का महत्व स्पष्ट है। परन्तु हमारे देश में श्रेष्ठ साख सस्थाओं के अभाव में महाजनो का बडा बोल बाला है। ये महाजन लेन देन मे कृषको को विविध ढंगो से शोषण करते है। अत: उचित साख व्यवस्था का महत्व हमारे देश की कृषि की उन्नति के लिए नितान्त आवश्यक है। इस प्रकार 'साख को कृषि का जीवन' कहना कोई अत्युक्ति नही होगी।

हमारे देश मे कृषि साख का कोई नियत रूप नहीं है। इसका प्रमुख कारण यह है कि कृषक बहुधा गाँव में निवास करते है, जहाँ सगठित साख की कोई व्यवस्था नही पाई जाती। प्रोफेसर हैमलटन के शब्दो मे, 'भारतीय गाँव में अनेक बैंकर हैं, परन्तु बैंक एक भी नही है।

कृषक की साख सम्बन्धी आवश्यकतायें—

किसानो की साख सम्बन्धी आवश्यकता को काल के अनुसार तीन भागो मे विभाजित किया जा सकता है :—

(१) **दीर्घकालीन ऋण**—किसानो को भूमि खरीदने, कुँआ बनवाने तथा पुराने ऋण का निपटारा करने के लिये ऋण की आवश्यकता होती है, जिसे वह थोडे समय में नहीं चुका सकता। इस प्रकार के ऋण की अवधि प्राय तीस चालीस वर्ष होती है। यह कृषक की प्रदेय क्षमता के अनुसार अधिक और कम भी हो सकती है। केन्द्रीय बेंकिंग जाँच समिति के अनुसार इस प्रकार के ऋण की आवश्यकता कम से कम ५ अरब रुपये है।

(२) **मध्यकालीन ऋण**—कृषि यन्त्रो, मशीनो, बैलो आदि के खरीदने के लिये कृषक को मध्यकालीन ऋण की आवश्यकता पडती है, जो प्राय: १½ २ वर्ष स पाँच वर्ष तक की अवधि के लिये लिए जाते हैं, विवाह, भोज, आदि के लिये जो ऋण लिये जाते है। वे भी इसी अवधि के लिये होते है, क्योंकि राशि प्राय इतनी

अधिक होती है कि एक वर्ष में उसका भुगतान नहीं हो सकता। मध्य कालीन साख की मात्रा में भी प्रादेशिक विभिन्नता पाई जाती है।

(३) अल्पकालीन ऋण—किसान को अपनी वर्तमान आवश्यकताओं, जैसे बीज, खाद, हल, भोजन सामग्री तथा अन्य कम मूल्य के साधारण औजारों को खरीदने, मन्डी तक पैदावार को ले जाकर बेचने एवं खेती की अन्य क्रियाओं के लिये अल्पकालीन ऋण की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार की साख 'मौसमी साख' भी कही जा सकती है, जो ६ माह से लेकर १८ माह तक की अवधि के लिए दी जा सकती है। केन्द्रीय बैंकिंग जाँच समिति के अनुमानानुसार कृषकों की अल्पकालीन साख की आवश्यकता कम से कम तीन अरब से चार अरब रुपये तक है, यद्यपि डा० बल्जीतसिंह के अनुसार इसकी न्यूनतम सीमा ६ अरब रुपये है।

कृषि साख प्राप्ति के साधन—

औद्योगिक व व्यापारिक साख पूर्ति के साधनों का संगठित विकास भारत में १९वीं शताब्दी के अन्त से ही आरम्भ हो गया था, किन्तु ग्रामीण साख सम्बन्धी सुविधाओं के विकास की दिशा में कोई विशेष प्रयत्न नहीं किये गये। ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति (All India Rural Credit Survey Committee) के अनुसार किसानों को साख प्रदान करने के लिये निम्नलिखित संस्थायें हैं—

साधन	प्रतिशत
सरकार (Government)	३·३
सहकारी समितियाँ (Co operative Societies)	३·७
सम्बन्धी (Relatives)	१४ २
जमींदार (Landlord)	१ ५
कृषक साहूकार (Agriculturist money lenders)	२४·९
पशेवर साहूकार (Professional Moneylenders)	४४ ८८
व्यापारी वर्ग (Traders and Commission Agents)	५ ५
व्यापारिक बैंक (Commercial Bank)	०·९
अन्य साधन (Other Sources)	
कुल	१००·००

आजकल हमारे देश में कृषकों के लिये साख प्राप्ति के निम्न मु साधन हैं—

(१) गाँव के महाजन एवं देशी बैंकर,

(२) सहकारी साख समितियाँ,

(३) भूमि बन्धक बैंक,

(४) सरकार,
(५) सयुक्त पूँजी वाले बैंक,
(६) रिजर्व बैंक, और
(७) स्टेट बैंक।

(१) गाँव के महाजन एवं देशी बैंकर

प्रथा—

गाँव मे कृषि की व्यवस्था करने में गाँव के महाजन का बहुत बडा महत्व है। इन महाजना को हम दो वर्गों में विभाजित कर सकते है—पहले वे महाजन जो द्रव्य उधार देने का पेशा करते हैं और दूसरे वे जो उधार देन का पेशा नही करते है। पेशेवर महाजन द्रव्य उधार देने के साथ ही साथ गाँव की उत्पादित वस्तुओ का व्यापार भी करते हैं और वे गाँवो में ही अधिक पाये जाते हैं। भिन्न भिन्न राज्यो में ये भिन्न भिन्न नामो से पुकारे जाते है, जैसे—बनिया, महाजन, साहूकार, किस्त वाला, पठान इत्यादि। पेशेवर न होने वाले लोगो में जमीदार, धनिक किसान तथा विधवा स्त्रियाँ मुख्य हैं, जो प्राय उन्ही लोगो को ऋण देते है जिन्हे वे अच्छी तरह से जानते हो। अपने स्थानीय ज्ञान तथा अनुभव के आधार पर वह स्पष्ट सम्पत्ति के बिना भी ऋण दे देता है और इतना होते हुए भी हानि से अपनी रक्षा करता है।

दोष—

किन्तु महाजनो के इस कार्य में कई दोष है। वह किसान को, इस बात की चिन्ता किये बिना कि वह किस काम के लिये ऋण ले रहा है, उत्पादक अथवा अनुत्पादक ऋण दे देता है। वह प्राय इस शत पर भी ऋण देता है कि गाँव की फसल उसको ही अथवा उसके द्वारा ही बेची जावेगी। इसका परिणाम यह होता है कि किसानो को दबाव में आकर सस्ते भाव में अपनी फसल बेचनी पडती है। वह सूद-दर सूद लगाता है, जिससे ऋण का भार बहुत ही जल्दी बढ जाता है। इसके अतिरिक्त और भी कई दोष हैं। जैसे—

(१) जब महाजन किसानो को ऋण देते है, तो मूलधन की रकम म से पूरे वर्ष का सूद काट कर बाकी रकम ही देते हैं और बन्ध (Bond) पूरी रकम का लिखवाते है। इसके अतिरिक्त काटे हुए सूद की रसीद भी नही देते और बडी ही सरलता से १ वष की अवधि समाप्त होने पर उसी वर्ष का दूसरी बार सूद माँग लेते है। जब कर्जदार निश्चित अवधि के समाप्त होने पर ऋण नही चुका पाता, तो महाजन कोरे बन्ध पर उसके हस्ताक्षर ले लेते हैं और बाद में ऋणी की वास्तविक रकम

से अधिक रकम का बांध लिखने में संकोच नहीं करते । कभी कभी तो ऋण देते समय भी दिये जाने वाले ऋण की राशि से अधिक रुपयों का बांध लिखकर अशिक्षित किसानों के हस्ताक्षर करवा लेते हैं ।

(२) समय समय पर कर्जदारों की ओर से ऋण के पक्ष जो किस्तें महाजनों को दी जाती हैं उनकी रसीद किसानों (कर्जदारों) को नहीं दी जाती और बहीखाता में जमा की गई रकम का विवरण भी नहीं लिखते । इस प्रकार किसानों से दिए गये ऋण से भी अधिक वसूल किया जाता है ।

(३) कहीं कहीं ऋण के अतिरिक्त 'गद्दी खर्च,' 'सलामी' 'कटौती,' 'बटावन' 'गिरह खुलाई' इत्यादि दीपका के अन्तर्गत अन्य खर्चे भी महाजनों द्वारा वसूल किये जाते हैं । इस प्रकार किसानों पर ऋण भार दिन प्रति दिन बढ़ता जाता है ।

सुधार के प्रयत्न—

इन सब दोषों के रहते हुए भी हमें यह तो मानना ही होगा कि गाँव में महाजन किसानों को आवश्यकता के समय ऋण देकर जितनी सहायता करते हैं उतनी कोई नहीं करता, अतः किसानों की अल्पकालीन तथा मध्यकालीन आर्थिक आवश्यकताओं के पूरी करने में भविष्य में भी उनका कार्य चलता रहेगा। वास्तव में आवश्यकता है महाजनों पर नियन्त्रण करने की, न कि उनके कार्य को बन्द करने की । इसके लिए कृषि अर्थ प्रबन्धन उप समिति द्वारा की गई सिफारिशों के अनुसार नियन्त्रण होना चाहिए, जिसकी मुख्य बातें ये हैं—साहूकारों का रजिस्ट्रेशन तथा उन्हें अनुमति पत्र देना, निर्धारित ढङ्ग पर खाता का रखना, प्रत्येक ऋण का पूर्ण विवरण कर्जदारों को देना । कर्जदारों के रुपया चुकाने पर (प्रत्येक किस्त के समय) रसीद देना, सूद दर सूद की सीमा निश्चित करना, कर्जदारों की साहूकारों के प्रचलित दोषों (धोखा देने से सम्बन्धित) से रक्षा करना एवं राज्य की ओर से निरीक्षण तथा देख रेख के लिए प्रबन्ध करना इत्यादि ।

हमारे देश के बम्बई, आसाम, बङ्गाल, मध्य प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, मद्रास, पंजाब, उत्तर प्रदेश इत्यादि राज्यों ने उपयुक्त दोषों से किसानों की रक्षा करने तथा ऋण सम्बन्धी लेन देन के ढंगों पर कानून बना कर नियन्त्रण करने का प्रयत्न किया, जिसका फल अच्छा ही हुआ है । अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वे के अनुसार उपयुक्त श्रोत से भी भारतीय कृषकों की लगभग ७०% साख आवश्यकतायें पूर्ण होती हैं, अतः कुछ दुर्गुणों के होते हुए भी इस प्रथा का पूर्णतः उन्मूलन नहीं किया जा सकता । श्री एम० एल० डार्लिंग का भी यही विचार है ।

(२) सहकारी साख समितियाँ

व्यवस्था एवं दोष—

ये समितियाँ अपने सदस्यों को थोडे समय के लिए बीज, खाद, हल, औजार, आदि मोल लेने के लिए ऋण देती हैं। पहले ये सदस्यों को विश्वास पर ही ऋण दिया करती थी, परन्तु अब धरोहर के रूप में भी कुछ लेती है और अपने सदस्यों को लाभांश भी देती हैं। अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वे के अनुसार कृषक की आवश्यकताओं का ३०% भाग इसी श्रोत द्वारा पूरा होता है। अतः स्पष्ट है कि इनसे कृषकों को बहुत कम लाभ पहुँचा है। अभी तक इनकी उन्नति बहुत कम हुई है। वास्तविकता यह है कि इनके सदस्य अशिक्षित, अज्ञानी एवं रूढ़िवादी हैं। समितियों के ऊपर राजकीय नियन्त्रण बहुत अधिक है, अतः सदस्यगण कार्य में विशेष रुचि नहीं लेते हैं। समितियों के सदस्य रुपया नहीं लौटाते, इसलिए वह बट्टे खाते में जाता है। समितियाँ इस बात पर कभी भी विचार नहीं करती कि सदस्यगण ऋण व्यय किस प्रकार कर रहे हैं। अधिकांश ग्रामीण आज भी इन समितियों की अपेक्षा गाँव के महाजन को प्राथमिकता देते हैं, क्योंकि:—(१) गाँव के महाजन बिना किसी धरोहर के ऋण देता है। (२) सरकारी विभागों में भ्रष्टाचार एवं लाल फीता के कारण ऋण बहुत मँहगा पड़ता है। (३) किसान को यह भय रहता है कि सहकारी समिति ऋण की वसूली में कठोरता बरतेगी। (४) सहकारी व्यवस्था के अन्तर्गत निरीक्षण स्टाफ द्वारा देखभाल होने एवं ऋण लेने की बात फैलने का भी किसान को संकोच रहता है। समितियों की दशा सुधारने तथा उनको अधिक उपयोगी बनाने के लिए यह प्रस्ताव है कि इन समितियों को बहु-उद्देश्यीय समितियों में बदल दिया जाय, जहाँ कि किसान की नमक से लेकर हल, बैल तक की समस्त आवश्यकतायें पूर्ण हो सकें। हर्ष का विषय है कि उत्तर-प्रदेश, बम्बई आदि राज्यों में ऐसी समितियाँ स्थापित की जा रही हैं।

आजकल सरकार इस बात का प्रयत्न कर रही है कि कृषकों को लघुकालीन व मध्यकालीन ऋण सहकारी साख समितियों द्वारा दिये जाएँ और इस हेतु द्वितीय योजना-काल के अन्त तक इन समितियों की सदस्यता ६० लाख से बढ़ा कर १$\frac{3}{4}$ करोड़ करने की है। इस बीच इन समितियों द्वारा १५० करोड़ रुपया लघुकालीन ऋण के रूप में, ५० करोड़ रुपया मध्यकालीन ऋण के रूप में और २५ करोड़ रुपया दीर्घकालीन ऋण के रूप में दिया जायगा। इस प्रकार सन् १९६०-६१ तक सहकारी समितियाँ कृषि साख का २५% प्रदान कर सकेंगी।

(३) भूमि बन्धक बैंक

सहकारी साख समितियाँ अल्पकालीन व अधिक से अधिक मध्यकालीन साख

दे सकती है। दीर्घकालीन साख देना उनके वश के बाहर की बात है। इसके लिए तो भूमि प्रबन्धक बैंक ही उपयुक्त समझी गई हैं। ये निम्न कार्यों के लिए साख देती है — (१) किसानों की भूमि तथा मकानों को छुडाना, (२) खेती की भूमि तथा खेती बारी के धन्धे को उन्नत करना और किसानों के मकानों को बनवाना, (३) पुराने ऋण चुकाना, और (४) भूमि खरीदने के लिए रुपया देना। इन कार्यों के लिये वे ऋण पत्र जारी करती हैं एवं दीर्घकालीन डिपाजिट लेती है।

असफलता के कारण—

अनेक राज्यों में ये बैंक असफल रही है, क्योंकि (१) बन्धक जायदाद का ठीक ठीक मूल्य नहीं आँका जा सकता, (२) मन्दी के कारण भूमि के मूल्य में कमी होने से बैंकों की जमानत कम पड गई, (३) भूमि पृथक्करण कानून (Land Aliena tion Act) के कारण भूमि पर अधिकार नहीं किया जा सकता था, (४) बैंक के डाइरेक्टर वगैरह स्वयं बैंक से बहुत ऋण लेते थे और (५) फसल की कीमत गिर जाने पर ऋणी किसानों की ऋण चुकाने की शक्ति कम हो गई।

इन बैंकों की आवश्यकता को कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता, अतः इन्हें प्रोत्साहित करने के लिए आवश्यक है कि राज्य सरकारें इनके द्वारा निर्गमित ऋण पत्रों के मूलधन तथा ब्याज की गारन्टी करें और रिज़र्व बैंक इनके ऋण पत्रों को ट्रस्टी सिक्यौरिटी घोषित करे।

(४) सरकार से साख प्राप्ति

केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारें भी किसानों को ऋण देकर आर्थिक सहायता करती हैं। ऐसे ऋण को 'तकावी ऋण' कहा जाता है। प्रान्तीय सरकारें किसानों को सन् १८८३ के भूमि सुधार अधिनियम के अन्तर्गत दीर्घकालीन ऋण देते हैं, जो कृषि के स्थायी सुधार में जैसे—कुँआ खोदन, बाँध बनाने इत्यादि के लिए लगाया जाता है।

इसी प्रकार सन् १८८४ के किसान ऋण अधिनियम के अन्तर्गत भी बीज, औजार, खाद, हल, बैल इत्यादि खरीदने के लिए अल्पकालीन ऋण (जो एक या दो वर्षों के लिए दिया जाता है) देती है। इन ऋणों की अदायगी लम्बी अवधि तथा छोटी किस्तों में की जाती है। सूद की दर भी कम होती है, यही विशेषता है।

दोष—

किन्तु तकावी ऋण से हमारे देश के किसानों को विशेष सहायता नहीं मिल पाई है, जिसके कारण ये है—ऋण की स्वीकृति करने में विलम्ब, सरकारी कर्मचारियों द्वारा अवैधानिक रिश्वतें माँगना, ऋण की अदायगी के लिए कठोरता, देख रेख की कठिनता और प्रबन्ध की अस्थिरता इत्यादि मुख्य हैं। इन असुविधाओं के

अन्तर्गत जो ऋण दिया जाता है वह किसानो की आवश्यक्ताओ से कम होता है (वह भी केवल खेती के ही लिए)। अधिकांश किसानों को तकावी ऋण किस प्रकार प्राप्त किया जाता है, इसका भी ज्ञान नहो होता। यदि ये बुराइयाँ दूर हो जाएँ तो सरकार इन ऋणों को देकर कृषि सुधार के पवित्र कार्य में अपना कर्त्तव्य पूरा कर सक्ती है। अकाल की कठिनाइयों को दूर करने म अल्पकालीन ऋण अच्छा फल दे सक्ते ह और विशेषकर उन अविकसित एव पिछडे क्षत्रो में जहाँ सहकारी साख समितियाँ सफल नहीं हो सक्ती।

ऐसा अनुमान है कि सब राज्य सरकारें किसानो की कुल ३% आवश्यक्ताओं को पूरा करती है। इन ऋणों को देने में सरकार बहुत दर लगाती है। इन ऋणों से कृपकों को लाभ पहुँचाने के लिए केन्द्रीय बेंकिंग जाँच समिति न निम्न सुभाव दिये हैं—(१) ऋणों को देने में दरी नही करनी चाहिए। (२) घूसखोरी को रोकने का प्रबन्ध किया जाय। (३) यदि फसल खराब हो जाय, तो ऋण छोड देना चाहिए। (४) कृपकों को पता होना चाहिए कि ये ऋण किस प्रकार दिये जाते है। और (५) ये ऋण सहकारी समितियो द्वारा दिये जाने चाहिए।

(५) संयुक्त पूँजी वाली बैंक

ये बेंकें भी कृषि साख के लिये प्रत्यक्ष रूप मे विशेष सहायता नहीं पहुँचाती। उनके साधारण व्यवसाय में कृषि अर्थ प्रबन्धन का काय नहीं किया जाता, क्योंकि उनका सगठन अल्पकालीन या दीर्घकालीन ग्राम्य साख आवश्यक्ताओं की पूर्ति करने के लिए नहीं होता। फिर भी ये परोक्ष रूप में व्यापारियो के द्वारा कृषि अर्थ-प्रबन्धन के कार्य में सहायता अवश्य पहुँचाती है। इसके अतिरिक्त किसानों के पास खेती की सुरक्षा की योग्यता नहीं रहती, कृषि अर्थ-प्रबन्धन की विशेष प्रकृति, उद्योग की मौसमी आवश्यकता एव अनार्थिक प्रकृति, किसानो की अज्ञानता एव अशिक्षा इत्यादि ऐसी बातें है, जो व्यापारिक बैंकों को प्रोत्साहन नहीं देती। यदि किसानो के द्वारा उत्पादन की जाने वाली फसलो पर तथा सारे अथवा खेती के धन (पशु) पर पहिला अधिकार व्यापारिक बैंकों को दिया जावे तो वे अवश्य ही कृषि की ओर अपने व्यापार का विकास कर सक्ती हैं।

(६) रिजर्व बैंक

रिजर्व बैंक ने कृपकों की आर्थिक सहायता के हेतु एक कृषि-साख विभाग खोला है, जो निम्न ढङ्गों से साख सुविधा प्रदान करता है :—

(१) यह सहकारी प्रतिभूतियो के पीछे अधिक से अधिक ९० दिन के लिए राज्य सहकारी बैंकों एव केन्द्रीय भूमि बन्धक बैंको को ऋण दे सकता है।

३०% मकान बनवाने या मरम्मत का २५% और अन्य मदो का १०% व्यय उधार से पूरा किया जाता है।

(६) सम्पूर्ण देश के लिये ग्रामीण परिवारो का पूंजी बनाने पर कुल व्यय ६५० करोड रुपया है जिसमे से ३०० करोड रुपये कृषि में (भूमि और ढोरो का क्रय छोडकर) लगभग २५० करोड रुपया रिहायशी मकानो आदि मे और १०० करोड रुपया गैर कृषि व्यवस्था मे व्यय होने का अनुमान था।

(७) कृषि मे पूजी विनियोग की कुछ विशेष मदो के लिये खतिहर परिवारो की साख आवश्यकताये वास्तविक व्यय की तुलना मे उच्च स्थिति के परिवारो की दशा मे २ से ६ गुनी अधिक और निम्न स्थिति के परिवारो की दशा मे ३ से २७ गुना अधिक है।

(८) खतिहर जो प्रतिभूति दे सकते है उनके सम्बन्ध मे यह पता लगा कि लगभग ५०% परिवार अपनी अचल सम्पत्ति जमानत के रूप मे देते है। बाकी मे से लगभग १/४ अपनी व्यक्तिगत जमानत पर रुपया लेते है। बाकी मे से अधिकाँश ने अपनी जमानत का आधार नही बताया। यही नही उच्च वर्ग का ऋण आवश्यकताये प्रति परिवार १ ३००) है और नीचे के वर्ग की ८००) जबकि उनकी जमीन-जायदाद का मूल्य क्रमश ७ ०००) और २ ०००) प्रति परिवार है।

(९) मोटे तौर पर ग्रामीण क्षेत्र मे दिये गये कुल धन का लगभग १/२ से २/३ तक शायद शहरी क्षत्रो से आता है।

(१०) विचाराधीन वर्ष मे प्रति खतिहर परिवार उधार ली गई रकम औसतन २१०) थी जिसमे से लगभग ३% सरकार से ३% सहकारी सस्थाओ से १४% सम्बन्धियो से २% जमादारो से २५% खतिहर साहूकारो से ४५% पेशेवर महाजनो से ६% व्यापारियो से और १% से कुछ कम वाणिज्य बको से प्राप्त होता है। बाकी अन्य प्रकार के ऋणदाताओ से प्राप्त हुआ है।

समिति की महत्त्वपूर्ण सिफारिशें—

(१) नवीन कृषि साख नीति के अन्तर्गत राजकीय बैक की स्थापना का सुझाव सबसे महत्त्वपूर्ण है—केन्द्रीय सरकार ने इसे स्वीकार कर लिया है और प्रथम जुलाई सन् १९५५ से इम्पीरियल बैक आफ इण्डिया को भारत की राज्य बैक मे परिवर्तित कर दिया गया है। बैक प्रधानत उन क्षेत्रो मे नई शाखाये बढायेगा जहाँ अभी तक अन्य बैको की शाखाये नही है और जहा सहकारी शाखा समितियो का विकास नही हुआ है। बैक के विकास के साथ साथ सहकारी ऋण सस्थानो को ऋण सुविधाये सुलभ हो सकेंगी एव ग्रामीण क्षेत्रो मे मुद्रा के स्थानान्तरण मे सरलता होगी।

(२) राष्ट्रीय सहकारी विकास एवं भाण्डारण बोर्ड—एक 'राष्ट्रीय सहकारी विकास एव भाण्डारण बोर्ड' (National Co-operative Development and Warehousing Board) बनाया जाय, जिसके निम्न दो उद्देश्य हो—सहकारी सगठन, विशेषकर विक्रय समितियो का विकास करना और कृषि उत्पादन के सग्रहीकरण की सुविधाओ का विकास करना । इसके अन्तर्गत दो कोष होंगे—राष्ट्रीय सहकारी विकास फण्ड एव दूसरा राष्ट्रीय भाण्डारण विकास फण्ड । राष्ट्रीय सहकारी विकास फण्ड केन्द्रीय सरकार द्वारा दी गई ३ करोड रुपये की निधि से प्रारभ किया जायगा और राज्य सरकारो को दीर्घकालीन ऋण देने में प्रयोग होगा, जिससे राज्य सरकारें राज्य की सहकारी विकास समितियो की पूँजी में रुपया लगा सकें। दूसरा कोष केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रदान की गई २ करोड रुपये की निधि से आरम्भ होगा और इसका उपयोग 'अखिल भारतीय भाण्डारण निगम' की अश पूँजी में लगाने तथा राज्य सरकारो को राज्य भाण्डारण कम्पनियो में रुपया लगाने के लिए ऋण देने में होगा।

(३) राष्ट्रीय कृषि साख फण्ड—रिजर्व बैंक द्वारा दो फण्ड स्थापित किये जायेंगे। राष्ट्रीय कृषि साख (दीर्घकालीन) फन्ड में ५ करोड रुपया होगा और प्रति वर्ष रिजर्व बैंक इसमे ५ करोड रुपया जमा करती रहेगी। इस फण्ड में से रिजर्व बैंक राज्य सरकारो को दीर्घकालीन ऋण देगी, जिससे वे राज्य की सहकारी साखसमितियो की शेयर पूँजी में रुपया लगा सकें। राज्य सरकारो द्वारा प्रमाणित भूमि बन्धक बैंको को भी इस निधि में से रुपया दिया जायगा। 'राष्ट्रीय कृषि साख (स्थायीकरण) फण्ड' (National Agricultural Credit (Stabilisation) Fund) में रिजर्व बैंक प्रति वर्ष १ करोड रुपया जमा करेगी, जिसका उपयोग राज्य सहकारी बैंकों (Apex Banks) को मध्यकालीन ऋण देने में किया जायगा। हाँ, इन बैंको के पास इस बात के सन्तोषजनक कारण होने चाहिए कि अमुक राज्य बैंक दुर्भिक्ष या बाढ अथवा अन्य किसी कारण से अल्पकालीन ऋणो का भुगतान करने में असमर्थ है। ऐसी दशा में इन अल्पकालीन ऋणो को मध्यकालीन ऋणो में परिवर्तन किया जा सकेगा और वह रुपया राष्ट्रीय कृषि साख (स्थायीकरण) कोष में से दिया माना जायगा। राज्य सहकारी बैंको को भी अपने अपने क्षेत्रों में इस प्रकार के फण्ड खोलने होंगे, ताकि वे केन्द्रीय बैंको के बकाया अल्पकालीन ऋणो को इस फन्ड के द्वारा मध्यकालीन ऋणो में परिवर्तित कर सकें।

(४) सहकारी संस्थाओं मे राज्य द्वारा सह-स्वामित्व—यह सुझाव भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। समिति का कहना है कि यह सह-स्वामित्व (State Partnership) केन्द्रीय व प्राथमिक साख समितियो में भी इस प्रकार से स्थापित किया जाना चाहिये, जिसमे शीर्ष-स्तर केन्द्रीय स्तर एव प्राथमिक स्तर पर शेयर

पूँजी का कम से कम ५१% भाग किसी न किसी रूप में राज्य के स्वामित्व में आ जाय। वस्तुत: राज्य सरकार राज्य के सहकारी शीर्ष_बैंकों में पूँजी विनियोजित करेगी और शीर्ष बैंक केन्द्रीय बैंकों में तथा अन्तत: केन्द्रीय बैंक प्राथमिक सहकारी साख समितियों में। इस प्रकार राज्यों का सारा सहकारी साख संगठन एक सूत्र में बँध जायगा और उसमें राज्य द्वारा पूँजी के विनियोग से ऋण सुविधाओं का विकास होगा तथा कृषि साख सम्बन्धी नीति के प्रचलन में सुविधा रहेगी।

(५) प्रशिक्षण एवं निरीक्षण—समिति ने अधिकारियों एवं कर्मचारियों के प्रशिक्षण पर विशेष बल दिया है, जिससे नवीन संगठन का कार्य-संचालन एवं निरीक्षण कुशलतापूर्वक हो सके।

इस प्रकार समिति ने एक ऐसी नीति का सुझाव दिया है जिसमें राज्य केवल संचालक ही नहीं बल्कि साझीदार भी होगा। यद्यपि यह सहकारिता के सिद्धान्तों के विरुद्ध है कि संगठन में राज्य का इतना प्रभुत्व हो, तथापि भारतीय कृषि की वर्तमान आवश्यकताओं को देखते हुये यह मार्ग उचित है। इस नीति का लक्ष्य यह है कि राज्य द्वारा प्रतिपादित एवं संचालित सहकारी साख संगठन के विकास में कृषि के क्षेत्र में इतनी अधिक प्रतियोगिता उत्पन्न हो कि प्राइवेट साख संस्थाओं के वर्तमान दोष स्वयं दूर हो जायें और भविष्य में वे राष्ट्रीय कृषि नीति के हित को ध्यान में रखकर ही साख सुविधायें प्रदान कर सकें। केन्द्रीय सरकार ने समिति की अधिकांश सिफारिशों को सिद्धान्तत: मान लिया है। भारत की राज्य बैंक स्थापित हो चुकी है तथा अखिल भारतीय भाण्डारण निगम की स्थापना प्रगति के पथ पर है।

पंच-वर्षीय योजनाओं में कृषि साख—

भारत की प्रथम पंच वर्षीय योजना के अन्तर्गत सरकार तथा सहकारी संस्थाओं द्वारा सन् १९५५-५६ तक १३५ करोड़ रुपये की कृषि साख प्रदान करने का आयोजन था, किन्तु कुछ कारणों से इस लक्ष्य की पूर्ति नहीं हो सकी। प्रथम योजना अवधि में केवल ४३ करोड़ रुपये की कृषि साख की ही व्यवस्था की जा सकी। द्वितीय-पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत सरकार तथा सहकारी समितियों द्वारा कुल २२५ करोड़ रु० की कृषि साख व्यवस्था का आयोजन है, जिसमें अल्पकालीन साख की मात्रा १५ करोड़ रुपये, मध्यकालीन साख की मात्रा ५५ करोड़ रुपया और दीर्घकालीन साख की मात्रा केवल २५ करोड़ रुपया हो गई।

STANDARD QUESTIONS

(1) Examine the existing agencies for financing agriculture in

India What have been their limitations ? What Steps have been taken in recent years to remove them ?

(2) Give the main findings of the All India Rural Credit Survey Outline the principal recommendations made therein for the reorganisation of the system of rural credit

(3) Discuss the position of Village Moneylenders in our rural Economy

(4) What are the financial requirements of Indian agriculturist How and from what sources do they get the necessary finance

अध्याय ६

सहकारिता

(Co-operation)

प्रारम्भिक—

सहकारिता शब्द का शाब्दिक अर्थ है—'एक साथ मिल जुल कर कार्य करना।' अतः सृष्टि के आरम्भ से ही सहकारिता किसी न किसी रूप में मानव समाज में विद्यमान रही है। मनुष्य स्वभाव से ही एक सामाजिक प्राणी है और समाज में रहकर उसे अन्य व्यक्तियों के सहयोग से ही कार्य करना पड़ता है। मानव ही क्यों, पशु-पक्षी, कीड़े मकोड़े आदि भी मिल कर कार्य करते हुए देखे जाते है। यह एक सामान्य अनुभव है कि सम्मिलित प्रयत्न द्वारा जो कार्य किया जाता है, वह निश्चय ही सफल होता है एवं सम्पन्न हो जाता है। सम्मिलित प्रयास के द्वारा मानव बड़ी बड़ी योजनाओं को सरलता से ही पूरा कर डालता है।

गत कुछ शताब्दियों से (विशेषकर औद्योगिक क्रान्ति के बाद) विश्व के कुछ प्रमुख राष्ट्रों में ऐसी शक्तियाँ क्रियाशील रही है, जिनके कारण मानव द्वारा मानव का शोषण बढ़ गया है। जो शक्तिशाली है एवं भौतिक दृष्टि से साधन सम्पन्न है, व अशक्त एवं निर्धन व्यक्तियों को प्रतियोगिता में टिकने नहीं देते। 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाले इस युग में पूँजीपतियों, उद्योगपति एवं बड़े बड़े व्यापारियों की ऐसी अनेक संस्थायें है, जिनके समक्ष असंख्य छोटे छोटे उत्पादक एवं श्रमिक अपना जीवन निर्वाह नहीं कर पाते। परिणामतः उनका निरन्तर शोषण होता रहता है और भौतिक उन्नति करने में वे अपने को विवश पाते है। 'सहकारिता' ऐसे ही असंख्य व्यक्तियों की भौतिक प्रगति के लिए रामबाण है जो शक्तिहीन है, निर्धन है तथा निरन्तर शोषण के कारण जिनका आत्मविश्वास खो गया है—सहकारिता उनमें नवीन शक्ति का संचार करती है और सदैव के लिए उनकी सुख समृद्धि का मार्ग खोल देती है।

सहकारिता से आशय—

सहकारिता एक ऐसा आर्थिक संगठन है जिसके द्वारा एकाकी तथा शक्तिहीन व्यक्ति दूसरों के सहयोग से ऐसे भौतिक लाभ प्राप्त करता है, जो केवल धनाढ्य व

शक्तिशाली लोगों को ही उपलब्ध है। सहकारिता की योजना के अन्तगत निर्बल व्यक्ति अथवा वग अपने हितो की रक्षा करन अथवा उन्नति के लिए मिल जुल कर कार्य करते हैं। इस प्रकार यह एक मिला जुला प्रयत्न है। जिसका उद्देश्य पारस्परिक सहायता द्वारा सामूहिक आवश्यकताओं की पूर्ति करना अथवा सामूहिक कठिनाइयों को दूर करना होता है। इसका आधार यह होता है कि 'प्रत्येक सबके लिए हो, और सब प्रत्येक के लिए।' सहकारिता के द्वारा जीवन के ऐसे उच्चतम एव उन्नत स्तर की वास्तविक सिद्धि की आशा की जाती है जिससे श्रेष्ठतम व्यापार, श्रेष्ठतम कृषि तथा समृद्ध जीवन सम्भव हो सके।

कुछ परिभाषायें —

श्री फे (Fay) के अनुसार, 'एक सहकारी समिति मिलकर व्यापार करने का वह सगठन है, जो दुर्बल व्यक्तियों में बनता है और निष्काम भावना से ऐसी शर्तों पर सचालित किया जा सकता है कि सभी व्यक्ति, जो इसकी सदस्यता से सम्बन्धित कर्त्तव्यों को ग्रहण करते हैं, उसके लाभ में उसी अनुपात में भाग पायेंगे, जिसमें उन्होंने सगठन का प्रयोग किया है।

श्री हैरिक (Harric) का कथन है—'सहकारिता स्वेच्छा से सगठित हुए उन व्यक्तियों का कार्य है जो अपनी सम्मिलित शक्ति या प्रसाधनों का सम्मिलित प्रबन्ध के अन्तगत सबके लाभार्थ उपयोग करना चाहते हैं।'

सर होरेस प्लन्केट के शब्दों में "सहकारिता वास्तव में आत्म-सहायता है, जो कि सगठन के कारण अधिक प्रभावशाली हो जाती है।"

श्री एच० कलबर्ट कहते हैं, 'सहकारिता उस प्रकार का सगठन है, जिसमें समानता के आधार पर और अपने आर्थिक हितों की उन्नति के लिए व्यक्ति स्वेच्छा से भाग लेते हैं।'

सहकारी योजना समिति १९४६ के अनुसार, 'सहकारिता एक ऐसा सगठन है जिसमें लोग समानता के आधार पर अपने आर्थिक हितो की वृद्धि के लिए स्वेच्छा से सम्मिलित होते हैं। जो लोग शामिल होते हैं, उनका एक सामान्य हित होता है, जिसे वे व्यक्तिगत प्रयास द्वारा पूरा नही कर सकते, क्योंकि उनमें से अधिकाँश व्यक्तियों की आर्थिक स्थिति दुर्बल होती है। इस व्यक्तिगत दुर्बलता पर अपने अलग अलग साधनों का एकीकरण करके, पारस्परिक सहायता द्वारा आत्म-सहायता को प्रभावशील बनाकर और आपस मे ईमानदारी का व्यवहार रखते हुए विजय प्राप्त कर ली जाती है।'

सक्षेप में सहकारिता एक प्रकार का सगठन है, जिसमें विभिन्न व्यक्ति अपने

किसी सामान्य उद्देश्य की पूर्ति के लिए कुछ निश्चित नियमो के अन्तर्गत अधिकतम लाभ के लिए मिलकर कार्य करते है ।

सहकारिता के आवश्यक तत्व—

सहकारिता की उपर्युक्त परिभाषा के अध्ययन से इसके निम्न तत्व स्पष्ट हैं.—

(१) ऐच्छिक सगठन—सहकारी सगठन एक ऐच्छिक सगठन है अर्थात् किसी पर इसमें शामिल होने या अलग हो जाने के लिए दबाव नही डाला जाता । दूसरे शब्दो में, प्रत्येक व्यक्ति को इस बात की पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है कि वह जब चाहे इसका सदस्य बन जाए और जब चाहे अलग हो जाय । श्री एच० कलवर्ट महोदय ने एक स्थान पर लिखा है कि 'जब व्यक्तियों को सम्मिलित होने की अथवा अलग होने की स्वतन्त्रता होगी, तभी वफादारी, ईमानदारी और निष्कामभाव वाली वास्तविक सहकारिता की भावना का विकास हो सकता है और सहकारिता की भावना के बिना 'सहकारिता' अधिक दिनो तक नही चल सकती ।

(२) प्रजातन्त्रीय प्रशासन—एक सहकारी समिति का प्रबन्ध जनतन्त्र के सिद्धान्तो पर किया जाता है । यह एक ऐसा एच्छिक सगठन है, जिसमें विभिन्न व्यक्तियो को सयुक्त करने वाली कडी एक सामान्य आर्थिक आवश्यकता का होना है, अत. यह नितान्त आवश्यक है कि सब व्यक्ति इसमें समान रूप से 'आवाज' रखें, जिससे किसी को भी हानि न पहुँचे । जनतन्त्रीय शासन में व्यक्ति का व्यक्ति द्वारा शोषण नही होता । इसके अन्तर्गत शक्ति का दुरुपयोग सम्भव नही । सहकारिता के अन्तर्गत लोगो का उद्देश्य एक दूसरे को सहायता देकर अपनी सहायता करना होता है, लाभ कमाना नही । पूंजी के आधार पर मताधिकार भी नही दिए जाते और न सगठन के लोगो का पूँजी के अनुपात में वितरण होता है । 'एक व्यक्ति एक वोट' का सिद्धान्त अपनाया जाता है, अर्थात् सभी को प्रबन्ध में बराबर अधिकार मिलता है और व्यापार के लाभो का सदस्यो में वितरण कर दिया जाता है ।

(३) पारस्परिक सहायता द्वारा आत्म सहायता—सदस्यगण अपने ही आर्थिक हितो की वृद्धि के लिए सगठित होते है, दूसरे के लाभार्थ नही । वे सहकारी सस्था के लिए और सहकारी सस्था उनकी सहायता के लिए होती है । 'पारस्परिक सहायता के द्वारा आत्म सहायता करना' उनका मूल मन्त्र है । सदस्यगण आवश्यकता वाले व्यक्ति की इसलिये सहायता करते है, क्योंकि वे जानते है कि जब उन्हे सहायता की आवश्यकता होगी, तो दूसरे उनकी सहायता करेंगे । इस प्रकार जो सहायता चाहते है और जो सहायता करते है उनके हितो में विरोध भाव नही होता। इसीलिये उनका नारा है कि, 'प्रत्येक सबके लिए और सब प्रत्येक के लिए ।' इसी कारण सहकारिता अपने सदस्यो को सयम से चलने का उपदेश करती है ।

(४) सयुक्त प्रयास द्वारा सामान्य कल्याण को वृद्धि—स्वार्थ-भावना से प्रेरित प्रयत्नो को एक सहकारी सगठन में कोई स्थान नही है। एक सहकारी सगठन स्वार्थी व्यक्तियो का सगठन नही होता। व्यक्तिवाद अथवा 'प्रत्येक अपने लिए' की भावना, जोकि प्रतिस्पर्धा को जन्म देती है, एक सहकारी सगठन में नही पाई जाती।

(५) सेवा की भावना—जैसा कि तालमकी (Talmaki) ने कहा है कि 'सहकारिता केवल व्यापार मात्र नही है वरन् व्यापार के साथ साथ सेवा की भावना का भी सयुक्तिकरण है, जो वफादारी, भ्रातृभावना और सामूहिक भावना जागृत करती है।' पारस्परिक सहायता द्वारा आत्म सहायता करने के लिए एक निष्काम भावना और ईमानदारी का होना बहुत आवश्यक है। सहकारी सस्था का कार्य लाभ की भावना से नही वरन् सेवा भावना म चलाया जाता है। इस प्रकार सहकारी आन्दोलन वास्तव मे नैतिक आन्दोलन हैं। चूँकि इसके व्यापार के सचालन में ईमानदारी और निस्वार्थपरता का पालन होता है, इसलिये बहुतो के लिए सहकारिता एक 'विश्वास' और 'धर्म' है। यह वास्तव में एक ऐसा व्यापारिक सगठन है, जिसमें आर्थिक उन्नति की उपेक्षा चरित्र के सुधार पर अधिक बल दिया जाता है।

सहकारी आन्दोलन का प्रारम्भ—

यद्यपि सहकारिता का इतिहास अधिक प्राचीन नही है किन्तु फिर भी विश्व के प्रमुख देशो में इसके विकास की सीमा को देखते हुए हमें आश्चर्य होता है। इसका आरम्भ सर्व प्रथम उपभोग के क्षेत्र में हुआ, जबकि इङ्गलैंड में सन् १८४४ मे रोकडेल (Rochdale) के कुछ बुनकरो ने उपभोग की वस्तुयें प्राप्त करने के लिए एक सहकारी समिति स्थापित की, जिसके मुख्य सिद्धान्त थे—प्रति व्यक्ति को केवल एक ही मत देने का अधिकार, प्रचलित बाजार मूल्य पर विक्रय एवं खरीद के अनुपात में लाभ का सदस्यो में वितरण। किन्तु सहकारिता के इतिहास में सबसे महत्वपूर्ण घटना जर्मनी मे १६वी शताब्दी के आरम्भ म हुई। उस समय जर्मनी के किसानो तथा शिल्पियों की आर्थिक दशा बहुत शोचनीय थी। महाजन इनका विविध ढगो म शोषण करते थे। उसी समय जर्मनी के रैफाइजन (Raiffeisel) तथा शुल्ज-डलिज (Schulze-Delitsch) नामक दो समाज सुधारको ने सहकारिता द्वारा इस समस्या के हल का प्रयत्न किया। रैफाइजन ने ग्रामीण जनता के हितार्थ और शुल्ज-डेलिज ने नगरी जनता के कल्याणार्थ सहकारी साख समितियो की स्थापना की। हमारे देश में भी इन्ही के आधार पर सहकारी साख समितियो का निर्माण किया गया है, अतः इनकी प्रमुख विशेषताओ पर प्रकाश डालना अनावश्यक न होगा।

शहरी ऋण समितियो की अपेक्षा ग्रामीण ऋण समितियो पर विशेष बल दिया गया, क्योंकि वे अपेक्षतः अधिक आवश्यक और महत्त्वपूर्ण थी। प्रत्येक प्रान्त में एक सहकारी समितियो का रजिस्ट्रार नियुक्त किया गया एव निरीक्षण तथा अकेक्षण की भी व्यवस्था की गई। सहकारिता आन्दोलन को प्रोत्साहन देने के लिये कुछ छूटें भी दी गई, जैसे—आय-कर स छूट, मुद्राक कर मे छूट आदि, किन्तु कुछ दिशाओ में यह अधिनियम दोषपूर्ण था.—प्रथम, गैर साख समितियो की स्थापना के लिये इसमें कोई व्यवस्था न थी। दूसरे इसका उद्देश्य केवल प्रारम्भिक समितियो की स्थापना करने का था। इसमें निरीक्षण तथा नियन्त्रण के लिए केन्द्रीय समितियों के विकास और सगठन की व्यवस्था नही की गई थी। ग्रामीण तथा शहरी समितियो का भेद भी कृत्रिम था, अतएव इन दोषो को दूर करने के लिये सन् १९१२ का नया अधिनियम बनाया गया।

सन् १९०४ के अधिनियम के आधार पर देश मे अनेक सहकारी साख समितियो का सगठन किया गया, जो नीचे दी हुई तालिका मे स्पष्ट हो जाता है।

वर्ष	समितियों की सख्या	सदस्यो की सख्या हजार मे	कार्यशील पूँजी (लाख रुपयो में)
१९०६ ०८	८४३	७० ८	२३·७
१९१०-१२	८१७७	४०३·३	३३४·७

सन् १९१२ का सहकारी अधिनियम—

सन् १९०४ के अधिनियम के दोषो को दूर करने के लिए सन् १९१२ में, जो नया अधिनियम बनाया गया, उसकी प्रमुख विशेषतायें निम्न थी.—

(१) केवल साख समितियाँ ही नही, वरन् अन्य प्रकार की समितियाँ भी, जिनका उद्देश्य सहकारिता के सिद्धान्तो पर सदस्यो का आर्थिक विकास करना हो, इस नियम के अन्तर्गत स्थापित की जा सकती थी।

(२) प्रारम्भिक समितियो के साथ उनके कार्यों को सुविधाजनक बनाने के लिए समितियो के सघ, केन्द्रीय सघ एव प्रान्तीय सघो को भी वैधानिकता प्रदान की गई। इन सघो में सदस्यो का उत्तरदायित्व सीमित रखने का निश्चय किया गया एव ग्रामीण प्रारम्भिक समिति मे उत्तरदायित्व पूर्व की भाँति असीमित रहा।

(३) कोई भी समिति रजिस्ट्रार की आज्ञा लेकर अपने लाभ का चतुर्थांश सुरक्षित कोष में जमा करने के बाद, शेष लाभ का १०% शिक्षा एव दान सम्बन्धी कामो के लिये दे सकती है।

(४) सहकारी अधिनियम के अन्तर्गत जो व्यापारिक संस्थायें रजिस्टर्ड नहीं हैं, वे 'सहकारी' शब्द का प्रयोग नहीं कर सकेंगे।

(५) समिति के सदस्यों के अंशों को ऋण चुकाने के लिये समबद्ध नहीं किया जा सकेगा।

(६) अपने ऋण की राशि को वसूल करने में भूमि कर के बाद समितियों को प्राथमिकता दी जावेगी।

इस प्रकार सन् १९१२ के अधिनियम ने देश में सहकारिता आन्दोलन को बहुत अधिक प्रोत्साहन दिया। इसके फलस्वरूप गैर साख समितियों की संख्या में वृद्धि होने लगी। जैसा कि नीचे दिए हुए आँकड़ों से स्पष्ट है, इससे समितियों की संख्या, उनके सदस्यों तथा उनकी क्रियाशील पूँजी में बहुत विकास हुआ :—

वर्ष	समितियों की संख्या (हजार में)	सदस्यों की संख्या (लाखों में)	सक्रिय पूँजी (करोड़ों में)
१९११-१५	११·७६	५·४८	५·४८
१९१६-२०	२८·४८	११·२६	१५·१८

इसी बीच सहकारिता आन्दोलन की प्रगति से पूर्ण अवगत होने के लिए सन् १९१४ में सरकार ने श्री मैकलगन की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की जिसकी रिपोर्ट सन् १९१५ में प्रकाशित हुई।

मैकलगन समिति के सुझाव

(१) समितियों के लिये उचित सदस्यों के चुनाव तथा उन्हें सहकारिता के सिद्धान्तों से परिचित कराने पर विशेष जोर देना चाहिये।

(२) लेन देन केवल सदस्यों तक ही सीमित रखा जाय।

(३) किसी भी सदस्य को ऋण देने के पूर्व उसकी आर्थिक स्थिति की पूर्ण जाँच कर लेनी चाहिये।

(४) ऋण का उपयोग केवल उत्पादक कार्यों के लिये ही होना चाहिये।

(५) सदस्यों के बीच मितव्ययिता का प्रचार करना चाहिये।

(६) नई समितियों के निर्माण में शीघ्रता से काम नहीं करना चाहिये। जो सहकारी समितियाँ सहकारिता के सिद्धान्तों तथा आदर्शों के अनुकूल कार्य नहीं करती हैं, उन्हें बन्द कर देना चाहिये।

यद्यपि उपर्युक्त सुझाव सहकारी आन्दोलन की प्रगति के लिये बहुत आवश्यक थे, परन्तु प्रथम विश्व-युद्ध में व्यस्त होने के कारण सरकार ने इन सुझावों पर विशेष ध्यान नहीं दिया।

सन् १९१९ से सन् १९२९ तक सहकारिता का प्रसार—

सन् १९१९ के राजनैतिक सुधारों के अनुसार सहकारिता प्रान्तीय विषय बन गया, अतएव इसके संचालन का भार प्रान्तीय सरकारों के हाथ में आ गया। फलतः भिन्न भिन्न प्रान्तों ने अपनी आवश्यकतानुसार नये नये अधिनियम बनाये। उदाहरण के लिए बम्बई ने सन् १९२५ में, मद्रास ने सन् १९३२ में, बिहार एवं उड़ीसा ने सन् १९३५ में और कुर्ग ने १९३७ में अपनी अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार अलग अलग अधिनियम बनाये। इनसे सहकारी आन्दोलन को काफी बल मिला एवं उसकी गति तीव्र हो गई। कुछ प्रान्तों में तो आन्दोलन की प्रगति का अध्ययन करने तथा आवश्यक सुझाव देने के हेतु समितियों की नियुक्ति की गई। कृषि के शाही आयोग ने भी सहकारिता के विकास पर अधिक जोर दिया। इस प्रकार सन् १९१९ से लेकर सन् १९२९ तक के बीच सहकारिता आन्दोलन की प्रगति काफी तीव्र रही। निम्नलिखित आँकड़ों से आन्दोलन की गति का आभास मिलता है:—

वर्ष	समितियों की संख्या (हजार में)	सदस्यों की संख्या (लाख में)	क्रियाशील पूँजी (करोड़ में)
१९२१ से १९२५	५७·७१	२१·५५	३६·३६
१९२६ से १९३०	९३·९४	३६·८६	७४·८६

परन्तु इस अवधि में समितियों द्वारा दिये गये ऋण का अधिकांश भाग लौटाया नहीं जा सका, अतः सहकारी समितियों की बहुत अधिक पूँजी मारी गई। संक्षेप में इस काल में सहकारिता का प्रसार अनियोजित ढंग से होता रहा।

सन १९२९ से सन् १९३९ तक सहकारिता का प्रसार—

सन् १९२९ से विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी के कारण सहकारी आन्दोलन को बड़ा धक्का पहुँचा। अनाज के भाव गिर जाने के कारण कृषकों से ऋण की वसूली करना कठिन हो गया। ऐसी परिस्थिति में समितियों की संख्या में वृद्धि की अपेक्षा उनके पुनर्निर्माण पर अधिक जोर दिया जाने लगा। सन् १९३५ में रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया की स्थापना की गई, जिसके अन्तर्गत एक कृषि साख विभाग भी खोला गया, जिसका कार्य कृषि के विकास के लिए आर्थिक सहायता प्रदान करना था। इस प्रकार सन् १९२९ से सन् १९३९ तक की अवधि को 'सहकारिता आन्दोलन की अवनति तथा पुनर्निर्माण का समय' कहा जाता है।

द्वितीय महायुद्ध में प्रगति—

द्वितीय महायुद्ध के काल में कृषि वस्तुओं के मूल्य स्तर में वृद्धि से सहकारी समितियों की आर्थिक स्थिति में काफी सुधार हुआ। इनकी संख्या, पूँजी तथा उनके

कार्य-क्षेत्र में तेजी से वृद्धि हुई। सदस्यों ने ऋण का चुकाना आरम्भ किया, निक्षेप बढ़े और नये ऋणों की माँग कम होगई। युद्ध-काल में एव उसके बाद उपभोक्ता सहकारी भण्डारों तथा सहकारी विक्रय समितियों में विशेष रूप से वृद्धि हुई।

स्वतन्त्रता के पश्चात् सहकारी आन्दोलन—

स्वतन्त्रता के पश्चात सहकारी आन्दोलन को एक नवीन मोड मिला। रिजर्व बैंक ने सहकारी आन्दोलन के विषय में एक निर्देशक समिति (Committee of Direction) नियुक्त की, जिसने यह विचार प्रगट किया कि भारत में सहकारी आन्दोलन के विकास की महान् सम्भावनायें हैं। आवश्यकता है सफलता के हेतु अनुकूल वातावरण की। इसके लिये समिति ने कई अमूल्य सुझाव दिये—(१) प्रत्येक स्तर पर सहकारी सस्थाओं से सरकार की साझेदारी हो, (२) साख को फसल की बिक्री और गोदाम में रखने के कार्य आदि से सम्बन्धित कर दिया जाय, (३) प्रारम्भिक कृषि साख समितियो का आधारशिला के रूप मे विकास किया जाय, (४) अनाज गोदामो की स्थापना, (५) सकारी कर्मचारियों के प्रशिक्षण की समुचित व्यवस्था और (६) इम्पीरियल बैंक का राष्ट्रीयकरण, जिससे वह सहकारी साख सस्थाओं को सहायता दे सके।

इन सुझावों के प्रकाश में सरकार ने निम्नलिखित कदम उठाये—

(१) १ जुलाई सन् १९५५ को स्टेट बैंक ऑफ इन्डिया की स्थापना (इम्पीरियल-बैंक का राष्ट्रीयकरण करके) हुई। सन् १९६०-६१ तक इसकी ४०० नई शाखायें स्थापित की जानी हैं।

(२) रिजर्व बैंक आफ इन्डिया एक्ट में सन् १९५५ मे सशोधन किया गया, जिसके अन्तर्गत दो प्रमुख कोष स्थापित किये गये—'राष्ट्रीय कृषि साख (दीर्घकालीन) *कोष' और राष्ट्रीय कृषि साख (स्थिरीकरण) कोष। १० करोड रु० से स्थापित* राष्ट्रीय कृषि साख (दीर्घकालीन) कोष के निम्न उद्देश्य है—(अ) राज्य सरकारो को दीर्घकालीन कर्ज देना, जिससे सरकार सहकारी सस्थाओ की साझेदारी में काम कर सकें, (ब) मध्यकालीन कृषि साख की स्थापना, (स) केन्द्रीय भूमि बन्धक बैंको को दीर्घकालीन साख देना, और (द) केन्द्रीय भूमि बन्धक बैंकों के डिबेन्चर खरीदना।

१ करोड रु० से स्थापित दूसरे कोष (राष्ट्रीय कृषि साख 'स्थिरीकरण' कोष) का उद्देश्य राज्य सहकारी बैंकों को मध्यमकालीन साख देना है, जिससे सूखे व अकाल की दशा में वे अल्पकालीन साख को मध्यम साख मे बदल सकें।

(३) सन् १९५६ मे एक राष्ट्रीय सहकारी विकास तथा गोदाम बोर्ड और २ मार्च सन् १९५७ को एक केन्द्रीय गोदाम निगम स्थापित की गई।

(४) सहकारी कर्मचारियो के प्रशिक्षण के लिए एक सहकारी प्रशिक्षण की केन्द्रीय समिति बनाई गई है और इस कमेटी की योजना के अनुसार उच्च अधिकारियो

के प्रशिक्षण का केन्द्र पूना मे स्थापित किया गया। मध्यम श्रेणी के कर्मचारियो के प्रशिक्षण के लिए भी ५ क्षेत्रीय केन्द्र तथा ८ केन्द्र सामुदायिक विकास खडो के अधिकारियो के प्रशिक्षण के हेतु खोले गये है।

स्पष्ट है कि रिजर्व बैंक भारत के सहकारी आन्दोलन की प्रगति में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है। ५ व्यक्तियो के एक औसत भारतीय परिवार को आधार मानकर साधारणत यह अनुमान लगाया जा सकता है कि सन् १९५६ ५७ के अन्त तक ६ ६६ करोड व्यक्तियो या २५% भारतीय जन सख्या को सहकारिता का लाभ मिलने लगा था।

भारतीय सहकारी आन्दोलन की आधुनिक प्रवृत्तियाँ—

इस आन्दोलन की कुछ आधुनिक प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित है—

(१) सहकारी सस्थाओ, उनकी सदस्यता तथा पूँजी मे वृद्धि—स्वतन्त्रता काल म सहकारी सस्थाओ की सख्या, इनकी सदस्यता एव क्रियाशील पूँजी में काफी वृद्धि हुई है। इस सम्बन्ध म निम्न आँकडे दिय जा सकते हैं—

वर्ष	हजार म	लाख म	करोड रु० में
१९४८ ४९	१६३ ८८	१२७ ००	२१९ ४९
१९५० ५१	१८१ १९	१३७·१५	२७५ ७५
१९५१ ५२	१८५·६५	१३७·९२	३०६·३४
१९५५ ५६	२४० ०४	१७६ २२	४६८·८२
१९५६-५७	२४४·७७	१९३ ७३	५६७ ६७
१९५७ ५८	२५३ ८१	२१४ ३५	६६६·४६

(२) सरकार की उदारतापूर्ण नीति—द्वितीय महायुद्ध के काल म खाद्यान्न तथा अन्य आवश्यक वस्तुओ के वितरण के हेतु तथा 'अधिक अन्न उपजाओ आन्दोलन' को सफल बनाने के लिए भारत सरकार ने सहकारिता के विकास पर अधिक बल दिया। यही नही, देश की आर्थिक समृद्धि मे सम्बर्धित पच वर्षीय योजनाओ में भी इस उपयुक्त स्थान दिया गया।

(३) साख के अतिरिक्त अन्य पहलुओ पर भी बल दिया जाना—युद्ध एव युद्धोत्तर काल म शहरी सहकारिताओ (Urban Co-operatives) ने बडी उन्नति की। खाद और उर्वरक, कृषि औजार एव बीज बाँटने का काय भी अनेक राज्यो में सहकारी समितियो द्वारा किया जाने लगा है। सहकारी खेती का भी विकास हुआ है। हाँ, नियन्त्रणो के हटने पर उपभोक्ता सहकारी समितियो में कमी हो रही है और अब गैर साख समितियो मे युद्ध और युद्धोत्तरकालीन वृद्धि रुक गई प्रतीत होती है।

(४) एकाकी-कार्य समितियो का बहु-उद्देशीय समितियो मे परिवर्तन—यह बडी स्वागतयोग्य प्रवृत्ति है। नव-सचालित बहु उद्देशीय समितिया ग्रामीण व्यक्तियो के व्यव साय और दैनिक जीवन पर प्रभाव डालती हे। उत्तरप्रदेश, बिहार और बम्बई नई बहु उद्देशीय समितियाँ सगठित कर रहे हैं। कुछ एक उद्देशीय समितियो को बहु उद्देशीय समितियो में परिवर्तित करने का भी सुझाव है।

(५) सीमित दायित्व का समर्थन—उत्तर प्रदेश, बम्बई और मद्रास मे नई बहु उद्देशीय समितिया सीमित दायित्व के आधार पर सङ्गठित की जा रही हे और उनका काय क्षेत्र कई गावा तक विस्तृत है।

(६) रिजर्व बैंक का बढता हुआ सहयोग—माग दशन के अतिरिक्त रिजव बैंक अन्य ढङ्गा म भी आ दालन की सहायता करन लगी है। उसन राज्य सहकारी बका की वित्तीय सहायता म वृद्धि कर दी है। सन् १६४६ ४७ में रिजव बक द्वारा राज्य बैंको का दी जान वाली वित्तीय सहायता केवल १½ लाख रुपया थी, सन् १६५१ '२ में १२½ कराड और सन् १६५४ ५५ में यह सहायता २१ २१ करोड रुपया तक पहुँच गई। ब्याज दर भी केवल १½% थी। सहकारी भूमि बन्धक बका को भी इसने अनुदानो में १० से २०% तक वृद्धि कर दी ह। इसके अतिरिक्त रिजव बैंक न सहकारी आ दो लन की प्रगति क विषय म छानबीन करन क हतु कई कमेटिया नियुक्त की हे और कई सर्वेक्षण कराये हे। इस सम्बन्ध म अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वे का बडा महत्त्व है, क्योकि इसी की सिफारिशा के अनुसार ही आजकल भारत में सहकारी आन्दोलन को सचालित किया जा रहा है।

(७) अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वे और सरकार की नीति—उक्त सर्वे कमेटी की रिपोट सन् १६५४ में प्रकाशित की गई, जिसमें उसने अनक महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये। भारत सरकार ने इन सुझावो को मानकर सहकारी आन्दोलन की प्रगति के लिए समुचित कदम उठाये हे। ये सुझाव निम्नलिखित हे :—

(अ) प्रत्येक स्तर पर सरकार सहकारी सस्थाओ के साथ साझेदारी स्थापित करे।

(आ) खाद्य सम्बन्धी काय को फसल की बिक्री एव भन्डार सम्बन्धी कार्यो क साथ सम्बन्धित किया जाय।

(इ) प्रारम्भिक समितियाँ बड आकार की बनाई जायें और उनके सदस्यो का दायित्व सीमित हाना चाहिए।

(ई) सारे देश में अनाज के गोदामों का जाल सा बिछा दिया जाय जिससे किसानो को अपनी फसल की बिक्री मे सहायता हो।

(उ) सहकारी कमचारियो के प्रशिक्षण के हेतु स्कूल खोले जायें।

(ऊ) इम्पीरियल बैंक का स्टेट बैंक के रूप में राष्ट्रीयकरण कर दिया जावे, जिससे यह बैंक सहकारी संस्थाओं की अधिक सहायता कर सके ।

(ए) रिजर्व बैंक के नियमों में उपयुक्त परिवर्तन करके ग्रामीण ऋण की सुविधा के लिये अधिक धन उपलब्ध करना चाहिये ।

(ऐ) एक अखिल भारतीय सहकारी विकास तथा गोदाम बोर्ड की स्थापना की जाय, जिसके आधीन एक विकास कोष एवं एक गोदाम सम्बन्धी कोष रखा जाय ।

इन सुझावों के प्रकाश में भारत सरकार ने मई सन् १९५५ में रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया एक्ट में संशोधन करके दो कोषों की स्थापना की —(१) राष्ट्रीय कृषि साख कोष (दीर्घकालीन) एवं (२) राष्ट्रीय कृषि साख कोष (स्थिरीकरण)। राष्ट्रीय सहकारी विकास तथा गोदाम बोर्ड की स्थापना १ सितम्बर सन् १९५६ को की गई। १ जुलाई सन् १९५५ को इम्पीरियल बैंक ऑफ इण्डिया का राष्ट्रीयकरण करके उसे स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया का रूप दे दिया गया। सहकारी कर्मचारियों के प्रशिक्षण के लिये रिजर्व बैंक तथा भारत सरकार के संयुक्त प्रयत्न से एक केन्द्रीय समिति की स्थापना की गई है। इस योजना के आधीन पूना में एक अखिल भारतीय सहकारी प्रशिक्षण केन्द्र तथा ५ क्षेत्रीय प्रशिक्षण केन्द्रों की स्थापना की गई है। इसके अतिरिक्त ८ अन्य प्रशिक्षण संस्थायें स्थापित की गईं जिनमें सामुदायिक योजनाओं में कार्य करने वाले सहकारी अधिकारियों को प्रशिक्षण दिया जाता है।

पंच-वर्षीय योजनाओं में सहकारिता का महत्व—

पहली योजना में तीन प्रकार की साख के लिये प्रबन्ध किया गया था—अल्प-कालीन ऋण, मध्यम-कालीन ऋण एवं दीर्घकालीन ऋण। भारत सरकार ने सहकारी बैंकों की सहायता के लिये ५ करोड़ रु० और रिजर्व बैंक ने मध्यकालीन ऋण के लिये ५ करोड़ रुपये का प्रबन्ध किया। प्रथम योजना में सहकारिता के विकास के लिये ६६१·२ लाख रुपये का आयोजन किया गया था। क्रय-विक्रय समितियों के संगठन पर अधिक बल दिया गया। बहु-उद्देश्य समितियों का महत्त्व स्पष्टत स्वीकार किया गया, जिससे गाँव की सभी समस्यायें समन्वित रूप से हल की जा सकें। जून सन् १९५५ में भारत में २२ प्रान्तीय सहकारी बैंक ४९६ केन्द्रीय सहकारी बैंक और २६,९५४ कृषि साख समितियाँ थीं। नगरों में इस वर्ष ७१६ सहकारी बैंक, ८,३८६ साख समितियाँ और ३,६५१ श्रमिकों की समितियाँ थीं। प्रथम योजना में सहकारी प्रशिक्षण के लिये १० लाख रुपये की व्यवस्था की गई थी।

दूसरी पंच वर्षीय योजना का उद्देश्य यह है कि गाँव की खेती की सारी पैदावार का प्रबन्ध ग्रामोद्योग और गाँव का व्यापार सब सहकारी संस्थाओं के द्वारा हो।

उद्योगो, मकानो और मजदूरी आदि के लिये भी सहकारी व्यवस्था करने का प्रस्ताव है। इस सम्बन्ध में द्वितीय योजना के प्रमुख लक्ष्य निम्नलिखित हैं :—

बड़े पैमाने की सहकारी समितियाँ	१०,४००
अल्पकालीन ऋण	१५० करोड रु०
मध्यकालीन ऋण	५० करोड रु०
दीर्घकालीन ऋण	२५ करोड रु०
प्रारम्भिक विपणन समितियाँ	१,८००
सहकार चीनी मिल	३८
सहकारी रुई धुनने के कारखाने	४८
अन्य सहकारी समितियाँ	११८
केन्द्रीय और प्रदेशीय गोदाम	३५०
विपणन समितियों के गोदाम	१,५००
बडी समितियो के गोदाम	४,०००

सहकारिता विकास के हेतु योजना में ४७ करोड रु० का आयोजन किया गया है।

भारतीय सहकारी आन्दोलन की धीमी प्रगति के कारण—

जिस समय सहकारी आन्दोलन भारतवर्ष में प्रारम्भ हुआ था, उस समय कृषि एवं ग्रामीण ऋण की समस्यायें हल करने के लिये इसे 'राम वाण' समझा जाता था। ऐसी आशा की जाती थी कि इसके द्वारा कृषकों में मितव्ययिता की आदत पडेगी तथा वे अपने पैरो पर खडा होना सीख जायेंगे। किन्तु दुर्भाग्य का विषय है कि गत अर्द्ध शताब्दी में इस आन्दोलन से उतना लाभ नही हुआ, जितनी कि आशा की जाती थी। इस आन्दोलन की धीमी गति के प्रधान कारण निम्नलिखित हैं :—

(१) सहकारिता के सिद्धान्तो से अनभिज्ञता—इस आन्दोलन की धीमी प्रगति का मुख्य कारण यह है कि भारतीय ग्रामीण जनता सहकारिता का अर्थ भली प्रकार नही समझती है। सहकारिता क्या है, इसकी आधारशिला क्या है तथा इसके उद्देश्य क्या है—इन बातों से वे पूर्ण परिचित नही है। परिणामतः वे सहकारी समितियो की कार्यवाहियों में रुचि नही रखते। सहकारी समितियो एव उनके सदस्यो की संख्या से आन्दोलन की वास्तविक सफलता का अनुमान नहीं लगाया जा सकता।

(२) अति अधिक राजकीय हस्तक्षेप—सहकारिता की सफलता के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि सहकारिता की भावना लोगो के हृदय में उमडे एव स्वेच्छा से वे इस शुभ कार्य में सम्मिलित हों, परन्तु दुर्भाग्य का विषय है कि यह आन्दोलन भारतीय ग्रामीण जनता पर बरबस लादा गया है। इस आन्दोलन में सरकारी नियन्त्रण आज भी इतना अधिक है कि सहकारी समितियों के सदस्य उन्हें 'सरकारी समितियाँ'

समझते हैं। सहकारी समितियों के रजिस्ट्रार को इतनी शक्ति है कि सहकारी समिति के सदस्य स्वेच्छा से कुछ भी सही कर सकते। वास्तव में तो यह 'लोगों द्वारा लोगों के हितार्थ' (राजकीय हस्तक्षेप से परे) आन्दोलन है।

(३) पक्षपात तथा भ्रष्टाचार—भारतीय ग्रामीण जनता अशिक्षा के कारण जातिवाद तथा पक्षपात आदि की बुराइयों में फँसी हुई है। बेईमानी, भ्रष्टाचार, ऋण देने में जाति वालों एवं मित्रों आदि का पक्षपात करना, ऋण का समय पर भुगतान न करना आदि दोष प्रायः सभी समितियों में पाये जाते हैं। इसका प्रमुख कारण यह है कि प्रायः सभी समितियों का प्रबन्ध अकुशल तथा अशिक्षित लोगों के हाथों में है।

(४) सहकारी साख पर अत्यधिक जोर—आन्दोलन की धीमी गति का एक कारण यह भी है कि इसमें केवल कृषकों को ऋण देने की ओर ही ध्यान दिया गया है। किसान कभी कभी ऋण का दुरुपयोग भी करता है अर्थात् वह उसे कृषि कार्य में न लगा कर अपने निजी कार्य में व्यय कर देता है। सन् १९४६ में सहकारी नियोजन समिति ने इस कमी का अनुभव करते हुए भारत में बहु उद्देशीय समितियों की स्थापना का सुझाव दिया था।

(५) सदस्यों की अशिक्षा, अज्ञानता एवं रूढ़िवादिता—इस आन्दोलन का पाँचवाँ दोष यह है कि सहकारी समितियों के सदस्य अशिक्षित, अज्ञानी एवं रूढ़िवादी हैं, अतः प्रयत्न करने पर भी उन्हें सहकारिता के सिद्धान्त समझ में नहीं आते।

(६) सदस्यों में बचत की आदत का अभाव—बचत की आदत तथा सहकारिता एक दूसरे पर निर्भर करते हैं। भारतीय कृषक अधिकतर फिजूलखर्ची होते हैं और इसी कारण वे सहकारिता के अनेक लाभों से वंचित रह जाते हैं।

(७) हिसाब की उचित जाँच न होना—सहकारी समितियों के हिसाब की जाँच पड़ताल भली प्रकार नहीं होती, अतः प्रबन्धकों को हिसाब किताब में गोलमाल करने का मौका मिल जाता है तथा गबन आदि की घटनायें होती रहती हैं।

(८) अपर्याप्त साधन—इस आन्दोलन का एक अन्य दोष यह है कि समितियों के पास धन का अभाव है। अतएव वे ग्रामीण जनता की पर्याप्त रूप से सहायता करने में असमर्थ रहते हैं। विवश होकर कृषकों को ऋण लेने के लिये महाजन के चक्कर में फँसना पड़ता है।

(९) अपेक्षाकृत ऊँची ब्याज-दर—साधारणतः ब्याज की दर ९% से १२% तक रहती है। यद्यपि सरकार तथा रिजर्व बैंक द्वारा आन्दोलन को सहायता प्राप्त होती है, किन्तु अत्यधिक ब्याज की दर का कारण यह है कि सहकारी समितियों को मुख्यतः बाहरी साधनों पर निर्भर रहना पड़ता है। इनके निजी साधन अपर्याप्त हैं।

(१०) आर्थिक व्यय—इस आन्दोलन का एक दोष यह भी है कि समितियों

का आर्थिक व्यय बहुत होता है। अतः इन्हे बहुत कम लाभ बचता है। कम लाभ के कारण ही ग्रामीण जनता इनके प्रति उदासीन रहती है।

उपर्युक्त दुर्बलताओ के ही कारण सर एम० विश्वेश्वरैया ने व्यगपूर्वक कहा है–"सहकारी आन्दोलन की दिशा में अभी तक जो कुछ किया गया है, वह केवल सतह खरोचने के समान है।" भारतीय सहकारी आन्दोलन की दुर्बलताओ को दूर करने के लिये निम्न सुझाव दिये जा सकते हैं :—

दोषो को दूर करने के उपाय—

(१) प्रारम्भिक समितियो का पुनर्गठन—प्रारम्भिक सहकारी साख समितियो को यह प्रयत्न करना चाहिये कि कृषको की समस्त आवश्यकताओ को पूरा करें, अर्थात् प्रारम्भिक समितियो को इस उद्देश्य की पूर्ति के हेतु बहु उद्देशीय समितियो मे बदल देना चाहिये।

(२) सहकारी समितियो की कार्य-विधि मे सुधार—जिन पुराने ऋणो का भुगतान सदस्यो पर बाकी है उन्हे कम कर दिया जाय और भविष्य मे केवल उत्पादक कार्यों के लिये ही ऋण दिये जाये। सदस्यो मे बचत की भावना को बढाना चाहिये। समितियो के पास अधिक से अधिक धन सुरक्षित कोष में रहना चाहिये, जिससे कि आपत्ति काल मे वे अपनी रक्षा कर सकें।

(३) सरकारी हस्तक्षेप मे कमी—सरकारी कर्मचारियो द्वारा सहकारी समितियो के काम में अनावश्यक हस्तक्षेप नही होना चाहिये। सरकार को केवल आवश्यक देखभाल तथा परामर्श तक अपने को सीमित रखना चाहिये।

(४) सहकारिता की शिक्षा एवं प्रशिक्षण—ग्रामीण शिक्षा प्रणाली मे सहकारिता की शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जानी चाहिये तथा सहकारी कर्मचारियो के लिये विशेष प्रशिक्षण की भी व्यवस्था होनी चाहिए।

(५) सरकारी साझेदारी—जैसा कि अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति ने सुझाव दिया है, सभी स्तरो पर सरकार को सहकारी समितियो के साथ साझेदारी मे सम्मिलित होना चाहिये।

(६) केन्द्रीय एव राज्यीय सहकारी बैंको का पुनर्गठन—केन्द्रीय तथा राज्यकीय सहकारी बैंकों का कार्यक्षेत्र सीमित कर दिया जाये, जिससे वे अपनी सम्बन्धित समितियो का भली प्रकार निरीक्षण कर सकें। व्यापारिक बैंको से भी आर्थिक सहायतार्थ उनका घनिष्ट सम्बन्ध होना चाहिये।

(७) सहकारी विक्रय प्रथा का विकास—सहकारी आन्दोलन की उन्नति के लिए यह जरूरी है कि सहकारी विक्रय प्रथा का विकास किया जाय। इससे समिति के सदस्यों तथा उपभोक्ताओ दोनो को लाभ होगा।

(८) सहकारी अनुसन्धान—भारत एक अत्यन्त विशाल देश है, अतः यहाँ की आर्थिक, सामाजिक तथा नैतिक समस्याओं को सहकारिता के आधार पर सुलझाने के लिये यह आवश्यक है कि इस क्षेत्र में वैज्ञानिक ढंग के अनुसन्धान किये जायें।

अन्त में यह कहना अनावश्यक न होगा कि हमारे देश में सहकारिता का भविष्य अत्यन्त उज्जवल है। देश की प्रायः सभी समस्याओं को सहकारिता के आधार पर सुगमतापूर्वक हल किया जा सकता है। इसी कारण किसी ने कहा है कि "सहकारिता की असफलता सारे भारत की आशाओं की असफलता होगी।" अतः सहकारी समितियों की दशा को शीघ्र ही सुधार कर उनका पुनरुत्थान करना चाहिये।

सहकारी समितियों का ढाँचा

हमारे देश में तीन प्रकार की सहकारी समितियाँ पाई जाती हैं।

- सहकारी समितियाँ
  - प्रारम्भिक समितियाँ
    - सहकारी साख समितियाँ
      - कृषि साख समितियाँ
      - गैर कृषि साख समितियाँ
    - गैर साख सहकारी समितियां
      - गैर साख कृषि समितियाँ
      - गैर-कृषि गैर-साख समितियाँ
  - बहु उद्देशीय समितियाँ
  - केन्द्रीय समितियां
    - राज्य सहकारी बैंक
    - केन्द्रीय सहकारी बैंक
    - संघ (Union)
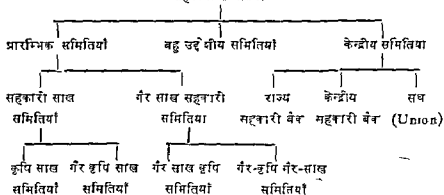
(१) प्रारम्भिक सहकारी समितियाँ

(Primary Co-operative Societies)

जैसा कि उपर्युक्त चार्ट से स्पष्ट है, प्रारम्भिक सहकारी समितियों के चार प्रमुख भेद हैं :—

(अ) प्रारम्भिक कृषि साख समितियाँ (Primary Agricultural Credit Societies)

(ब) प्रारम्भिक गैर कृषि साख समिति (Primary Non-Agricultural Societies)

(ग) प्रारम्भिक गैर-साख कृषि समितियाँ (Primary Non-credit Agricultural Societies)

(द) प्रारम्भिक-गैर-साख गैर-कृषि समितियाँ (Primary Non-credit Non Agricultural Societies)

(अ) प्रारम्भिक कृषि साख समितियाँ—

भारतीय सहकारी संगठन में कृषि साख समितियों की प्रधानता रही है। ये समितियाँ कृषि कार्यों के लिए साख की समुचित व्यवस्था करती हैं। सन् १९५६-५७ में इनकी संख्या १,६१,५१० थी जो कुल समितियों की प्रायः ७२% थी। उसी वर्ष इन समितियों के सदस्यों की संख्या ६१,१६,८४६ तथा जून १९५७ के अन्त में इनकी क्रियाशील पूँजी ६८·३ करोड़ रु० थी।

विशेषतायें—

प्रारम्भिक कृषि साख समितियों की प्रधान विशेषतायें निम्नलिखित हैं:—

(१) समिति के सदस्य—सहकारी साख समितियाँ जो भारत में पाई जाती हैं उनका स्वरूप जर्मनी के रेफेजन (Raiffeisen) समितियों के सिद्धान्तों पर स्थापित की गई है। समिति के निर्माण के लिए कम से कम १० व्यक्तियों की स्वेच्छात्मक स्वीकृति की आवश्यकता होती है और वे इस हेतु रजिस्ट्रार को प्रार्थना पत्र दे सकते हैं। साधारणतः, इस प्रकार की समितियाँ प्रत्येक गाँव में होती हैं, अतः इनके सदस्य वे ही हो सकते हैं, जो एक ही गाँव में रहते हों, जिससे वे एक दूसरे की आर्थिक स्थिति से पूर्णतया परिचित रहें। यद्यपि सदस्यों की उच्चतम संख्या पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है, परन्तु यह उचित है कि कार्य की सुचारुता के लिए सदस्यों की संख्या १०० से अधिक न होने पाए।

(२) दायित्व—समितियों के सदस्यों का दायित्व असीमित होता है। असीमित दायित्व बाह्य ऋणदाताओं में विश्वास पैदा करता है और सदस्यों में पारस्परिक नियन्त्रण व निरीक्षण को प्रोत्साहन देकर उन पर नैतिक एवं शिक्षणात्मक प्रभाव डालता है। किसी किसी समिति का दायित्व सीमित भी होता है, लेकिन इसके लिए सरकार की विशेष स्वीकृति लेनी पड़ती है।

(३) कार्य क्षेत्र—इन समितियों का कार्य क्षेत्र बहुत ही सीमित होता है और प्रायः एक गाँव ही एक समिति के लिए आदर्श क्षेत्र है, क्योंकि विस्तृत क्षेत्र में सदस्यों में पारस्परिक सम्बन्ध नहीं हो सकता और इसलिये सदस्यों में नैतिक दृष्टिकोण के विकास की पूर्ति नहीं हो सकती।

(४) प्रबन्ध—इन समितियों का प्रबन्ध एवं सचालन पूर्णरूपेण प्रजातन्त्रीय तथा अवैतनिक होता है। समिति के सदस्यों की एक साधारण सभा होती है जो

वार्षिक या जब आवश्यकता हो बैठकें (Meetings) करती है। साधारण सभा मे प्रबन्ध समिति के सदस्यो का चुनाव किया जाता है जिनकी सख्या ५ या ७ होती है। प्रबन्ध समिति सहकारी समिति का दैनिक कार्य करती है। इसके कुछ प्रधान कर्त्तव्य निम्न है:—ऋण के हेतु दिये गये प्रार्थना पत्रो पर विचार करके ऋण दिये जाने की स्वीकृति देना, ऋण की वसूली करना एव नये व्यक्तियो को समिति का सदस्य बनाना। इसके अतिरिक्त मन्त्री के हिसाब-किताब के जाँच एव नई पूँजी की व्यवस्था करना भी प्रबन्ध समिति के कर्त्तव्यो मे आता है। साधारण सभा में सदस्यो के व्यवहार, उधार की सीमा आदि के सम्बन्ध मे उपनियम निश्चित कर दिए जाते है एव प्रबन्ध समिति द्वारा प्रस्तुत वार्षिक हिसाब पर विचार भी साधारण सभा में होता है तथा लाभ, सुरक्षित कोष एव शिक्षा तथा सेवा पर होने वाले व्यय की राशि निश्चित की जाती है।

(५) पूँजी—समिति की पूँजी के प्रधान श्रोत निम्नलिखित है—(१) सदस्यो द्वारा जमा राशि, (२) सदस्यों के प्रवेश शुल्क, (३) रक्षित कोष की राशि, (४) केन्द्रीय बैंको द्वारा प्रदत्त ऋण इत्यादि। समिति की सबसे महत्वपूर्ण निधि सुरक्षित कोष है। जिस सहकारी समिति के पास सुरक्षित कोष अधिक होगा, उसकी साख उत्तम होगी और केन्द्रीय बैंको द्वारा ऋण सरलता से प्राप्त हो सकेगा।

(६) उद्देश्य एव कार्य—सहकारी साख समिति का प्रमुख उद्देश्य सदस्यो को सस्ती ऋण सुविधायें प्रदान करना है। प्राय सदस्यों को निम्न कार्यों के लिए ऋण दिए जाते है—(१) उत्पादक कार्यों के लिए, (२) पुराने ऋणो से मुक्त करने के लिए और (३) अनुत्पादक कार्यों के लिए। उत्तम बीज, खाद तथा मजदूरी आदि उत्पादक कार्यों पर व्यय करने के लिए अल्पकालीन ऋण और गाय बैल इत्यादि खरीदने व भूमि के विकास के लिए दीर्घकालीन ऋण दिया जाता है। कभी कभी पुराने सदस्यों को ऋण से मुक्त करने के लिए एव उन्हे महाजनो के चगुल मे बचाने के लिए अनुत्पादक कार्यों के लिए भी ऋण दिया जाता है।

(७) ऋण की वसूली—समितियाँ अपने सदस्यो को महाजनो के चगुल से बचाने के लिए ऋण प्रदान करती है। ऋण की वसूली किस्तो में होती है। साधारणत किस्त का समय फसल कटने के बाद का समय होता है, क्योकि फसल तैयार होने पर किसान स्वतन्त्रतापूर्वक अपने ऋण चुका सकते है। हाँ, फिर भी ऋण की वसूली में इन समितियों को काफी कठिनाई होती है। अधिकतर कृषक ऋण देने में तत्परता नही दिखलाते, अत. ऋण की वसूली के लिए सदस्यो पर दबाव डालना पडता है।

(८) ब्याज की दर—इन समितियो का मुख्य उद्देश्य कृषको को महाजनो के चगुल मे छुडाने के लिए कम से कम ब्याज की दर पर ऋण देना होता है। परन्तु

साथ ही इस बात का भी ध्यान रखा जाता है कि ब्याज की दर कम होने के कारण कृषक आवश्यकता से अधिक मात्रा में ऋण नहीं ले पाये।

(९) जमानत—समिति के सदस्यों का दायित्व असीमित होने के कारण इनकी व्यक्तिगत जमानत ही ऋण देने के लिए पर्याप्त मान ली जाती है। सदस्यों की ईमानदारी, मितव्ययिता तथा परिश्रम ही सर्वश्रेष्ठ जमानत है।

(१०) लाभ का वितरण—कृषि साख समितियों में प्रायः सारा लाभ सुरक्षित कोष में जमा कर दिया जाता है और लाभांश के रूप के सदस्यों को वितरित नहीं किया जा सकता। हां, सन् १९१२ के अधिनियम के अन्तर्गत सुरक्षित कोष में लाभ का एक निश्चित भाग जमा करने के बाद शेष राशि शिक्षा एवं दान के कार्यों के लिए दी जा सकती है और जिन समितियों में अंश पूँजी है, वहाँ कुछ सीमित लाभांश सदस्यों में वितरित किया जा सकता है।

(११) आय व्यय की जाँच—समितियों के आय व्यय की जाँच तथा देख भाल के लिए सरकार द्वारा अंकेक्षकों व निरीक्षकों की नियुक्ति की जाती है। देख-भाल के लिए सहकारी संघ भी होते हैं, जो इन समितियों को उचित रूप से हिसाब रखने, उनकी जाँच करने तथा रुपया वसूल करने में सहायता देते हैं।

(१२) झगड़ों का निपटारा एवं विघटन—सदस्यों के झगड़ों का निपटारा करने के लिए कहीं-कहीं पंचों की व्यवस्था है, जिससे कि व्यर्थ की मुकद्दमेबाजी में उनका पैसा बरबाद न हो। विघटन की आज्ञा देने का अधिकार केवल रजिस्ट्रार को है। समिति के कार्यों की जाँच के बाद यदि वह उचित समझे तो ऐसी आज्ञा दे सकता है। रजिस्ट्रार को इस अधिकार का प्रयोग केवल उसी दशा में करना चाहिये जबकि सदस्यों की बेईमानी के कारण समिति की आर्थिक दशा इतनी खराब हो जाय कि सुधार की कोई आशा ही न रहे।

कृषि साख समितियों की असफलता के कारण—

भारत में कृषि साख समितियों को विशेष सफलता नहीं मिल सकती है। इनकी असफलता के कुछ प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं :—

(१) ऋण की वसूली में कठिनाई—इन समितियों द्वारा प्रदान किए हुए अधिकांश ऋण वसूल न हो सके। रिजर्व बैंक द्वारा प्राप्त आँकड़ों के अनुसार सन् १९५७-५८ में इन समितियों की अदत्त ऋण (Loans outstanding) राशि १०७ करोड़ रु० और बकाया ऋण (Overdues) २३ करोड़ रु० के लगभग थे। कृषक ऋण का अधिकांश भाग अनुत्पादक कार्यों में लगा देते हैं, जिससे ऋण का चुकारा समय पर नहीं हो पाता।

(२) पूँजी की अपर्याप्तता—कृषकों की आवश्यकता को पूरा करने के लिए

इन समितियों के पास पूँजी की भी कमी है। औसत रूप से प्रत्येक समिति की कार्यशील पूँजी सन् १९५७-५८ में लगभग १३४ करोड़ रु० थी। उसी समय इनकी प्रत्येक सदस्य औसत पूँजी केवल २२ रु० और कार्यशील पूँजी १०२ रु० थी। पूँजी की न्यूनता के कारण कृषकों को विवश होकर महाजनों का सहारा लेना पड़ता है।

(३) **ब्याज की ऊँची दर**—इन समितियों द्वारा प्रदान किए गए ऋण पर ब्याज की दर भी अधिक होती है। उदाहरणार्थ, सन् १९५१-५२ में ब्याज की दर उत्तरप्रदेश में १२ से लेकर १५% तक, विन्ध्यप्रदेश में १२ से लेकर १६% तक और बंगाल में १२% तक थी। ये दरें निश्चय ही बहुत ऊँची हैं। इस ऊँची दर का प्रभाव समितियों की सफलता पर अच्छा नहीं पड़ता।

(४) **अन्य दोष**—इनके अतिरिक्त समितियों के संचालन, निरीक्षण तथा हिसाब आदि रखने में भी अनेक दोष पाए जाते हैं, जिनके कारण ये सफलतापूर्वक कार्य करने में असमर्थ सिद्ध होते हैं।

(ब) प्रारम्भिक गैर कृषि साख-समितियाँ—

गैर कृषि साख समितियों से तात्पर्य ऐसी समितियों से है जो कृषि के अतिरिक्त अन्य कार्यों में लगे हुए व्यक्तियों को साख प्रदान करके उनकी सहायता करती हैं। ये समितियाँ मुख्यतः नगरी क्षेत्र में स्थापित की जाती हैं, जहाँ अधिकतर श्रमजीवी तथा शिल्पकार रहते हैं। ये शुल्ज डेलिज (Schuzle Delitch) समितियों के आधार पर स्थापित की जाती हैं। इनका दायित्व भी सीमित होता है। इन समितियों का मुख्य उद्देश्य श्रमजीवियों तथा शिल्पकारों को सस्ती दर पर साख सुविधा प्रदान करके उन्हें महाजनों व साहूकारों के चंगुल से बचाना होता है। इन समितियों का विकास मद्रास व बम्बई राज्यों में बहुत अधिक हुआ है। इन्हें **नगर साख समितियाँ** (**Urban** Credit Societies) भी कहते हैं।

नगर साख समितियाँ दो वर्गों में विभाजित की जा सकती हैं—**(अ)** नगर बैंक और **(ब)** अन्य नगर साख समितियाँ। नगर बैंकों के कार्य साधारण बैंकों से मिलते जुलते हैं, किन्तु अन्य नगर साख समितियाँ केवल सदस्यों से जमा लेने तथा उन्हें साख प्रदान करने का कार्य करती हैं। नगर साख समितियाँ कारखानों में काम करने वाले श्रमिकों तथा अन्य कर्मचारियों द्वारा संगठित की जाती हैं। इनमें सहकारी संचय समितियाँ (Co-operative Thrift Societies) तथा सहकारी शिल्पी समितियाँ आदि का प्रमुख स्थान है। देश के औद्योगीकरण के विकास के साथ साथ नगर साख समितियों की संख्या अवश्य बढ़ेगी। अतएव उनका भविष्य सन्तोषजनक प्रतीत होता है।

(स) प्रारम्भिक कृषि गैर-साख समितियाँ—

किसानों को ऋण प्रदान करना कृषि सहकारिता का केवल एक पहलू है। ऋण के अतिरिक्त कृषकगण अन्य कार्यों में भी सहकारिता को अपना सकते हैं। कृषि

साख के अतिरिक्त ग्रामीण जीवन के शेष सभी पहलू गैर साख-सहकारिता (Non Credit Co operative) के अन्तर्गत आते है। सन् १९१२ के अधिनियम के पूर्व गैर साख समितियाँ स्थापित ही नहीं की जा सकती थी, क्योंकि उस समय योग्य एव शिक्षित कर्मचारियों का अभाव था। हमारे देश में इनका विकास मुख्यत. द्वितीय महायुद्ध के बाद हुआ। युद्ध के समय सरकार नियन्त्रित वस्तुओ के वितरण के हेतु सहकारी समितिया को प्रधानता देती थी, क्योंकि इनका उद्देश्य लाभ कमाना नहीं वरन् सेवा करना होता है। अत. उस समय इस प्रकार की अनेक समितियाँ कपडा, चीनी, अनाज तथा तेल आदि वस्तुओ के वितरण के लिये स्थापित की गईं। 'अधिक अन्न उपजाओ' आन्दोलन ने भी इन समितियो को स्थापना को प्रेरित किया। भिन्न भिन्न राज्यो में सहकारी कृषि तथा बजर भूमि को कृषि योग्य बनाने की व्यवस्था करने के लिये एव उन्नत बीज, खाद व कृषि यन्त्रो के वितरण के लिये भी अनेक समितियो का निर्माण किया गया।

गैर साख-कृषि समितिया के अन्तगत प्राय निम्न का समावेश किया जाता है—

(१) सहकारी जीवन सुधार समितियाँ (Better Living Societies)
(२) सहकारी कृषि (Co operative Farming)
(३) सहकारी विपणन (Co operative Marketing)
(४) सहकारी उपभोग समितिया (Co operative Consumer's Societies)
(५) सहकारी चकबन्दी समितिया (Co operative Consolidation of Holdings Societies)
(६) सहकारी उपज सुरक्षा समितिया (Co operative Crop Protection Societies)
(७) सहकारी सिचाई समिति (Co operative Irrigation Societies)
(८) सहकारी शिक्षा समितियाँ (Co operative Educational Societies)

गैर-साख-साख कृषि समितियो का सक्षिप्त परिचय—

(१) सहकारी जीवन सुधार समितियाँ—ग्रामीण समाज की अज्ञानता, भाग्य वादिता तथा अन्य कुरीतियो का उन्मूलन करने के लिये सहकारी जीवन सुधार समितियाँ स्थापित की जाती है। इनका व्यापक उद्देश्य उन्नत एव उचित जीवन के प्रति कृषकों की अभिरुचि उत्पन्न करना है। ये समितिया सामाजिक कुप्रथाओ, सामाजिक एव व्यक्तिगत अपव्यय, अन्ध विश्वास आदि को दूर करके आत्म विश्वास एव आत्म निर्भरता की भावना को उत्पन्न करती है, जिससे कि कृषकगण स्वास्थ्य, रक्षा, सफाई, शिक्षा, सामाजिक सुरक्षा आदि के द्वारा अपने व्यक्तिगत एव सामाजिक जीवन को उन्नत बना सकें।

(२) **सहकारी कृषि**—ऐसे कृषक, जिनकी भूमि का आकार उप विभाजन एव अप-खडन के कारण अनार्थिक हो गया है, सहकारी कृषि के द्वारा भूमि के आर्थिक आकार की प्राप्ति कर सकते है। छोटे छोटे खेतो पर कृषि के आधुनिक साधन एव मशीनो आदि का प्रयोग सुविधा से नही किया जा सकता और यदि किया भी जाता है, तो साधनो का अपव्यय अधिक होता है और उत्पादन कम। अत. एक गाव के अनेक कृषक मिलकर अपनी भूमि की सीमायें तोडकर एक कर लेते है, और इस प्रकार कृषि के हेतु उन्हे बडे आकार की भूमि मिल जाती है, जिस पर कृषि के आधुनिक साधनो का प्रयोग करके उत्पादन बढाया जा सकता है। सहकारी कृषि के अन्तर्गत कृपको का उनकी भूमि में व्यक्तिगत स्वामित्व रहता है तथा अपनी भूमि के अनुपात में ही उन्हे लाभांश प्राप्त होता है। जो कृषक खेतो पर काम करते है, उन्हे वेतन दिया जाता है। वर्ष के अन्त में जो लाभ बचता है, उसमे से व्यय, सुरक्षा कोप आदि की राशि निकाल कर सदस्यो में भूमि के आकार के अनुपात में बाँट दिया जाता है। जिस प्रकार से व्यापार या व्यवसाय में साझेदारी होती है, उसी प्रकार कृषि में यह साझेदारी के ही समान है, जिसमे कृषको के व्यक्तिगत अधिकार सुरक्षित रहते है और वे केवल सुविधाओ के लिये ही आपस मे मिलकर खेती करते है।

(३) **सहकारी विपणन समितियाँ**—कृषि उत्पादन के विपणन व्ययो को न्यून-तम करने एव अनावश्यक मध्यस्थो की संख्या को कम करने के लिये सहकारी विपणन अत्यन्त आवश्यक है, जिसके द्वारा हम कृषक को उसके उत्पादन का उचित मूल्य प्रदान कर सकते है।

(४) **सहकारी उपभोक्ता समितियाँ**—सहकारी उपभोक्ता स्टोर वे समितियाँ है, जिन्हे उपभोक्ता उचित मूल्य पर आवश्यक वस्तुयें प्राप्त करने तथा मध्यस्थो के शोषण से बचने के लिये बनाते है। स्टोर सब सदस्यो का सामान एक साथ खरीदते है, जिसमे उसको थोक दामो पर सामान मिल जाता है। वस्तुओ की कीमत कम होने के साथ उनकी किस्म भी अच्छी होती है, फलतः सदस्यो को स्टोर से माल खरीदने में अधिक लाभ होता है। इन स्टोरो का जन्म सर्व प्रथम इगलैण्ड में हुआ। रॉकडेल के २८ जुलाहा ने एक ऐसे स्टोर का सगठन किया, जिसकी आश्चर्यजनक सफलता से प्रेरित होकर धीरे धीरे बहुत से स्टोर इगलैण्ड में खुल गये और अन्य देशो में भी यह आन्दोलन फैलने लगा। इन स्टोरो के कुछ सिद्धान्त होते है, जिन्हे पालन करना प्रत्येक स्टोर के लिये आवश्यक होता है। प्रथम, वस्तुयें थोक दामो पर खरीद कर बाजार भावो पर बेची जाती है, दूसरे, वस्तुयें नगद बेची जाती है, उधार नही, एव तीसरे, स्टोर का वार्षिक लाभ सब सदस्यो में उनकी खरीदारी के अनुपात मे बाँट दिया जाता है।

भारत मे स्टोर आन्दोलन की प्रगति—

भारत में स्टोर आन्दोलन का श्रीगणेश मद्रास में हुआ। यह राज्य आज भी

(३) खरीदारी करने मे दूरदर्शिता का अभाव,
(४) सदस्यो का स्टोर के साथ वफादार न होना,
(५) उधार व्यापार करना,
(६) थोक और बिक्री मूल्यो में कम अन्तर होना;
(७) हिसाब ठीक तरह म न रखना,
(८) स्टोर के सचालन व्ययो की अधिकता,
(९) निशुल्क सेवा पर अत्यधिक निभरता, एव
(१०) खुले बाजार म वस्तुयें सरलता स मिलने लगना,

स्टोर आन्दोलन की प्रगति के लिए यह आवश्यक है कि इन कारणो को यथासम्भव दूर करके उसे अधिक लोकप्रिय बनाने के उपाय किये जायें। इस सम्बन्ध म हमारे निम्न सुझाव हैः—

(१) स्टोर में कम स कम ५,००० सदस्य बनाय जाय।
(२) व्यापार के लिए आवश्यक पूँजी हिस्से बेच कर एव केन्द्रीय बंक से ऋण लेकर इकट्ठी की जाय।
(३) स्टोरो की थोक समितियो का सगठन किया जाय। लगभग ५० शहरी और ग्रामीण स्टोरो को एक केन्द्रीय उपभोक्ता भण्डार के आधीन रखा जाय।
(४) प्रत्येक राज्य म एक राज्यीय उपभोक्ता समिति सगठित की जाय, जिसका ५०% व्यय ५ वर्षों तक सरकार भेले। यह समिति समन्वय का काय करेगी।
(५) सहकारी विभाग उपभोक्ता सहकारी स्टोरो के सगटन म अधिक रुचि ल।
(६) औद्योगिक केन्द्रो म मजदूरो क लिए चन्द की दरें कम रखी जाएँ, जिससे वे इनका लाभ उठा सक।
(७) मजदूरो का माल उधार बेचा जाय, किन्तु अगल वेतन दिवस पर ही वसूल कर लिया जाय।
(८) सदस्यो को उपयोगिता समझाने के लिए लिखित साहित्य वितरित किया जाय।
(९) योग्य व्यक्ति नौकर रखे जायें। इसमें पक्षपात नही होना चाहिए।
(१०) स्टोर गैर सदस्यो को भी माल बेचे, जिसस व इसकी उपयोगिता से परिचित होकर सदस्य बन जायें।

प्रथम योजना म इन भण्डारा की प्रगति को विशेष स्थान दिया गया था। द्वितीय एव तृतीय योजना म भी इनके लिए समस्याओं का विशेष अध्ययन करके विकास कायक्रम बनाने पर जोर दिया गया है। गांवा म इनके विकास पर बल दिया गया है।

(५) **सहकारी चकबदी समिति**—उप विभाजन एव अपखडन क दोष का निवारण करन के लिए सहकारी चकबदी समितियो की स्थापना की जाती है। इनका विस्तृत चर्चा हम एक गत अध्याय म कर चुके हैं।

(६) **सहकारी उपज सुरक्षा समितिया**—इन समितिया का प्रधान उद्देश्य सहकारी ढग पर सदस्या का उपज का जगली वस्तुओ और अनाधिकृत व्यक्तियो से सुरक्षा करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति का दार तार का बाढ लगाकर या चौकीदार का प्रबध करके का जाती है।

(७) **सहकारी सिचाई समितिया**—इन समितियो का मुख्य उद्देश्य सहकारी ढग पर सिंचाई की छोटी-छोटी योजनाओ का सम्पन्न करना है।

(८) **सहकारी शिक्षा समितिया**—इनका मुख्य उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों म शिक्षा सस्थाओ की व्यवस्था करना होता है और इस हेतु ये गावो म स्कूल वाचनालय, प्रौढ शिक्षालय रात्रि पाठशालाय पुस्तकालय आदि का स्थापना करता है।

(द) **प्रारम्भिक गैर-कृषि गैर-साख समितिया**—

जसा कि इनके नाम मे स्पष्ट है य समितिया शिल्पियो तथा श्रमिको का साख के अतिरिक्त अन्य आर्थिक कार्यों म सहायता प्रदान करता है। इनके अन्तगत औद्योगिक समितिया (Industr al Co operatives) गृह निर्माण समितिया (Co oprat ve HOus ng Soc eties) उपभोक्ता समितिया (Consumers Co opera t ves) आदि का समावेश किया जाता है। हमारे देश म औद्योगिक सहकारी समितियो का अभी पर्याप्त मात्रा म विकास नहीं हो सका है। कुटीर एव लघु उद्योगो के विकास के हेतु इन समितियो की स्थापना करना नितान्त आवश्यक है। इसी प्रकार मध्यम वर्ग के लोगो का गृह निर्माण म सहायता प्रदान करने के लिए सहकारी गृह निर्माण समितियाँ स्थापित की जाती ह। गृह निमाण समितिया दो प्रकार की होती है—(अ) एक वह जो सदस्यो को मकान बनाने के लिए आर्थिक राशि तथा सामान आदि की खरीदने म सहायता देती है और (ब) दूसरी वह जो मकान बनाती है और दाय समय म अपनी लागत का पूरा करने के लिए अपने सदस्यो से किराया वसूल करती है। इनके अतिरिक्त आजकल अन्य प्रकार की सहकारी समितियो का भी निमाण होता है। इनम श्रमिको स्त्रियो शिक्षको विद्यार्थियो चालको आदि की सहकारी समितियो के नाम उल्लेखनीय है। बीमा के काय के लिए भी सहकारी समितियो का निर्माण हुआ है।

(२) बहुउद्देशीय सहकारी समितियाँ

(Multipurpose Co operative Societies)

गत कुछ वर्षों से यह विवाद का प्रश्न है कि सहकारी समितियों का स्वरूप एक उद्देशीय हो या बहुउद्देशीय। अभी तक जितनी भी सहकारी समितियाँ प्रारम्भ की गई है, वे प्रायः एक विशिष्ट उद्देश्य को दृष्टि में रखकर शुरू की गई है तथा उनसे कृषक की आर्थिक स्थिति में कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं हुआ है। इसी कारण अधिकांश लोगों की यह धारणा है कि सम्भवतः बहु उद्देशीय समितियों द्वारा कृषकों की समस्त समस्याओं का हल हो सके। एक उद्देशीय समिति की दशा में बेचारे कृषकों को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के हेतु एक समिति से दूसरी समिति के द्वार खटखटाने पड़ते है। इसके अतिरिक्त कभी कभी यह भी होता है कि उन्होंने सहकारी साख समिति के पैसे से जो कृषि उत्पादन किया है, उसके बेचने के लिये, उनके सन्मुख समस्या हो, अथवा उसके पास पैसा तो हो किन्तु समस्या यह हो कि उत्तम बीज अथवा उत्तम खाद कहाँ से प्राप्त की जाय। यही कारण है कि आजकल देश में यह विचारधारा बड़े वेग से प्रचलित है कि सहकारी समितियाँ एक-उद्देशीय न होकर बहु उद्देशीय हो। सन् १९३९ की एक सभा में सहकारी समितियों के रजिस्ट्रारो ने यह प्रस्ताव पास किया था कि देश में बहु उद्देशीय सहकारी समितियाँ खोली जानी चाहिये। विश्व के कुछ अन्य देश भी, जैसे—डेन्माक, जर्मनी, फिनलैण्ड, न्यूजीलैण्ड, स्वीडन आदि भी बहु-उद्देशीय समितियों के पक्ष में है।

बहु उद्देशीय समितियाँ वे है, जो केवल किसी एक कार्य को न करके अनेक कार्यों को करती है। इनका उद्देश्य अपने सदस्यों को केवल साख प्रदान करना ही नहीं, वरन् अनेक प्रकार से उनकी सहायता करना भी होता है। इनका उद्देश्य कृषकों के आर्थिक जीवन का सर्वाङ्गीण विकास करना होता है। रिजर्व बैंक के अनुसार सहकारिता कृषकों के लिए केवल उसी दशा में लाभदायक हो सकती है जब वह उनके जीवन के प्रत्येक पहलू में सहायक हो। इसी आधार पर रिजर्व बैंक ने बहु उद्देशीय सहकारी समितियों का जोरदार समर्थन किया है। योजना आयोग का भी यह मत है कि भारत के आर्थिक कलेवर में बहु उद्देशीय सहकारी समितियों को विशेष स्थान मिलना चाहिये।

बहु-उद्देशीय समितियों के लाभ—

इन समितियों से कृषकों को निम्न लाभ प्राप्त होने की आशा है—

(१) ये समितियाँ कल्प वृक्ष की भाँति कृषकों की समस्त समस्याओं को हल कर देती है एवं उनके जीवन को पुनर्गठित करके सुखमय बना देती है।

(२) इनकी सहायता से ग्रामीण साहूकारी पद्धति का विनाश होता जा रहा है।

(३) इन समितियों में सीमित दायित्व होने से सभी स्थिति के व्यक्ति—गरीब, अमीर व मध्यम वर्गीय - इनके सदस्य बन सकते हैं। परिणामतः समिति की पूँजी बढ़ जाती है और उद्देश्यों की पूर्ति सुगम हो जाती है।

(४) बिना पढ़े-लिखे कृषक के आर्थिक हितों की सुरक्षा के लिये इन समितियों द्वारा साख व विपणन में सीधा सम्बन्ध स्थापित हो जाता है।

(५) विस्तृत कार्यक्रम होने के कारण इन समितियों को हानि की आशंका कम एवं लाभ की आशा अधिक होती है।

(६) सामाजिक बुराइयों को दूर करके एवं ग्रामीण जनता का नैतिक पुनरुत्थान करके गाँव का पुनर्निर्माण करने में भी इन समितियों ने सक्रिय सहयोग प्रदान किया है।

बहु-उद्देशीय समितियों के दोष—

(१) विभिन्न कामों का बोझा अपने ऊपर लेने के कारण बहु उद्देशीय समितियों का कार्य बहुत जटिल हो जाता है। सम्पूर्ण कार्य थोड़े से प्रभावशाली व्यक्तियों के हाथों में केन्द्रित हो जाता है और सहकारिता की सच्ची भावना नष्ट हो जाती है।

(२) समिति के समस्त कार्यों का ब्यौरा एक ही जगह अंकित किया जाता है, जिससे किसी कार्य विशेष से होने वाली क्षति का सच्चा ज्ञान नहीं हो पाता।

(३) इनका कार्य-क्षेत्र भी बहुत अधिक व्यापक होता है, अतएव योग्य सचालकों के अभाव में कभी-कभी समितियाँ असफल हो जाती हैं।

उपर्युक्त लाभों के ही कारण हमारे देश में बम्बई, मद्रास, उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश के राज्यों में बहु उद्देशीय समितियों का बहुत प्रोत्साहन दिया जा रहा है। गत दस वर्षों में बहु-उद्देशीय समितियों ने प्रशंसनीय प्रगति की है, विशेषकर उत्तर प्रदेश, बम्बई, बंगाल और मध्य प्रदेश में। उत्तर प्रदेश में उनकी संख्या सन् १९४५ ४६ की ६६६२ से बढ़कर १९५५ ५६ में ४१,६६० हो गई। बम्बई में सन् १९४५ ४६ की २६४ संख्या सन् १९५३ में बढ़कर ३६६५ हो गई। सन् १९५० तक मद्रास सरकार ने ८८०२ समितियों को बहु उद्देशीय सहकारी समितियों में परिवर्तित कर दिया। सन् १९५१-५२ में उसने ऐसी ही और भी ३,००० समितियों का रूप बदला। बिहार में १९५५-५६ में इनकी संख्या १०,४८३, उड़ीसा में १७६, पश्चिमी बंगाल में १३९६ और मध्य प्रदेश में ५,००,००० थी। उनकी संख्या सदस्य संख्या, ऋण कार्यों लाभ आदि में सर्वाङ्गीण उन्नति हुई है।

(३) केन्द्रीय सहकारी समितियाँ

केन्द्रीय सहकारी समितियों का प्रमुख काय प्रारम्भिक समितियों का सगठन, निरीक्षण तथा उन्हे आर्थिक सहायता प्रदान करना है। आजकल इनके तीन प्रधान रूप है—

(१) सघ (Union)
(२) केन्द्रीय सहकारी बक (Central Co operative Bank) तथा
(३) राज्य सहकारी बैंक (State Co operative Bank)

(१) सघ—सघ तीन प्रकार के होते है—(अ) सरक्षित सघ, (ब) निरीक्षक सघ और (स) साहूकारा सघ। सरक्षित सघ (Guaranteering Union) बम्बई में है। ये सघ सदस्य समितियो को केन्द्रीय बैंको द्वारा दिए जाने वाले ऋण का सरक्षण प्रदान करते है। निरीक्षक सघ, जिनका काम निरीक्षण करना होता है, मुख्यत बम्बई व मद्रास मे ह। साहूकारा सघ (Banking Union) का निर्माण किसी निश्चित क्षेत्र में विभिन्न समितियो के सम्मिलन से होता है। ऐसे सघ पजाब में हैं। ये कभी कभी प्रारम्भिक समितियो एव केन्द्रीय सहकारी बैंको के बीच सहयोग का कार्य भी करते ह।

(२) केन्द्रीय सहकारी बैंक—सर्व प्रथम सन् १९१२ के सहकारी अधिनियम के अतर्गत प्राथमिक समितियो के अतिरिक्त उनके सघो एव केन्द्रीय बैंको की स्थापना को वैधानिक मान्यता प्रदान की गई। इनका मुख्य कार्य प्रारम्भिक समितियो का सगठन करना तथा उन्ह आर्थिक सहायता प्रदान करना है। प्राथमिक समितियो की आर्थिक सहायता के अतिरिक्त, ये समितियाँ साधारण बैंक सम्बन्धी काय भी करती है जैसे जनता की बचत जमा के रूप में स्वीकार करना, वित्त चैक, हुन्डी आदि का भुनाना, प्रतिभूतियो का क्रय विक्रय तथा कभी कभी व्यक्तियो को अचल सम्पत्ति पर ऋण देना इत्यादि। द्वितीय महायुद्ध के कारण केन्द्रीय बैंको की आर्थिक स्थिति म काफी सुधार हुआ है। मूल्यो म वृद्धि के कारण, युद्ध युग म, इनकी कायशील पूंजी, जमा की राशि तथा ऋणो की वसूली म सन्तोषजनक वृद्धि हुई है। सन् १९५७ ५८ म हमारे देश में ४१८ केन्द्रीय बक थे जिनके सदस्यो की सख्या ३ २२,८१६ थी। इनकी कार्यशील पूंजी १४७ करोड रु० थी तथा इन्होने १५६ ८७ करोड रुपय अग्रिम तथा ऋण के रूप म दिया था।

(३) राज्य सहकारी बैंक—प्रत्येक राज्य में राज्य सहकारी बैंक (State Co operative Bank) उच्चतम बैंक (Apex Bank) होता है। ये केन्द्रीय सहकारी बैंको के समाशोधन गृह (Clearing house) के रूप में काय करते है। इस प्रकार राज्य

सहकारी बैंक केन्द्रीय बैंको के द्वारा प्रारम्भिक समितियो के कार्यों की प्रगति को भी प्रभावित करते है। देश का सहकारी आन्दोलन बहुत कुछ इन बैंको पर निर्भर करता है। यही कारण है कि सन् १९१५ में मैकलगन समिति ने ऐसी उच्चतम बैंको की स्थापना पर जोर दिया था। सन् १९५७-५८ म इस प्रकार के बैंकों की सख्या २१ थी, जिनके सदस्यो की सख्या ३२,१८१ थी। इनकी कार्यशील पूँजी १०९'०७ करोड रु० तथा सचित कोप ८'४७ कराड रु० थी।

(४) भूमि-बन्धक बैंक—भूमि-बन्धक बैंक कृपको की भूमि को बन्धक रखकर उन्हें दीर्घकालीन ऋण प्रदान करते है। ये भी दो प्रकार के होते हैं—(अ) प्राथमिक भूमि बन्धक बैंक और (ब) केन्द्रीय भूमि बन्धक बैंक। सन् १९५१–५२ में भारत में ६ केन्द्रीय तथा २८९ प्रायमिक भूमि बन्धक बैंकें थी। सन् १९५७–५८ में केन्द्रीय भूमि-बन्धक बैंको की सख्या बढकर १५ हो गई। इनकी सदस्य सख्या १,५१,४८३, कार्यशील पूँजी २५'८८ करोड रु० थी और इन्होंने ४'६२ करोड रुपये ऋण के रूप मे दिये थे। सन् १९५७–५८ में कुल मिलाकर ३४७ प्रायमिक भूमि-बन्धक बैंक थे, जिनके सदस्यों की सख्या ३,७५,९८० थी तथा जिन्होंने २'५२ करोड रुपये का ऋण प्रदान किया था। इनकी कार्यशील पूंजी १४ ०६ करोड रुपया थी। अभी तक इन बैंको का प्रमुख कार्य पुराने ऋणो के भुगतान के लिए ही ऋण देना रहा है। हाँ, गत कुछ समय से इन्होंने भूमि सुधार कार्यों के लिए भी ऋण दिए ह। अन्य राज्यों की अपेक्षा मैसूर मद्रास तथा आन्ध्रप्रदेश में भूमि बन्धक बैंको की सख्या अधिक है।

STANDARD QUESTIONS

(1) Define Cooperation and point out its essentials.

(2) Discuss the importance of Co operation in India.

(3) Trace a brief history of the Co operative Movement in India from 1904 upto date.

(4) Account for the slow growth of Co-operative movement in India. What methods would you suggest to remove its defects ?

(5) Discuss the organisation and functions of a primary agricultural co-operative society.

(6) Describe the functions of a multipurpose co-operative society. How far such societies can improve the economic life of village ?

(7) What is a central co-operative bank ? How does it help primary credit co-operative societies ?

(8) What is meant by a multi purpose co-operative society ? Would you prefer this type of society to a Single-purpose society ?

अध्याय ७

सहकारी-कृषि

(Co-operative-Farming)

प्रारम्भिक—

अभी हाल में प्रकाशित भारत की तृतीय पंच वर्षीय योजना मे योजना आयोग ने जो लक्ष्य निर्धारित किए हैं, उनके अनुसार सन् १९६६ तक भारत अनाज में आत्मनिर्भर हो जायगा। कृषि उत्पादन मे आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के उद्देश्य से योजना में कृषि के विकास पर पर्याप्त बल दिया गया है। वर्त्तमान भारतीय कृषि की मौलिक एव सबसे महत्वपूर्ण समस्या यह है कि किन-किन उपायों से भूमि की उपज की मात्रा एव प्रकार में वृद्धि की जाय। इस समस्या के अनेक आर्थिक व सामाजिक कारण हैं। आर्थिक कारणों में भूमि का उपविभाजन व अपखण्डन, उत्तम बीज व खाद का अभाव, सिंचाई की समुचित सुविधाओं का अभाव, कृषि के पुराने उपकरण आदि मुख्य हैं। कृषि के उत्पादन को बढ़ाने के लिए इन समस्याओं को सुलझाना अत्यन्त आवश्यक है तभी न्यूनतम व्यय पर अधिकतम उपज हो सकती है एव देश के औद्योगीकरण के लिए पर्याप्त मात्रा में आवश्यक कच्चा माल प्राप्त हो सकता है। किन्तु अच्छी कृषि के कोई भी उपाय तब तक फलदायक नहीं हो सकते जब तक कृषि के लिए भूमि के यत्र तत्र बिखरे हुए खण्डों को आर्थिक भू खण्डों में न बदल दिया जाय।

बड़े पैमाने पर खेती की आवश्यकता—

कृषि के उत्पादन में वृद्धि करने के मार्ग में एक सबसे बड़ी बाधा अनार्थिक जोतों की विद्यमानता है। खेत का आकार कृषि की लाभदायकता पर एक निर्णयात्मक प्रभाव रखता है। सच तो यह है कि ग्रामीण ऋण ग्रस्तता और दोषपूर्ण विपणन की समस्याओं का मूल कारण जोतों का अनार्थिक होना है। जब जोतें बहुत छोटी होती हैं, तो वे पर्याप्त आय नहीं दे पाती। फल यह होता है कि किसान को ऊँची दर से ब्याज देकर ऋण प्राप्त करने के लिये विवश होना पड़ता है और आय की अपर्याप्तता के ही कारण इसके चुकने का अवसर नहीं आता। जोतें वर्तमान में ही अनार्थिक हो, ऐसी बात नहीं है, वरन् पीढ़ी दर पीढ़ी व्यतीत होने के साथ-साथ उनके बँटने और

बिखरने से जोतें अधिकाधिक अनार्थिक होती जा रही है। कृषि उत्पादन की समस्या के स्थायी हल के लिये किसी न किसी रूप में बड़े पैमाने की खेती आवश्यक हो जाती है। संसार के विभिन्न देशों में बड़े पैमाने की खेती विभिन्न ढङ्गों से की जाती है, जो निम्नलिखित हैं—

(१) **व्यक्तिगत कृषि**—भारत मे व्यक्तिगत कृषि (Individual Farming) सबसे अधिक लोकप्रिय है। इसके अन्तर्गत कृषक अपने व्यक्तिगत सीमित साधनों के द्वारा कृषि का कार्य करता है। अत. कृषि की इस प्रणाली में बड़े पैमाने पर कृषि के लाभ प्राप्त करना असम्भव है एव अनेक अनावश्यक आर्थिक हानियाँ होती है। इस दोष के निवारणार्थ यदि अधिनियम के बल पर भू खण्डों का एकत्रीकरण करके कृषि की आर्थिक इकाई निर्माण करने की चेष्टा की जाय, तो इसका सबसे बड़ा दुष्परिणाम यह होगा कि छोटे छोटे किसानों की स्वतन्त्रता समाप्त हो जायगी। वे विशाल कृषि क्षेत्रों के वेतन भोगी श्रमिक मात्र रह जावेंगे। अतः व्यक्तिगत कृषि हमारी समस्या का समुचित समाधान करने में असमर्थ है। यदि भारतीय उत्तराधिकार कानून के अन्तर्गत होने वाले भूमि के उत्तरोत्तर उपविभाजन को रोकना है, तो हमें कृषकों के किसी न किसी प्रकार के सहयोग के आधार पर कृषि की व्यवस्था करनी ही पड़ेगी।

(२) **पूंजीवादी अथवा कम्पनी के आधार पर कृषि**—कम्पनी के आधार पर कृषि (Corporate Farming) पूंजीवादी तरीकों पर निर्भर करती है। इस पद्धति मे एक सचालक समिति के प्रबन्ध मे कृषि कार्य के लिए एक सम्मिलित सगठन का निर्माण किया जाता है, जिसके सदस्यों का दायित्व सीमित होता है एव प्रत्येक सदस्य को उस पूँजी के अनुपात में लाभ का अंश मिलता है। इस प्रकार की कृषि से वृहत्त कृषि के आर्थिक लाभ प्राप्त होते है। इस प्रकार की कृषि का उद्देश्य मुख्यतः यह होता है कि अधिक से अधिक लाभ प्राप्त किया जाय न कि किसानों के हित की रक्षा की जाय। इस प्रकार की खेती में वे सब गुण दोष विद्यमान है जोकि एक पूंजीवादी सगठन मे हो सकते है। भारत मे आजकल खाद्य समस्या बड़ी जटिल हो गई है। इस प्रकार की खेती के द्वारा फसलों की मात्रा में काफी वृद्धि हो सकती है। परन्तु देश की और किसानों की सब बातों को ध्यान मे रखते हुए यह न तो किसानों का ही भला कर सकती है और न देश का ही उपकार हो सकता है।

(३) **सरकारी कृषि**—सरकारी कृषि (State Farming) के अन्तर्गत कृषक फार्म पर मजदूरी पर कार्य करते है और फार्म पर स्वामित्व पूर्णतः सरकार का होता है और प्रबन्ध भी सरकार ही करती है। रूस में सरकारी खेती के प्रयोग किये गये है। भारत मे भी सरकारी खेती को कुछ सीमा तक स्वीकार किया जा सकता है। देश मे बहुत बड़ी मात्रा में ऐसी भूमि पड़ी है, जिस पर खेती नहीं की जा रही है, क्योंकि भूमि में कुछ ऐसे दोष है जिनको बहुत बड़ी मात्रा मे रुपया खर्च करके हटाया जा सकता

है। इतना रुपया एक साधारण व्यक्ति या कम्पनी नहीं जुटा सकती, केवल सरकार ही इस कार्य को कर सकती है। यहाँ प्रश्न उठता है कि सरकार स्वयं अपनी ओर से खेती कराये या किसी एजेन्ट के द्वारा। इसका कोई अन्तिम उत्तर नहीं दिया जा सकता। हमारी सम्मति में तो सरकार को चाहिये कि वह पहले अपने ही प्रबन्ध में देश के कुछ भागों की भूमि के बड़े-बड़े खेतों में कार्य आरम्भ करे और फिर यह देखे कि ऐसा करने से कुछ लाभ हो सकता है या नहीं। सच तो यह है कि जब सरकार रेलों जैसी विशाल सम्पत्ति का अपनी ओर से, बिना किसी एजन्ट के, सफल प्रबन्ध करती है, तो यह आशा करना अनुचित नहीं होगा कि वह इस नये क्षेत्र में भी अवश्य सफल होगी। चूँकि भूमि और कृषि व्यवसाय राज्यों के शासन-क्षेत्र में है, इसलिये सरकारी ढंग की खेती पर निरीक्षण उसमें अधिक हो सकता है।

(४) **सामूहिक खेती**—इस प्रकार की खेती (Collective farming) फिलिस्तीन और रूस में आश्चर्यजनक रीति से सफल हुई है। सामूहिक खेती वह खेती है जिसमें व्यक्ति अपने साधनों को एकत्र कर एक प्रबन्ध समिति के आधीन, जिसे वे स्वयं चुनते हैं, मिल जुल कर काम करने का दायित्व ग्रहण करते हैं। यह प्रबन्ध समिति फार्म के प्रबन्ध के लिये, व्यय व आमदनी के वितरण तथा आधिक्य के निपटारे के लिये दोषी होती है। सभी कार्यकर्ता सदस्यों को श्रम समूहों में बाँट दिया जाता है और कार्य का बँटवारा इन समूहों के आधार पर होता है। समूह का नेता अपने सदस्यों के कार्य की मात्रा व किस्म के लिये जिम्मेदार होता है। कार्य दिवस की इकाइयों (Work day units) के आधार पर पारिश्रमिक की गणना की जाती है अर्थात् पारिश्रमिक उस कार्य के मूल्य के अनुसार होता है जोकि एक औसत सामूहिक कृषक एक दिन में करता है। योग्यता में अन्तर या विशेष निपुणता के लिये कुछ कार्यों को अन्य कार्यों की अपेक्षा ऊँची श्रेणी की इकाइयाँ प्रदान की जाती हैं। उत्पादन की योजना सरकार बनाती है। प्रत्येक सामूहिक फार्म को अपनी फसल का एक निश्चित आनुपातिक भाग सरकार को नियत दर से बेचना पड़ता है। सामूहिक खेती के अन्तर्गत बड़े पैमाने पर यन्त्रीकरण सम्भव हो जाता है, जिससे कृषि उत्पादन में बड़ी वृद्धि की जा सकती है।

सरकारी खेती और सामूहिक खेती में एक अन्तर है। एक सरकारी फार्म पर काम करने वाले किसान केवल मजदूरी कमाते हैं जबकि एक सामूहिक फार्म पर काम करने वाले किसानों को दैनिक कार्य के लिये मजदूरी मिलती है और फार्म के शुद्ध लाभ में भी भाग मिलता है। इस प्रकार सामूहिक खेती में फार्म का सुधार करने के लिये बड़ा प्रोत्साहन रहता है। यही नहीं, उत्पादन के साधनों पर

सामूहिक स्वामि व क कारण सदस्या को काम क प्रब ध म भी अधिक स्वतन्त्रता हाती है ।

यह कहा गया है कि सामूहिक खता का भारत म गलत समझा जा सकता है और सामाजिक आर्थिक समस्याय उत्पन्न हो सकती है । भारतीय कृषक इस प्रणाली म अपरिचित है । इस स्वाकार करना या न करना उस रीति पर एव उस एजन्सी पर निभर है जिसके द्वारा इस प्रचलित किया जाय । भारतीय कृपक को भूमि के स्वामित्व म बडा प्र म है और उसका यह प्र म सामूहिक खती क प्रचलन क माग म बडा बाधक बनगा । जबकि उद्योग व अ य क्ष त्रो म उत्पादन क साधनो के स्वामियो म उनकी वस्तु नहा छीनी जा रहा तो फिर बेचारे किसानो का ही अपना स्वामित्व छाडन के लिये क्या विवश किया जाय ? अत यह सुझाव दिया गया कि वतमान परिस्थितियो म स मूहिक खती भारत के लिये उपयुक्त नहा है ।

निसदह यदि सामूहिक खती का ढ ग भारत म चल पडा तो भूमि पर व्यक्ति गत स्वामि व का अ त हो जायगा । पर तु इसम उत्पादन म अद्वितीय वृद्धि हो जाती है जो किसी अ य साधन द्वारा सम्भव नही है । यही नही रूस म इस प्रणाली का जो सफलता प्राप्त हुई है उसक कारण अब इसक पक्ष म एस लोग भी हो गये है जो पहले इस ठीक नही समझते थे । राज्यो म जमींदारी उन्मूलन कानून पास हो जान से सामूहिक खती के पक्षपाती अब यह जोर के साथ कहने लगे है कि हर प्रकार की यक्तिगत खती ब द कर दनी चाहिये ।

इन परिस्थितियो म हमारा मत है कि हर राज्य क हर जिल के कुछ गावो म सामूहिक ढग की खेती प्रारम्भ कर दी जाये । ये गाव एसे हो जिन पर या तो पहल एक ही व्यक्ति का स्वामित्व था या दो चार का । यदि इन प्रयोगो म सफलता हो तो फिर इस प्रकार की खती म विस्तार किया जा सकता है ।

सहकारी खेती—

सहकारी खती स आशय उस व्यवस्था का है जिसके अन्तगत प्रत्यक किसान अपना भूमि का स्वामी बना रहता है लेकिन कृषि सम्ब धी कार्यो को अ य लोगा क साथ मिल कर करता है । सम्पूण खर्चे एक सम्मिलित काष (Common Fund) म स किय जात है और कुल आय म स काट लिये जाते है । शुद्ध आय विभि न किसानो म उनकी भूमियो के अनुपात म बाट दी जाती है । इस प्रकार जैसा कि योजना आयोग न भी कहा है सहकारी खेती का अथ है भूमि का एकत्रीकरण एव सयुक्त प्रब ध ।

सहकारी खती और सामूहिक खती म अ तर इस प्रकार है —

(१) सामूहिक खती म भूमि का स्वामि व और भूमि की कृषि सामूहिक

होती है। व्यक्ति स्वामित्व का अधिकार 'समूह' के प्रति त्याग दिया जाता है। लेकिन, सहकारी खेती के अन्तर्गत, सदस्य उन भूमियों के स्वामी बने रहते है, जिन्हे वे एक निर्दिष्ट अवधि के लिये या सदैव के लिये सहकारी खेती के हेतु संयुक्त कर लेते है।

(२) सामूहिक खेती में भूमि का प्रत्येक धारी (Holder) या किसी स्थान में वहाँ का प्रत्येक कृषक सदस्यता प्राप्त करने का अधिकार रखता है। उसे अलग नही रहने दिया जा सकता है। लेकिन सहकारी खेती का ऐच्छिक संगठन है और किसी व्यक्ति को यह अधिकार नही होता कि उसे सदस्य बना ही लिया जाय।

(३) सामूहिक खेती के अन्तर्गत सरकार कृषि की योजना बनाती है, जिस शक्ति एवं यंत्रो के प्रयोग द्वारा पूरा किया जाता है। लेकिन सहकारी खेती मे सरकार का कोई हस्तक्षेप नही होता।

(४) सामूहिक खेती के अन्तर्गत कार्य करते वालो को कुल शुद्ध आमदनी में से 'कार्य दिवस' (Work day) के सिद्धान्तानुसार कुछ भाग दिया जाता है। लेकिन सहकारी खेती के अन्तर्गत सदस्य मजदूरो की और गैर सदस्य मजदूरो को भी प्रचलित दरों से मजदूरी दी जाती है। अवशेष लाभो को प्रदान की गई भूमि के मूल्यानुसार बाँट दिया जाता है।

सब बातो को ध्यान मे रखते हुये बडे पैमाने की खेती आरम्भ करने का सबसे अच्छा ढंग सहकारी खेती का है। इससे न तो जनता के मौलिक रीति रिवाजों या आर्थिक अधिकारो पर ही कोई प्रभाव पडता है और न व्यक्तिगत सम्पत्ति में ही कोई परिवर्तन होता है। परन्तु उत्पादन की मात्रा में बहुत वृद्धि हो सकती है। यही कारण है कि अनेक विशिष्ट समितियों ने इस प्रकार की खेती को भारत में अपनाये जाने के लिए मत प्रगट किया है।

सहकारी कृषि निम्न दशाओं में उपयुक्त होती है :—

(१) जबकि किसी नई भूमि को कृषि के लिये प्रयोग मे लाना हो, तो सारी भूमि एक सहकारी समिति के अन्तर्गत निर्धारित की जा सकती है।

(२) जबकि वर्तमान भूमि किसी बडे भूमि-पति के अधिकार मे हो और उस पर वह स्वयं खेती नही करता, तो सहकारी समिति का निर्माण कर ऐसी भूमि सहकारी खेती के लिये वार्षिक किराये या पट्टे पर प्राप्त की जा सकती है।

(३) जब विद्यमान भूमि पति यह चाहते है कि वे अपनी भूमियो को संचित करके सहकारी-समिति के रूप में कृषि करें।

सहकारी कृषि की विशेषतायें—

सहकारी खेती की निम्न विशेषतायें है :—

(१) भूमि पर एक इकाई के रूप में खेती की जाती है।

(२) भूमि के भिन्न भिन्न टुकड़े मिलाकर एक चक कर दिये जाते हैं, उनके बीच के बन्ध हटा दिये जाते हैं जिससे खेतों का आकार बड़ा हो जाय।

(३) सदस्यों का भूमि पर वैयक्तिक अधिकार बना रहता है किन्तु अपना कृषि करने का अधिकार वे समिति को सौंप देते हैं। खेती का ढंग, क्षेत्रफल, खाद, बीज, औजार आदि के निर्णय का अधिकार समिति को मिल जाता है।

(४) समिति ही कुल उत्पादन का विक्रय करेगी।

(५) पैदावार में से या बिक्री धन में से प्रत्येक सदस्य को उसकी भूमि अथवा श्रम के अनुपात में भुगतान किया जाता है।

(६) कृषि पर कड़ा नियन्त्रण होता है।

(७) प्रत्येक सदस्य का प्रत्येक दिवस का श्रम सम्बन्धी रिकार्ड रखा जाता है।

(८) एक प्रबन्ध समिति हिसाब किताब, रिकार्ड व प्रबन्ध के लिये दायी होती है।

सहकारी खेती के विभिन्न स्वरूप—

सहकारी खेती के चार रूप हो सकते हैं —

(१) सहकारी उन्नत खेती (Cooperative Better Farming)

(२) सहकारी संयुक्त खेती (Cooperative Joint Farming)

(३) सहकारी किसान खेती (Cooperative Tenant Farming)

(४) सहकारी सामूहिक खेती (Cooperative Collective Farming)।

अब इन चारों प्रकार की सहकारी खेती के विषय में लिखा जायगा क्योंकि हर प्रकार की खेती के लिए कुछ भागों में समितियाँ बन गई हैं।

(१) **सहकारी उन्नत खेती समिति—**ऐसी समिति वैयक्तिक स्वामित्व (individual ownership) और वैयक्तिक कामकरण (individual operatorship) के सिद्धान्त पर बनाई जाती है। इसका उद्देश्य कृषि के उन्नत ढंगों का प्रचलन करना है। इस प्रणाली के अन्तर्गत किसान अपनी भूमि का स्वयं ही स्वामी बना रहता है और स्वतन्त्र रूप से अपनी भूमि पर खेती भी करता रहता है। लेकिन कुछ कार्यों में उसे सबके साथ मिलकर चलना पड़ता है। जैसे—समिति खेती के सम्बन्ध में जो विशेष योजना बना देती है, सदस्य उसी के अनुसार कार्य करते हैं। बीज और खाद सबकी ओर से समिति खरीदती है और इसी प्रकार जो उपज होती है उसे साफ करने व बेचने का काम भी समिति करती है ताकि मूल्य अच्छा मिल जाय। खेतों का जोतना, फसलों का काटना और मशीनों का प्रयोग मिला जुला रहता है। इसके अतिरिक्त अन्य सब बातों में सदस्य स्वतन्त्र रहता है। समिति की इस सेवा के बदले

म वह समिति को उचित कमीशन देता है और वर्ष के अन्त में उसे कुछ लाभ (Patronage dividend) प्राप्त होता है। इस प्रकार की समितियाँ यूरोप के बहुत से देशों में विशेषकर डेनमार्क में पाई जाती है।

(२) सहकारी संयुक्त खेती समिति—इस समिति के अन्तर्गत व्यक्तिक स्वामित्व के अधिकार का सम्मान किया जाता है लेकिन छोटे छोटे भू स्वामी अपनी भूमियों को (जो इतने कम आकार की है कि उन पर खेती करना आर्थिक दृष्टि से ठीक नहीं कहा जा सकता) मिला कर एक कर लेते है ताकि संयुक्त रूप से खेती की जा सके अर्थात् वैयक्तिक स्वामित्व किंतु संयुक्त कृषि की व्यवस्था की जाती है। सब जोतों का आकार काफी बड़ा हो जाता है और सारी भूमि को एक इकाई मान कर खेती की जाती है। समिति एक कमेटी बना देती है और एक मैनेजर नियुक्त कर देती है। सब सदस्यों को इस मैनेजर के कहने के अनुसार भूमि पर काम करना होता है। प्रत्येक सदस्य को उसके दैनिक श्रम के बदले में मजदूरी दी जाती है। यह सब होने हुए भी हर सदस्य अपनी जोत का स्वामी बना रहता है, जिसका प्रमाण उस लाभांश के भुगतान में मिलता है जो वह अपनी भूमि के मूल्य के अनुपात में प्राप्त करता है। जो उपज संयुक्त प्रयत्नों द्वारा भूमि से प्राप्त होती है उसे बेचकर और आमदनी में से खर्चा निकालकर जो बचता है वह समिति सदस्यों में बाँट देती है। खर्च में भूमि का लगान सदस्यों की मजदूरी, प्रबन्धक का वेतन और सुरक्षित कोष में रखी जाने वाली रकम सम्मिलित होती है। समिति के मुख्य कार्य निम्न होते है—फसल की योजना बनाना, खेती सम्बन्धी आवश्यक वस्तुओं की संयुक्त खरीद, खेती की उपज का संयुक्त विक्रय, भूमि सुधार के लिए भूमि, फसलों एवं अन्य सम्पत्ति की जमानत पर ऋण प्राप्त करना। सदस्यों के साथ यह समझौता होता है कि अलग होने पर वे अपनी भूमि पर किये गये सुधार का खर्चा लौटा देंगे।

(३) सहकारी किसान खेती समिति—ऐसी समिति के अन्तर्गत स्वामित्व तो सामूहिक होता है लेकिन कृषि कार्य व्यक्तिगत आधार पर किया जाता है। समिति सरकार से या किसी बड़े जमींदार से भूमि या तो बिना लगान के या बहुत लम्बी अवधि के लिए पट्टे पर ले लेती है। फिर इस भूमि के कितने ही छोटे-छोटे भाग करके जोतों की कुछ संख्या बना देती है और प्रत्येक जोत को अपने किसी सदस्य को पट्टे पर देती है जो इस समिति का लगानदार कहलाता है। सम्पूर्ण भूमि उस योजना के अनुसार जोती और बोई जाती है जो समिति बना देती है लेकिन योजना किस प्रकार कार्यान्वित की जाय, यह प्रत्येक सदस्य की इच्छा पर छोड़ दिया जाता है। यद्यपि समिति प्रत्येक सदस्य को आवश्यकतानुसार ऋण, बीज, खाद और बहुमूल्य कृषि औजार देने तथा सदस्यों की उपज मण्डी में बेचने का दायित्व अपने ऊपर लेती है तथापि सदस्य की इच्छा है कि वह इन सुविधाओं का लाभ उठाये या नहीं।

वे अपना फर्म में खर्च करने और वचन में पूर्ण स्वतन्त्र होते हैं। प्रत्येक लगानदार सदस्य अपनी जोत के लिए निर्धारित लगान अदा करता है। इस प्रकार समिति जमींदार का स्थान ले लेती है और जो लाभ प्राप्त होता है वह सब खर्चा निकाल कर संचित कोष में कुछ निश्चित रकम डालकर सदस्यों में उस अनुपात में बाँट दिया जाता है जिसमें वे लगान देते हैं।

(४) सहकारी सामूहिक खेती समिति —इस प्रणाली के अन्तर्गत भूमि का स्वामित्व एवं कृषि कार्य संचालन दोनों ही सामूहिक आधार पर होते हैं। इस प्रकार की समिति के पास भी भूमि या तो बिना लगान के होती है या लम्बे पट्टे पर होती है। सम्पूर्ण भूमि पर वह संयुक्त खेती कराती है जिसमें सब सदस्य मिल कर काम करते हैं और इस काम के बदले में उन्हें निश्चित वेतन दिया जाता है। वर्ष के अन्त में लाभ मालूम किए जाते हैं और मजदूरी प्रबन्ध सम्बन्धी व्यय व संचित कोष में जमा की जाने वाली रकम निकाल कर जो लाभ बचता है वह प्रत्येक सदस्य को उनकी कुल मजदूरी के अनुपात में बाँट दिया जाता है। इस प्रकार की समिति का सबसे बड़ा लाभ यह है कि बड़े पैमाने पर खेती करने के कारण उत्पादन में मशीनों का प्रयोग भलीभाँति किया जा सकता है। इस दशा में फार्म के मजदूर न तो व्यक्तिगत स्वामी रहते हैं और न व्यक्तिगत कार्य कर्ता (neither individual owners nor individual operators)।

भारत में सहकारी खेती का सबसे उपयुक्त रूप—

मरैया कमेटी की रिपोर्ट के अनुसार सहकारी सामूहिक खेती या सहकारी किसान खेती समिति का संगठन तब किया जा सकता है जबकि समिति के पास भूमि हो। अतः यह उस दशा में सबसे अधिक उपयुक्त है जबकि सुधार कर या अन्य किसी प्रकार से भूमि प्राप्त की गई है। जैसे—शरणार्थियों रिटायर्ड सैनिकों या भूमिहीन मजदूरों को बसाने के हेतु। सरकार को चाहिए कि वह कृषि यन्त्रों के लिए या कृषि कार्यों के लिए पूँजीगत व्ययों में सहायता करे।

सहकारी उन्नत खेती समितियाँ व्यापक पैमाने पर संगठित की जानी चाहिए। राज्य इन्हें निम्न सहायता दे सकता है—(अ) निपुण स्टाफ (आ) इमारत स्थायी सुधार और कीमती कृषि यन्त्रों के लिए दीर्घकालीन ऋण (इ) पशु एवं साज सामान के लिए मध्यकालीन ऋण।

सहकारी संयुक्त खेती समितियों की स्थापना करना भारत में सभी जगहों पर उचित न होगा। सरकार को चाहिए कि वह इन समितियों के संगठन में प्रारम्भ आर्थिक सहायता टेक्निकल सहायता परामर्शदाता मैनेजर व अन्य निपुण कर्मचारियों की सहायता देकर प्रोत्साहन दे सकती है। सरकार को चाहिए कि समिति

में प्रारम्भिक वर्षों के खर्चे स्वयं चुकाये। केन्द्रीय सहकारी बैंक अपने कार्य क्षेत्र में आने वाली संयुक्त खेती समिति को लघु एवं मध्यकालीन ऋण दें और दीर्घकालीन ऋण भूमि बंधक बैंकों या सरकार द्वारा दिये जायें।

सहकारी खेती के लाभ—

यदि भारत में सहकारी खेती को अपनाया जाय, तो इसके अनेक आर्थिक और सामाजिक लाभ होंगे जबकि सामूहिक खेती के कोई दोष इसमें नहीं हैं। ये लाभ निम्नलिखित हैं:—

(१) किसान उत्पादन बढ़ाने में समर्थ होंगे और साथ ही कार्य के व्यय भी कम हो जायेंगे, क्योंकि केन्द्रित प्रबन्ध व विकेन्द्रित नियन्त्रण के लाभ उन्हें प्राप्त हो जाते हैं, वह कृषि विशेषज्ञों की सेवाओं का प्रयोग कर सकता है, खेती की उत्तम टेक्नीक ग्रहण कर सकता है, कच्चा माल खरीदने में मितव्ययिता हो जाती है, फसल का विपणन सुविधापूर्वक किया जा सकता है, कीमती कृषि मशीनों तथा साज सामान का प्रयोग हो सकता है।

(२) सहकारी खेती कृषकों में एक सामाजिक चेतना और सुरक्षा की भावना विकसित करेगी, उनके आवास सम्बन्धी दशाओं में सुधार हो जायगा, काम करने की दशायें अच्छी हो जायगी, काम के घण्टे कम हो जायेंगे, मनोरंजन के लिए अधिक समय मिल सकेगा, चिकित्सा, शिक्षा एवं अन्य सुविधायें भी उत्तम स्तर पर प्राप्त हो सकेंगी। श्रम का पुरस्कार भी बढ़ जायगा, क्योंकि सहकारी विधि के अन्तर्गत प्रत्येक सदस्य खेती में प्रत्यक्ष रुचि लेने लगता है। लालच, स्वार्थ आदि सामाजिक प्रवृत्तियाँ मन्द पड़ जाती हैं।

(३) उक्त लाभ न केवल किसानों को, जोकि सहकारी खेती में भाग लेंगे वरन् सम्पूर्ण समाज को ही मिलेंगे। उत्पादन बढ़ने से ग्रामीण कार्यकर्त्ताओं का जीवन स्तर भी ऊँचा हो जायगा, सदस्यों में जनतन्त्रीय भावना विकसित होगी, भूमि रहित नवयुवक मजदूरों को भी भूमि पर बसने का अवसर मिलेगा।

(४) संयुक्त सहकारी समितियों के संगठन से कृषक और सरकार के मध्य घनिष्ठ सम्बन्ध की स्थापना हो सकेगी। सहकारी कृषि समितियों के द्वारा सरकार अधिक व्यापक पैमाने पर अपने विभिन्न अनुसन्धानों के परिणामों का सक्रिय प्रदर्शन कर सकेगी, क्योंकि उसके अपने प्रदर्शन फार्मों की संख्या अभी कम है। आकस्मिक संकट के समय सरकार अपनी कृषि नीतियों को (जैसे फसल उत्पादन, गल्ला वसूली आदि के सम्बन्ध में) सरलता से कार्यान्वित कर सकेगी। सहकारी कृषि समितियों के द्वारा सरकार को कृषि सम्बन्धी आँकड़े संग्रह करने में भी सहायता मिलेगी।

किया है कि देश में सहकारी खेती को प्रोत्साहन दिया जाए। साथ ही भूस्वामित्व की अधिकतम सीमा निर्धारित करने का भी निर्देश दिया गया है। अधिकतम सीमा निर्धारित करने के फलस्वरूप सरकार जो भूमि हस्तगत करेगी, उस भूमिहीनों में वितरित नहीं किया जायेगा, बल्कि भूमिहीनों की सहकारी समितियां बनाई जायेगी और यह अतिरिक्त भूमि इन समितियों को खेती करने के लिये दी जायेगी। पहले तो सहकारी कृषि सम्बन्धी प्रस्ताव पर अधिवेशन में ही बहुत जोरों में बहस हुई थी। उसके बाद संसद में तथा संसद के बाहर विभिन्न सभा सम्मेलनों में इस पर वाद विवाद चलता आ रहा है। यह कितना विवादास्पद विषय बना है उसका अनुमान इस बात से ही लगा लिया जा सकता है कि राजाजी, श्री मुशी, श्री रंगा जैसे व्यक्तियों ने भी प्रस्तावित सहकारी कृषि की आलोचना की है। लेकिन सरकार इसको कार्यान्वित करने के लिये कृत संकल्प है क्योंकि इसे वह देश में सामाजिक तथा आर्थिक क्रान्ति का अनिवार्य अंग मानती है।

सहकारी कृषि के प्रश्न पर विचार करते समय हमें सबसे पहले यह विचार करना चाहिये कि किसानों के सामने क्या कठिनाइयाँ हैं और कृषि व्यवस्था के सम्बन्ध में हमारे मुख्य लक्ष्य क्या हैं। कृषि समस्याओं का संक्षेप में इस प्रकार वर्णन किया जा सकता है —(१) भूमि की कमी तथा बिखरे हुए खेत, (२) अन्न तथा चारे की अपर्याप्तता, (३) अल्प आय, (४) पर्याप्त तथा कम ब्याज वाले ऋण की व्यवस्था का अभाव, (५) जमीन के मुकाबले जन संख्या की भारी बहुतायत, (६) गाँवों में उद्योग धंधों की कमी, (७) सिंचाई, अच्छे बीजों तथा खाद की उन्नत व्यवस्था का अभाव, (८) पशुओं की हीन दशा, (९) बुनियादी शिक्षा का अभाव, (१०) सुधारों तथा परिवर्तन के प्रति आशंकाशील मनोवृत्ति तथा किसी हद तक प्रतिरोध की भावना।

विचारणीय विषय तो यह है कि इन समस्याओं का समाधान कैसे हो और कृषक राष्ट्र के आर्थिक विकास का अंग कैसे बने। जब हम भूमि सुधारों तथा कृषि नीति की चर्चा करें तो हमें इन महत्वपूर्ण उद्देश्यों को सतत दृष्टि में रखना चाहिए —(१) किसान की आर्थिक तथा सांस्कृतिक उन्नति हो, (२) खाद्य उत्पादन में इतनी वृद्धि हो कि देश आत्मनिर्भर बन जाए तथा (३) वह लोकतन्त्रीय पद्धति अक्षुण्ण बनी रहे जिसमें व्यक्ति तथा समाज के हितों का साथ-साथ निर्वाह हो सके।

जो लोग बिना सोचे विचारे एक दम सामूहिक कृषि के गीत गाने लगते हैं उन्हें यह नहीं भूलना चाहिये कि सोवियत संघ में सामूहिक कृषि का प्रयोग सफल नहीं रहा। जब पहले किसानों से जमीन छीनकर उन्हें कृषि मजदूरों के रूप में परिणित किया गया तो उन्होंने प्रबल विरोध किया था और इस प्रतिरोध में बहुतों का सफाया हुआ। १९३० में सोवियत सरकार को अपनी गलती का अनुभव हुआ

हागा। इस पर सामूहिक कृषि फार्मों को अधिक उत्पादन के लिये प्रोत्साहित करने के हेतु कुछ रियायतें दी गई। उनम स एक उल्लेखनीय है और वह यह है कि प्रत्येक किसान परिवार अपना एक 'उद्यान भूमि खंड' रख सकता था। लेकिन सामूहिक कृषि फार्मों के परिणाम तब भी आशाप्रद न रहे। फलतः १९४९-५० मे कृषि नगरों की योजना चली। वह भी कुछ दिनों बाद त्याग दी गई। अतः किसानो को प्रोत्साहित करने के लिए उनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं की मूल्य वृद्धि की गई तथा कृषि सम्बन्धी कर घटाये गये। इस प्रकार ३५ वर्षों के इतने बड़े परीक्षण का वह परिणाम न निकला जिसकी कि आशा की गई थी। चीन ने 'कम्यूनों' के प्रयोग के रूप म रूस से भी आगे जो कदम बढ़ाया है, उसके बारे में भी निष्पक्ष विशेषज्ञ आशावादी नहीं मालूम देते। उनका कहना है कि चीन के अन्नोत्पादन के मुकाबले जापान में अन्नोत्पादन का अनुपात अधिक है। बात यह है कि उसने वैज्ञानिक साधनों का अधिकाधिक उपयोग किया है।

सहकारी खेती का प्रयोग देश मे सफल हो सकेगा, इस बारे में शकायें उठाई जा रही है।

सहकारी खेती के प्रस्ताव के विरोध मे—

राजाजी का कहना है, 'साम्यवादी देशों को छोड़कर जहाँ व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का अभाव है और लोगों से जबर्दस्ती काम कराया जाता है कहीं भी सहकारी खेती का प्रयोग नहीं किया गया। सहकारी खेती बिना बल प्रयोग के सभव नहीं होगी। लोग खुशी से मजदूर बनने के लिये राजी नहीं होंगे और किसान तो और भी कम। हमारे देश में सहकारी खेती भयकर रूप से विफल होगी। जो पचायतों द्वारा खेती कराने की बात करते हैं उन्हें मद्रास के उस प्रयोग का अध्ययन कर लेना चाहिये जबकि छोटे जगल पचायतो के सपुर्द कर दिये गये थे।

मुन्शी जी को भी सहकारी खेती में जोर जबर्दस्ती की आशका है। उन्होंने सहकारी खेती के विरुद्ध ये आपत्तियाँ प्रस्तुत की है :—(१) हमारे पास काफी साधन या प्रशिक्षित व्यक्ति नहीं हैं। इस समय जो अधिकांश सहकारी समितियाँ हैं, उनका काम केवल कर्ज देना है। उनको पैसा बैंकों से मिलता है। साधनों के रूप में सदस्यों का योग तो मुश्किल से दसवां हिस्सा भी नहीं होता। भूमिहीन श्रमिकों को कुशल किसानों के रूप मे नहीं बदला जा सकेगा। (२) सहकारी खेती का प्रयोग भारत में कहीं भी सफल नहीं हुआ। मद्रास, पजाब और अन्यत्र जहाँ भी वह किया गया अन्त में उसे छोड़ देना पड़ा। किसान को अपनी भूमि से बेहद मोह होता है और वह उसे सहकारी खेती में शामिल करने के लिए रजामन्द नहीं होगा। (३) दुनिया में सहकारी खेती से कहीं भी उत्पादन नहीं बढ़ा। जापान और इजरायल में जहाँ

उत्पादन बढा है, किन्तु उसका श्रेय व्यक्तिगत खेती का है। किसान लाभ की आशा में काम करता है। सहकारी समितियां किसानो को खाद, अच्छे बीज, अन्न को सुरक्षित-रखने और बिकवाने में मदद दे सकती है। युगोस्लाविया मे बल प्रयोग द्वारा सहकारी खेती जारी की गई तो उत्पादन १५-२० प्रतिशत घट गया। हमारे देश में वर्तमान खेती की व्यवस्था हजारो वर्षों से चली आ रही है। पारिवारिक इकाई ही इसके लिए सर्वोत्तम होगी।

श्री रघुवीरसहाय (का-उ. प्र) ने कहा कि देश के सहकारी आन्दोलन मे एक गन्दी "बू" आती है क्योकि अधिकारियो का सहकारी सस्थाओ मे निकट सम्पर्क है। श्री वाजपेयी ने कहा कि कुछ लोग कहते है कि सहकारी खेती का उद्देश्य उत्पादन बढाना है और कुछ लोग कहते है कि साम्यवादियो के बढते हुए प्रभाव को कम करने के लिए है। इससे उत्पादन तो बढ नही सकता। बल्कि गांव में अव्यवस्था और नौकरशाही बढेगी। अगर आप सहकारी खेती में शामिल करने के लिए जबर-दस्ती नही करेंगे तो किसान सहकारी खेती में शामिल नही होगे। आप सहकारी खेती को ज्यादा आर्थिक सहायता देंगे और निजी खेती को नही। बिना दबाव के सहकारी खेती की स्थापना न किसी देश मे हुई है और न यहा होगी।

श्री रघुनाथसिंह ने कहा कि जापानी खेती बडे बडे स्वता के लिए उपयुक्त नही है। इस व्यवस्था मे छोटे खेतो में ही हम अधिक उत्पादन कर सकते है। आपने छोटे खेतो को मिलाकर बडे खेतो में परिणित किये जाने का सुझाव रखा। कुछ सदस्यो ने यह भी कहा बताया जाता है कि अतिरिक्त भूमि के लिए जाने की बात कहने से पूर्व हमें यह जान लेना चाहिये कि हमारे पास कितनी अतिरिक्त भूमि है जिसे हम बाँटेंगे। यह जानकारी नही रहने से इस बात की पूरी आशका है कि जिनके पास भूमि है वे भूमि की उपयोगिता पर कम खर्च कर सकते है और उसका उत्पादन पर बुरा प्रभाव पड सकता है। अत. इन मामलो में सरकार को जल्दी करनी चाहिए ताकि भूमि की समस्या हल करते हुए उत्पादन में भी कभी न होने पाए।

हमारी भारत सरकार एव राज्य सरकार बार-बार यह जोर दे रही है कि सहकारिता के आधार पर कृषि होनी चाहिए। यह तो बिल्कुल ठीक है किन्तु हमारे देश की स्थिति के अनुकूल सहकारिता किस प्रकार की हो इसका कोई ठीक-ठीक ढाचा उनके दिमाग मे नही मालूम होता। नतीजा यह हो रहा है कि आजकल जितनी सहकारी समितियां बनी हुई है उनका लाभ केवल पढे-लिखे लोग ही उठाते है और उनमे अधिकतर भाई-भतीजावाद का बोलबाला रहता है। वे प्राय: एक ही परिवार के सदस्य होते हैं जिसमे अनपढ किसानो को कोई लाभ नही होता। आज-कल जितनी कृषि सहकारी समितियां हैं तथा बन रही है वे ऐसे लोगो की है जिनके पास सैकडो एकड जमीन है, जो सीलग लगने पर उनके कब्जे मे निकलने वाली है,

सफलता प्राप्त की है उनसे भी हम कुछ सीख सकते हैं और सारी दुनिया इस सिद्धान्त को तसलीम कर चुकी है कि सहकारिता के जरिए ही अनाज का उत्पादन और लोगों का रहन सहन ऊंचा हो सकता है।

प्रधानमन्त्री ने कहा कि जो लोग सहकारिता के उसूल का विरोध कर रहे हैं, वे उस वर्ग से सम्बन्ध रखते हैं जिसे अपने निहित स्वार्थों को ठेस लगने का खतरा है। इन लोगों ने अपने दिमाग को ऐसी कोठरी में बन्द कर रखा है जहाँ न हवा आती है, न धूप। शायद ही कोई समझदार आदमी ऐसा मिलेगा जो सहकारिता के तरीके का विरोध करता हो, यहाँ तक कि पूंजीवादी देश भी सहकारिता को मानते हैं। आखिर हम यही तो चाहते हैं कि किसान अपनी अपनी जमीनें रखें, लेकिन खेती मिल कर करें और पैदावार को उसी हिसाब से बांट लें। यह ठीक है कि इसमें कुछ सीखे हुए आदमियों की आवश्यकता है। पुराने ढग की सहकारी समितियां यहाँ काम नहीं दे सकतीं, क्योंकि उनमें अफसरशाही का बोलबाला है। आजकल हिन्दुस्तान में खेती का कोई तरीका अच्छा नहीं है, सिवाय इसके कि हम सहकारिता के उसूल को उसमें लागू करें। इसलिए सहकारिता आज का युग धर्म है। श्री नेहरू ने सहकारिता का भारत की संयुक्त परिवार प्रणाली के साथ मुकाबला किया है। उन्होंने कहा कि बहुधा एक संयुक्त परिवार में भाइयों का किसी सम्पत्ति पर पृथक रूप से स्वामित्व या अधिकार होता है, परन्तु उसके बावजूद परिवार के सभी सदस्यों के लाभार्थ सम्पत्ति की व्यवस्था संयुक्त रूप से होती है। उन्होंने कहा—सहकारी कृषि भी इसी प्रकार व्यक्तिगत स्वामित्व को नहीं हटाती और न ही किसान को उसकी भूमि से वंचित करती है, बल्कि भूमि की बहतर व्यवस्था होने की संभावना बढ़ाती है।

नेहरूजी ने अपने भाषण में कुछ नई बातें कहीं। एक यह कि कुछ लोग कहते हैं कि सहकारिता में शामिल होने के लिए किसानों पर दबाव डाला जायगा। उन्होंने कहा कि जब तक वर्तमान संविधान लागू रहेगा तब तक इस तरह का भय निराधार है। हाँ, यदि संविधान बदल गया तो मैं नहीं कह सकता। लेकिन यह एक दम गलत बात होगी कि एक किसान गाँव में सहकारिता के निर्माण में बाधक बने और उसे बर्दाश्त किया जाए। दूसरी नई बात उन्होंने यह बताई कि लोग कहते हैं कि क्या किसान जब सहकारिता में शामिल हो जायेंगे तब वे अपने खेतों के मालिक बने रहेंगे। उन्होंने कहा कि मैं यह नहीं कह सकता कि अमुक किसान अपने ही खेत का मालिक बना ही रहेगा, इस बदलती हुई दुनियां में स्वामित्व का अर्थ भी बदल रहा है। आचार्य विनोबा भावे कहते हैं कि जमीन का स्वामित्व समाप्त कर देना चाहिए। सहकारी खेती में यह कहना संभव नहीं है कि अमुक किसान अपने ही खेत का मालिक बना रहेगा। हाँ, वह सहकारिता में जितने हिस्से का मालिक पहले रहेगा उतने का मालिक बाद में भी बना रहेगा। उनके कहने का अर्थ यह था कि

यदि एक हजार एकड़ की सहकारी खेती में अमुक किसान की ५ एकड़ भूमि है तो वह ५ एकड़ का हिस्सेदार बना रहेगा लेकिन जिस ५ एकड़ का वह पहले मालिक था उसी भूमि का मालिक सम्भवत वह नहीं रह सकेगा। तीसरी नई बात उन्होंने यह बताई कि सहकारी खेती में शामिल होने वालों को यानी सहकारी खेती को सरकार जितनी अधिक सहायता देगी उतनी सहायता निजी किसान को नहीं दी जाएगी। नेहरू जी ने कहा कि सरकार इस बात में भेदभाव करेगी। चौथी नई बात उन्होंने यह बताई कि सहकारी खेती के मामले में ऐसा दृष्टिकोण अपनाना चाहिए कि उसमें परिस्थितियों के अनुसार हेरफेर किया जा सके। उदाहरण के लिए गेहूं वाले क्षेत्रों की स्थिति चावल के क्षेत्रों से भिन्न होती है।

नेहरू जी ने बताया कि गावों की गरीबी दूर करने के लिये दो मार्ग हैं एक है सहकारी खेती और दूसरा है कि खेती पर काम करने वाले लोग उद्योगों में जाय। यदि आप वर्तमान स्थिति में परिवर्तन करने के लिये कदम नहीं उठाते हैं तो गरीबी दूर नहीं हो सकती। उन्होंने कहा कि सहकारी खेती का उद्देश्य गरीबी दूर करना और उत्पादन बढ़ाना है। यदि हम कोई ऐसा कदम उठाते हैं जिससे संक्रमण काल में नया अन्त में जाकर उत्पादन कम होता है तो वह गलत कदम होगा। सहकारी खेती निस्सन्देह अच्छा कदम है लेकिन कुछ स्थानों पर इसका पहले परीक्षण किया जाए यह हानिकारक कदम होगा इसके परिणाम भयंकर हो सकते हैं। लेकिन कल ही सहकारी खेती प्रारम्भ करना व्यवहारिक कदम नहीं होगा क्योंकि इसके लिये लोगों में वातावरण तैयार करने की आवश्यकता है। उन्होंने कहा कि सहकारिता मनुष्य के सभी कार्यों के लिए लाभदायक है। हाँ कला के क्षेत्र में यह बात लागू नहीं होनी चाहिये। उन्होंने कहा कि वैदिक युग और आज के युग में बहुत फर्क है। आज आबादी अधिक और भूमि कम है।

डा० मनारायण ने सहकारी कृषि के लाभ बताते हुए कहा कि मेड खत्म कर दिये जाने से हर ५० लाख एकड़ अतिरिक्त भूमि खेती के लिये उपलब्ध हो जाएगी। इसके अलावा इसमें श्रम और पूंजी का अधिक युक्तियुक्त उपयोग हो सकेगा। उन्होंने कहा कि सहकारिता के क्षेत्र में काम करने वालों को सहकारी कृषि के ये लाभ किसानों को बताने चाहिए जिससे वे सहकारी कृषि को एक विश्वास के साथ अपनायें इस भावना से नहीं कि उन पर कोई चीज थोपी जा रही है।

नेहरू जी ने कहा कि हम कृषि के क्षेत्र में महान प्रगति करने की आवश्यकता है क्योंकि कृषि विकास के बिना औद्योगिक प्रगति रुक जायगी। यह ठीक है कि देश की समस्याओं के लिए उद्योगीकरण आवश्यक है। विज्ञान और टेक्नालाजी के बिना देश प्रगति नहीं कर सकता किन्तु देश का उद्योगीकरण भी स्थिर कृषि अर्थ व्यवस्था पर निर्भर करता है

प्रधान मंत्री ने कहा कि भारत में प्रति एकड़ उत्पादन विश्व में सबसे कम है। इसे बढ़ाकर दुगुना किया जाना चाहिये। यह तभी सम्भव है यदि हम कृषि की वैज्ञानिक पद्धति अपनाएं जैसी कि अन्य विदेशों में अपनाई जाती है। प्रधानमंत्री ने कहा कि देश में जो विभिन्न भूमि प्रथाएं चालू थी वे उत्पादन में बाधक थी। अतः स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सब प्रथम भूमि व्यवस्था को क्रांतिकारी रूप दिया गया। जमींदारी समाप्त कर दी गई परन्तु अब भी इस दिशा में और कार्य शेष था उसी के बारे में नागपुर कांग्रेस के निर्णय है। नेहरूजी ने कहा कि इस प्रकार के भूमि सुधार अन्य देशों में भी किये गए हैं। मैं साम्यवादी देशों की बात नहीं कहता क्योंकि उनकी विचार प्रक्रिया के आधार भिन्न है। जापान में जो साम्यवादी देश नहीं है भूमि सुधार किये गए तथा भूमि की अधिकतम मात्रा निश्चित की गई। अतः यह नहीं सोचना चाहिये कि इन सब बातों का किन्हीं सिद्धान्तों से सम्बन्ध है। यह तो विश्व में सर्वत्र प्रमुख समस्याओं के समाधान का एक उपाय है।

सहकारिता का सिद्धान्त आजकल सभी बातों में आवश्यक है। यह देखना होगा कि सहकारिता का स्वरूप बड़ा हो या छोटा। नागपुर कांग्रेस में सहकारी खेती जारी करने के लिये बल प्रयोग का कहीं जिक्र नहीं है। नेहरूजी ने नई दिल्ली की सार्वजनिक सभा में बोलते हुए कहा है कि यह काम लोगों की स्वेच्छा से होगा। लोगों को सहकारी खेती के फायदे समझाये जायेंगे और वे समझ-बूझ कर ही इसमें शामिल होंगे। नागपुर प्रस्ताव में तो यह भी कल्पना की गई है कि सहकारी समिति में शामिल होने वाला किसान अपनी भूमि का मालिक बना रहेगा। उसे अपनी भूमि और काम के हिसाब से जमीन की उपज में हिस्सा मिलेगा।

नागपुर प्रस्ताव में संयुक्त सहकारी कृषि की परिकल्पना एक अन्तिम प्रणाली के रूप में की गई थी। तीन वर्ष की अवधि तक हमारा मुख्य कार्य सेवा सहकारी समितियों का निर्माण होना चाहिए। संयुक्त सहकारी कृषि का घनिष्ठ सम्बन्ध सेवा सहकारी समितियों की सफलता से है जो कि लोगों में देहाती जीवन के अनेक क्षेत्रों में सहयोग की स्वभाव एवं दृष्टिकोण पैदा कर देगी। तब संयुक्त सहकारी कृषि को उत्पादन प्रक्रिया में भी सहकारिता के प्रसार के रूप में चालू किया जाएगा।

लोक सभा ने नागपुर प्रस्ताव को उक्त अंश स्वीकार कर लिया है। उप योजना मंत्री ने बताया है कि सरकार ने यह तय कर लिया है कि प्रत्येक सेवा सहकारी संगठन को ५ वर्ष तक प्रति वर्ष ६००) दफ्तर सञ्चालन व्यय के लिए दिया जायगा।

सहकारी खेती कैसे सफल हो ?*

आज हमारे ग्रामीण समाज की जो स्थिति है उसमें अभी सहकारिता की भावना बहुत कम है। एक दूसरे के प्रति सहनशीलता नहीं है। आपस में झगड़े बहुत है। जो सहकारी समितियां अभी गावों में चालू है उनका काम भी ठीक नहीं चल रहा है। समितियों के चुनाव में झगड़े होते हैं। चुनाव हो जाने के बाद भी बराबर पार्टीबंदियां चलती रहती है। ऐसी स्थिति में यदि इसका कोई उपाय नहीं किया गया तो सहकारिता के द्वारा खेती जैसा कार्य सफल होना असम्भव है। कहीं ऐसा न हो कि आपस की पार्टीबन्दी तथा वैमनस्य के कारण सहकारी खेती में उत्पादन और गिर जाए।

आजकल गावों की सहकारी समितियों में सरकारी अधिकारियों का हस्तक्षेप है और एक तरह से जो थोड़ा काम चल रहा है वह सरकारी अधिकारियों के बल बूते पर ही चल रहा है। सरकारी हस्तक्षेप से ऐसे ही काम चल सकता है, इसमें अधिक क्षमता उसमें नहीं आ सकता। इसी से आज मांग है कि सरकारी हस्तक्षेप समाप्त होना चाहिए। हमारे प्रधान मन्त्री भी यही चाहते हैं।

हम कोई व्यवस्था ऐसी लानी होगी कि जिसमें सहकारी समितियों में पार्टीबन्दी चलते रहने पर भी उनका काम आगे बढ़ता जाए और उसमें रुकावट न हो। एक बार काम जम जाने की जरूरत है फिर तो जब भूमि के उत्पादन में बढ़ोतरी हो जायेगी तथा सहकारी खेती के साथ ही साथ दूसरे सहायक उद्योग धंधे भी कुछ खड़े हो जायेंगे और इनके द्वारा गांव वालों को रोजगार मिल जाएगा तब तो ग्रामीणों को स्वयं उसका मीठा फल अनुभव होने लगेगा। उनकी आय बढ़ जाएगी। कम से कम वह काफी स्थायी हो जाएगी। मजदूरी का पैसा उनको नियम से बराबर उपलब्ध होने लगेगा।

जिस प्रकार व्यावसायिक कम्पनियों में व्यवस्था का काम कुछ संचालकों (डायरेक्टरों) के हाथ में रहता है उसी से मिलती जुलती कोई व्यवस्था सहकारी समितियों में भी लानी होगी ताकि सभी साझीदारों की व्यवस्था के रोजमर्रा के कामों में हस्तक्षेप न रहे।

चुने गांवों में प्रचार—

सहकारी खेती की सफलता के लिए पहला आवश्यक कदम तो यह है कि प्रारम्भ में प्रत्येक क्षेत्र में हम कुछ गांवों को चुन लें। ये गांव ऐसे होने चाहिए कि वहां अभी तक सहकारिता तथा पंचायत का काम सबसे अच्छा चल रहा हो तथा पार्टीबाजी संघर्ष तथा वैमनस्य सबसे कम हो। इन चुने हुए गांवों में पहले खूब अच्छा

* श्री कृष्णचन्द्र हिन्दुस्तान जून १९४०

तरह से सहकारी खेती का प्रचार किया जाए ताकि गांवों का प्रत्येक व्यक्ति सहकारी खेती का क्या रूप होगा तथा उससे उसे क्या लाभ होगा, यह समझ जाए और यह भी वह जान जाए कि उसके पास जो जमीन आज है वह सहकारी खेती होने पर उसी की मिल्कियत रहेगी। उसे यह समझा देना जरूरी है कि साझेदारी का मतलब है कि सब जमीनों की जुताई, बुवाई, नलाई आदि का काम एक व्यवस्था के द्वारा सचालित होने लगे। जिसकी जितनी निजी जमीन होगी अथवा जिसका जितना खेती का सामान हल, बैल आदि होंगे, उन सबका मूल्यांकन एवं निश्चित सिद्धान्त के आधार पर कर लिया जाएगा और इस प्रकार प्रत्येक के हिस्से की जो धनराशि होगी वह उसकी पूंजी के रूप में सहकारी समिति के हिसाब में अंकित हो जाएगी। इस पूंजी के अतिरिक्त जो नकद रुपया वह अपने हिस्से के रूप में देगा वह भी उसके हिसाब में सम्मिलित हो जाएगा। इस प्रकार किसी की जितनी भी पूंजी सहकारी खेती की समिति के हिसाब में निकलेगी वह व्यक्ति का पावना समिति पर रहेगा।

उद्योग धन्धों की जरूरत—

यह भी आवश्यक है कि प्रत्येक साझेदार को इस बात का आश्वासन प्राप्त हो कि सहकारी खेती के चालू हो जाने पर सहकारी समिति के लिए यह अनिवार्य होगा कि वह किसान को उसकी योग्यता के अनुसार काम दे तथा उस काम के हिसाब से उसे मजदूरी का पैसा नियमित रूप से अदा करे। सम्भव है कि सहकारी खेती की व्यवस्था चालू हो जाने पर सब साझेदारों को खेती में काम न मिल सके। उसके लिए फालतू व्यक्तियों को रोजगार उपलब्ध कराने के लिए गांव में कोई और उद्योग धन्धा चालू करना पड़ेगा।

जिन चुने हुए गांवों में इन बातों का प्रचार करने पर यदि यह लगे कि वहां के अधिकांश व्यक्ति सहकारी खेती की उपादेयता को अनुभव करने लगे हैं और उसमें सम्मिलित होने को तैयार हैं तो उन्हीं गावों में सहकारी खेती पहले चालू की जाए। सेवा सहकार समितियों की जो योजना अभी पहले चालू की जा रही है और जिस पर आगामी तीन वर्षों में पूरा बल दिया जाएगा, उससे भी पता लग सकेगा कि कौन-कौन से गांवों में सहकारिता की अधिक से अधिक भावना घर कर गई है। सेवा सहकार समितियों के द्वारा किसानों को खेती के लिए आवश्यक सहायता उपलब्ध की जाएगी। किसानों को इन संस्थाओं के द्वारा अच्छा बीज, खाद खेती के औजार तथा तकावी दी जाएगी। इन समितियों में किसान ही सदस्य होंगे और वे स्वयं ही उनका सचालन करेंगे। सहकारिता का मूल मंत्र यही है कि किसान अपनी सहायता के लिए किसी दूसरे के प्रति न ताकें, बल्कि वे स्वावलम्बी बनें, मिल-जुलकर अपनी मदद स्वयं करें। अपनी-अपनी पूंजी मिला-जुलाकर उसके द्वारा एक दूसरे को आवश्यक सहायता प्रदान करें। यह सही है कि उनकी अपनी पूंजी मिला-जुलाकर भी अभी उनकी

सहायता क लिए पर्याप्त नही होगा। प्रारम्भ म इसक लिए सरकार उनको आवश्यक पूजी ऋण क रूप म देगी। परन्तु उद्देश्य सदा यही रहेगा कि किसान स्वय अपन परो पर खडे हो।

दनिक काय—

सहकारी समितियो म कोई एसा व्यवस्था होनी चाहिए कि जिसस प्रबन्ध का दनिक काय कोई एक व्यक्ति बिना दूसरा के किसी हस्तक्षेप के अपनी योग्यता के अनुसार सचालित करता रह। यह सचालक अवश्य ही साझीदारो द्वारा ही चुना जाएगा। परन्तु एक बार चुन जान पर उस कुछ निर्धारित समय अथवा तीन या चार वष के लिए बिना हस्तक्षप के काय सचालन का अवसर प्राप्त रहगा। उसकी सहायता के लिए एक शिक्षित व्यक्ति वेतनभोगी मनजर क रूप म भी रखना आवश्यक होगा। इस मनजर की योग्यता सरकार समय समय पर निर्धारित कर सकगी और आवश्यकता हुई तो सरकार एस योग्य व्यक्तियो की सूची तयार करगी और समितियो के लिए अनिवाय होगा कि व उसी सूची म स हो नियुक्ति कर। इन मनजरो क वतन क्रम योग्यता आदि बातो क लिए उचित नियम होगे।

साझेदारी का समितियाँ गाव गाँव म स्थापित हो और ठोस नीव पर उनका निर्माण हो इसके लिये आवश्यक है कि कुछ योग्य व्यक्ति उन्ह स्थापित करन का भार अपन ऊपर ल। एसे व्यक्तियो की कमी नही है। एसी समिति को दृढ होन के लिए कम से कम तीन चार वष की अवधि आवश्यक होगी। इस अवधि के अन्दर उसी योग्य व्यक्ति पर इसके सचालन का भार रहना चाहिये कि जिसने उसका सगठन किया है और उस उस काय क लिय पर्याप्त वेतन मिलना चाहिये। कानून म उसकी उचित व्यवस्था रहनी चाहिये। कोई योग्य व्यक्ति समिति को स्थापित करे उसका सगठन मुकम्मिल कर और फिर प्रचलित इर्षा-द्वष क कारण दूसरे साझीदार पार्टीबन्दी स अपना बहुमत करके उस निकाल बाहर कर इससे सस्था की नाव तथा उसका सगठन दृढ नहा हो सकता और न आग उसका काय सचालन ही सुचारु रूप स हो सकता है। एक निर्धारित अवधि तक उस काय करन का अवसर मिलना चाहिए। इसक दूसरी ओर यह भी आवश्यक है कि यदि कोई सचालक स्वार्थी बेईमान अयोग्य तथा अनुपयुक्त सिद्ध हो तो उस हटाए जान की भी कानून म व्यवस्था होनी चाहिय। एसा न होन स वह अपन स्वाथ साधन म ही रत रहगा और समिति बर्बाद हो जायगी। इसक लिये उस अपना सफाई दन का पूरा अवसर उपलब्ध रहना चाहिय। एसी व्यवस्था होना चाहिये कि उसक साथ पूरा न्याय हो तथा न्यायी का वह [illegible] सहकारी कानून म आवश्यक नियम बनाए जायग।

सहकारी कृषि के सम्बन्ध मे वर्तमान स्थिति—

२८ मार्च सन् १९५९ को लोक सभा ने एक गैर-सरकारी प्रस्ताव स्वीकार किया, जिसके अनुसार सेवा-सहकारिताओ का सगठन किया जायगा, जोकि देश में सहकारी कृषि के प्रचलन के लिये उपयुक्त वातावरण निर्माण करेंगी। भारत सरकार ने जून ११ को एक समिति का गठन किया है जोकि उन लोगो को, जो देश में स्वेच्छा से सयुक्त कृषि समितियाँ स्थापित करने का निश्चय करते है, वित्तीय, टैक्नीकल एव अन्य सुविधायें प्रदान करने के हेतु एक कार्यक्रम तैयार करने में सहायता देगी। इस समिति की रिपोर्ट १५ फरवरी सन् १९६० को प्रकाशित हुई थी। रिपोर्ट में यह सिफारिश की गई है कि प्रत्येक जिले के लिये एक अग्रगामी योजना (pilot project) के हिसाब मे ३२० योजनायें चुने हुये ब्लॉकों में अगले चार वर्षों के अन्दर चलाई जायें। उसकी सम्मति में अल्पमत कृषकों को किसी सहकारी समिति में सम्मिलित होने पर विवश करना ऐच्छिकता के आधारभूत सिद्धान्त के विरुद्ध है तथा व्यावहारिक दृष्टि से भी यह वाछनीय नहीं है। निम्न तालिका मे विभिन्न राज्यो में सहकारी समितियों का वितरण दिखाया गया है—

सहकारी कृषि समितियाँ (३० जून १९५८)

राज्य	समितियों की सख्या	कार्यशील वास्तयो की सख्या	भूमि का क्षेत्रफल (एकड़ो में)
आन्ध्र प्रदेश	८	४११	७१८
आसाम	१८४	४,९७७	१३ ४४४
बिहार	२६	२५२	३,११८
बम्बई	५१०	१४ ९६९	४६,५३५
जम्मू व काश्मीर	५	५८२	१,०७६
केरल	९	१,७१८	४,०५१·९६
मध्य प्रदेश	२०१	२,८३०	३६,१८२
मद्रास	४४	२,७१२	८,२६६·३६
मैसूर	१२८	३,४०६	१७,५८०
उड़ीसा	२८	२३८	२,०५३
पजाब	६७८	६,२५३	१,२७,५८७
राजस्थान	१०३	६२७	७,९१०
उत्तर प्रदेश	२६२	२,९८०	३३७१२
पश्चिमी बगाल	१६१	२ ५००	११,२२०
अडमन एव निकोबार द्वीप	३१	८००	—
दिल्ली	७१	१,२४७	५,१६०
हिमाचल प्रदेश	८	—	—
मनीपुर	१५	४८५	५२६
त्रिपुरा	२०	१,१८०	४,८६५

† India, 1960.

STANDARD QUESTIONS

1 Mention the various forms of large scale farming and state which of them is the most suitable in Indian conditions

2 Distinguish between co-operative farming and collective farming What are the obstacles to co operative farming in India ?

3 What are the different forms of co operative farming societies ? State the practicability of organising such socie ties in Indian Agriculture

4 Mention the various forms of co operative farming recommended for adoption in India Which of them do you *prefer and why ?*

5 Describe a co operative farming society What are its diffe rent forms ? Make out a case for the wide establishment of such societies in India

6 Write a critical essay on co operative farming in India ?"

अध्याय ८

भूमिरहित कृषकों की समस्याएँ व भूदान आन्दोलन

(Problem of landless Labourers and Bhoodan movement)

भूमिरहित कृषकों की समस्या का महत्व—

भूमिरहित कृषक (Landless Labourer) से हमारा आशय गांव में काम करने वाले उन व्यक्तियों से है, जो कि कृषि के धन्धे में मजदूरी पर काम करते हैं और जिनके पास अपनी कोई भूमि नहीं होती और यदि होती भी है तो इतनी कम कि उससे उनका तथा उसके परिवार के सदस्यों का पालन-पोषण नहीं हो सकता। हमारी ग्राम्य जनता का एक बहुत बड़ा भाग ऐसे कृषि श्रमिकों का ही है, जैसा कि क्वेसने महोदय (Quesnay) ने एक बार कहा था—'गरीब किसान, गरीब राजा, गरीब देश'—यह कथन अन्य देशों के सम्बन्ध में भले ही सत्य न हो, किन्तु जहाँ तक भारत का सम्बन्ध है, यह कथन सत्य प्रतीत होता है। जिस देश के कृषक स्वयं ही गरीब हों, वहाँ दूसरों के खेतों पर काम करके अपनी जीविका चलाने वाले कृषकों की क्या स्थिति हो सकती है इसका अनुमान लगाना सरल काम नहीं है। इन भूमिरहित कृषि श्रमिकों को दिन में दो बार भर पेट भोजन नहीं मिल पाता और न पहनने के लिए पर्याप्त वस्त्र ही मिलते हैं। सामाजिक सुविधायें क्या होती हैं, इनका उन्हें ज्ञान तक नहीं है। समाजवादी अर्थ-व्यवस्था (Socialistic Pattern) के इस युग में इन श्रमिकों के रहने के लिए घर, दवाइयों की मुफ्त सहायता, न्यूनतम मजदूरी इत्यादि का महत्व औद्योगिक क्षेत्र में काम करने वाले श्रमिकों से किसी प्रकार भी कम नहीं होना चाहिए किन्तु बड़े दुःख की बात है कि हमारे देश के स्वतन्त्र होने तक इनकी दशा को सुधारने का प्रयत्न न तो ब्रिटिश सरकार ने ही किया और न अन्य समाज सुधारकों, राजनैतिक कार्यकर्ताओं तथा खोज करने वाले व्यक्तियों ने ही इस ओर ध्यान दिया।

आज से कुछ वर्ष पूर्व तक भारत की अर्थ व्यवस्था में 'मजदूर' शब्द का अर्थ सदैव सगठित उद्योगों में काम करने वाले श्रम-जीवियों से ही समझा जाता था।

भारत सरकार भी औद्योगिक श्रमिकों की समस्याओं पर विशेष ध्यान देती थी तथा कृषि श्रमिकों की समस्याओं की उपेक्षा की जाती थी। परिणामतः देश में कृषि श्रमिकों की स्थिति बहुत ही दयनीय हो गई। कृषि सुधार समिति (Agrarian Reforms Committee) के अनुसार, 'कृषि विकास की किसी भी योजना में भूमि रहित कृषकों की समस्या पर समुचित ध्यान न देना, देश की कृषि व्यवस्था की एक दर्दनाक समस्या की उपेक्षा करना होगा। आज जबकि देश में अन्न संकट है, देश का विभाजन हो जाने के कारण खाद्य पदार्थों की दृष्टि से भारत की स्थिति और भी खराब हो गई है तथा पटसन एवं कपास जैसे आवश्यक औद्योगिक कच्चे माल का भी देश में टोटा है, तब हमें अपनी कृषि एवं कृषि श्रमिकों की दशा में आमूल परिवर्तन करने होंगे। यदि हमने अपने कृषि व्यवसाय में क्रान्तिकारी परिवर्तन किए और अपने भारतीय कृषक को पुराने ढंग से अवैज्ञानिक खेती करने दी, तो न हम अपनी बढ़ती हुई जन संख्या का जीवन निर्वाह कर सकेंगे और न अपने धन्धों की उन्नति कर सकेंगे। आज जिस अवस्था में हमारा कृषि श्रमिक रहा है, उस अवस्था में रहकर वह कभी भी वैज्ञानिक कृषि के लिए उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकता। मानवीय नीति और आर्थिक हित दोनों ही दृष्टिकोणों से हमारे कृषि श्रमिकों की समस्या बहुत महत्वपूर्ण है।

कृषि श्रमिकों की संख्या—

भारत में कृषि श्रमिकों की संख्या का अनुमान समय समय पर लगाया गया है। राष्ट्रीय योजना समिति (N. P. C.) के विवरण में प्रोफेसर रंगा ने भारत में कृषि श्रमिकों की संख्या १० करोड़ बताई थी। यह तत्कालीन जन-संख्या के आधार पर देश की कुल जन संख्या का २५% भाग थी। सन् १९५१ की जन गणना के अनुसार गाँव में रहने वाली २९ करोड़ ५० लाख जनता में से २४ करोड़ ६० लाख व्यक्ति केवल कृषि में लगे हुए थे। कृषि में लगे हुए इन व्यक्तियों का १८% भाग खेती करने वाले मजदूर एवं उन पर आश्रित व्यक्तियों का था।

कृषि श्रमिकों के सम्बन्ध में कृषि श्रम जाँच समिति ने अपनी रिपोर्ट में कुछ विश्वसनीय आँकड़े प्रकाशित किए हैं। केन्द्रीय श्रम सचिवालय द्वारा कृषि श्रमिकों के सम्बन्ध में की गई जाँच तीन भागों में प्रकाशित की गई है। उनकी कुटुम्ब सम्बन्धी आर्थिक स्थिति तथा रोजगार आदि के विषय में जो जाँच की गई है, वह नमूने के आधार पर ही की गई है क्योंकि समस्त देश के कृषि श्रमिकों की पूरी पूरी जाँच करना अत्यन्त कठिन है। नमूने की जाँच ८१२ गाँवों में रहने वाले केवल १ ०३,५४८ परिवारों की है। इन गाँवों में ७६ ०८% परिवार कृषि पर निर्भर हैं और ३०·४%

कृषि श्रमिकों के परिवार है। कृषि श्रमिकों के परिवारों का आधा भाग, अर्थात् १५·२% ऐसा है, जिनके पास स्वय की कुछ कृषि योग्य भूमि है और शेष १५·२% परिवार भूमि रहित कृषि श्रमिक है। अन्य शब्दों में यह कहा जा सकता है कि हमारे देश के गांवों में रहने वाले परिवारों की सख्या लगभग ५८० लाख है, जिनमें से १७६ लाख परिवार कृषि श्रमिकों के है। देश में पाये जाने वाले कृषि श्रमिकों का देश की कृषक जनता से अनुपात भिन्न भिन्न क्षेत्रों में एकसा नहीं है। निम्नलिखित आंकडों से यह भली प्रकार स्पष्ट हो जाता है :—

ग्रामीण जन-संख्या में कृषि श्रमिकों का स्थान

राज्य	समस्त प्रतिशत	भूमि युक्त मजदूरों का प्रतिशत	भूमि हीन मजदूरों का प्रतिशत
उत्तर प्रदेश	१४·३	५·७	८·६
आसाम	१०·७	६·७	४·०
बिहार	३६·६	२१·६	१४·३
उडीसा	४३.०	२३·८	१६·२
पश्चिमी बगाल	२३·८	१०·५	१३·३
मद्रास	५३·०	२८·३	२४·७
केरल	३६·५	२०·८	१८·७
बम्बई	२०·४	६·६	१०·८
मध्य प्रदेश	४०·१	१४·६	२५·२
पजाब	१०·१	१·६	८·५
सम्पूर्ण भारत	३०·४	१५·२	१५·२

कृषि श्रमिकों की सख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है। सर्व श्री वाडिया व मर्चेन्ट के अनुसार देश में भूमिहीन श्रमिकों की सख्या सन् १८८१ में केवल ७५ लाख थी। यही सख्या बढकर सन् १६२१ में २१५ लाख और सन् १६३१ में ३३० लाख हो गई।* सन् १६५१ की जन गणना के अनुसार कृषि श्रमिकों की सख्या ४६० लाख थी। कृषि श्रम जांच समिति के अनुसार देश की सम्पूर्ण ग्रामीण जन-सख्या का ३०·४% भाग कृषि श्रमिकों का है। कृषि श्रमिकों की सख्या में इस निरन्तर वृद्धि के अनेक कारण है, जैसे कृषि पर जन सख्या का अत्यधिक बोझ, औद्योगिक विकास की धीमी गति, कुटीर-उद्योगों की अवनति, ग्रामीण ऋण ग्रस्तता कृषि श्रमिकों में गतिशीलता का अभाव, इत्यादि।

* देखिये Our Economic Problems by Wadia and Merchant, Page 365.

कृषि श्रमिकों के भेद —

कृषि मजदूरों का निम्नलिखित वर्गों में विभक्त किया जा सकता है— (१) खेतों पर काम करने वाले जैसे—हल चलाने वाले सिंचाई करने वाले, निराई एवं खेत खोदने वाले, फसल काटने वाले इत्यादि। (२) साधारण मजदूर, जैसे—कुँआ खोदने वाले खेत के आस पास पत्थर या मिट्टी की बाढ़ लगाने वाले पत्थर खोदने एवं ढोने वाले इत्यादि। (३) निपुण मजदूर जैसे—सुनार राज लुहार, इत्यादि। इनके अतिरिक्त कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं कि जिनके पास अपनी स्वयं की भूमि कम होती है और वे उस भूमि पर पूर्ण रूप से निर्भर नहीं रह सकते अतः अपने जीवन निर्वाह के लिए दूसरे किसानों के खेतों पर कभी कभी मिलने वाले छोटे मोटे काम करने के लिये जाना पड़ता है। पिछले वर्षों में यह देखा गया है कि कृषि श्रमिकों की संख्या में प्रति वर्ष बड़ी तेजी से वृद्धि होती जा रही है जो हमारे देश की एक महान् बेकारी की समस्या को और भी जटिल बनाने में सहायक हो रही है।

कृषि श्रमिक जांच समिति के अनुसार देश के कुल कृषि श्रमिकों में ८५% आकस्मिक तथा १५% आसजित श्रमिक (Attached labourers) थे। कृषि श्रमिकों में से कुछ के पास थोड़ी भूमि होती है तथा कुछ के पास बिल्कुल भूमि नहीं होती। जिनके पास बिलकुल भूमि नहीं होती उन्हें भूमिरहित श्रमिक (Landless Labourer) कहते हैं। कृषि श्रम जांच समिति की खोज के अनुसार भारत के कुल ग्रामीण परिवार का ३०.४% भाग कृषि श्रमिकों का था जिनमें १५.२% के पास कुछ भूमि थी तथा १५.२% भूमिहीन श्रमिक थे।

भारतीय कृषि-श्रमिकों की समस्याएँ

भारतीय कृषि श्रमिकों को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है, जिनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं —

(१) मजदूरी की दरें एवं उसे चुकाने की विधियां— हमारे कृषि श्रमिकों को इतनी कम मजदूरी मिलती है कि वे न तो भर पेट भोजन ही कर पाते हैं और न पर्याप्त वस्त्र ही धारण कर सकते हैं। कृषि श्रमिकों को मजदूरी न केवल नकद वरन् अनाज कपड़ा तथा अन्य सुविधाओं के रूप में भी चुकाने की प्रथा हमारे देश में प्रचलित है। विभिन्न स्थानों में इन प्रथाओं की विभिन्नता के कारण मजदूरी को नकद रुपयों में आंकना अत्यन्त कठिन है। कृषि श्रमिक जांच समिति के अनुसार सन् १९५०-५१ में प्रति कृषि श्रमिक परिवार की औसत वार्षिक आय ४८७ रु० तथा औसत प्रति-व्यक्ति वार्षिक आय केवल १०४ रुपये थी, जबकि उसी वर्ष एक औसत भारतीय की वार्षिक आय २६३ रु० थी। इन आंकड़ों से स्पष्ट है कि हमारे देश के

कृषि-श्रमिकों की मजदूरी कितनी कम है। नीचे दी हुई तालिका से कृषि तथा औद्योगिक श्रमिकों की प्रति व्यक्ति औसत आय का तुलनात्मक ढंग से अनुमान लगाया जा सकता है—

प्रति-व्यक्ति वार्षिक आय

(रुपयों में)

राज्य	कृषि-श्रमिक	औद्योगिक श्रमिक	कृषि श्रमिक की आय औद्योगिक श्रमिकों के प्रतिशत में
पश्चिमी बंगाल	१६०	२६८	५६
बिहार	११६	३३२	३६
मध्यप्रदेश	८७	२६२	३३
उड़ीसा	७६	१४५	५४
पंजाब	१२१	२१६	५६
बम्बई	८८	३६८	२४

(२) **काम के घंटे**—काम के घंटे भिन्न भिन्न स्थान, ऋतु तथा फसलों के लिये एक से नहीं हैं। इन लोगों के काम के घण्टे औद्योगिक श्रमिकों की भांति निश्चित नहीं। साधारणतः मजदूर सूर्य उगने पर खेतों पर जाते हैं और केवल दोपहर के समय रोटी खाने और थोड़ा आराम करने के एक दो घण्टे को छोड़कर सन्ध्या होने तक काम करते रहते हैं। कृषि श्रमिकों के सम्बन्ध में एक विशेष बात यह है कि जिन खेतों में अधिक काम रहता है उन दिनों काम के घण्टे और भी अधिक बढ़ जाते हैं।

(३) **कृषि श्रमिकों की मौसमी बेकारी**—कृषि श्रमिकों की आर्थिक स्थिति कमजोर बनाने में उनका वर्ष भर लगातार काम न मिलना भी एक कारण है। केवल खेती के दिनों में, जब मजदूरों की मांग अधिक रहती है, अधिक लोगों को मजदूरी मिल जाती है, किन्तु वह भी लगातार नहीं, बीच बीच में छोड़कर। यदि वर्ष भर के बेकारी के दिनों को जोड़ा जाय, तो कदाचित ६० से १८० दिन हो सकते हैं। इन दिनों ये लोग या तो फालतू बैठे रहते हैं अथवा काम की तलाश में दर दर ठोकरें खाते हैं।

(४) **कृषि श्रमिकों के मकान की दशा**—क्योंकि कृषि मजदूरों की स्वयं भूमि नहीं होती, अतः विरले ही ऐसे हैं, जिनके पास कुछ भूमि का टुकड़ा हो जिस पर वे अपना मकान बना सकें, अतः उन्हें या तो भूमिपतियों की या गाँव की संस्थाओं के स्वामित्व की भूमि पर उनकी स्वीकृति लेकर मकान या झोपड़ियां बना कर रहना

पडता है। व रहन की झोपडिया बहुत ही छोटी होती है। डा० ग्रार० के० मुकर्जी न भी इनके रहन के स्थानो के सम्बन्ध म लिखा है कि ये झोपडियाँ केवल एसे स्थान म है जहाँ कि मजदूर केवल अपनी टागे लम्बी करके रात को सो सकता है और अनक उदाहरण एसे है जहा एक ही झोपडी म अनक व्यक्तिया के सोन मे आपस म पर्दा न होन क कारण मर्यादा भी समाप्त हो जाती है। ठण्ड के मौसम म एक ही कमरे म स्त्री और पुरुष युवक एव वृद्ध और कभी-कभी जानवर तथा बकरे साथ साथ ठुसे रहते है। इन मकानो म शुद्ध हवा तथा प्रकाश आन के लिये खिडकियो का पता नही दीवार तथा आगन सील के कारण सीलन व्यक्ति बुखार से पीडित और बच्चो की तन्दुरुस्ती इतनी खराब रहती है कि मृत्यु का डर बना ही रहता है। घर के आस पास गन्दगी के कारण मच्छरो इत्यादि का जोर भी कम नही रहता।

(५) कृषि श्रमिको की दासता—हमारे देश क कुछ भागो म कृषि श्रमिको की स्थिति उनकी अत्यधिक गरीबी के कारण दासो जसी हो गई है। दास व प्रथा उन स्थानो म अधिक पाई जाती है जहा निम्न एव दलित वग के लोगो की अधिकता हो। बम्बई राज्य म दुबला तथा कुलाः कहलान वाल एसे लोग है जिनम स अनक परिवार कई पीढियो से अपन स्वामी क यहाँ दासो की तरह नीरस जीवन व्यतीत कर रह ह। इनको खान के लिए भोजन व पहिनन क लिए वस्त्र मालिको की ओर से मिलता है। मद्रास राज्य क दक्षिणी पश्चिमी भाग क इझहावास चिरमम पुलेया तथा होलिया इत्यादि का स्थिति भी दासो के समान है।

(६) कृषि श्रमिको की ऋण ग्रस्तता—श्रमिको को पर्याप्त मजदूरी तथा लगातार काय न मिलन के कारण इन्हे अपनी न्यूनतम आवश्यकताओ की सतुष्टि के लिए ऋण लेना पडता है जिससे ये सदव के लिए महाजन के चगुल म फस जाते है। कृषि-श्रमिक अधिकाशत अपनी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को गिरवी रखकर ही ऋण प्राप्त करते है कृषि श्रम जाच समिति की खोज के अनुसार कुल १७६ लाख कृषि-श्रमिक परिवारो म स ७८ लाख परिवार ऋण के बोझ से ग्रसित थ। औसत ऋण की मात्रा प्रति परिवार १०५ रु० थी। अत यह कहा जा सकता है कि सन् १९५०-५१ म कृषि श्रमिको पर ८० करोड रुपये के लगभग ऋण था। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि कृषि जाच समिति क इस अनुमान स हमारे कृषि श्रमिको की वास्तविक स्थिति का पता नही लग सकता क्योकि वास्तविकता तो यह है कि शायद ही कोई एसा कृषि श्रमिक परिवार होगा जो ऋण के बोझ स मुक्त हो।

बढते हुए मूल्यों की समस्या—

मूल्यो की वतमान वृद्धि का भी हमारे कृषि श्रमिको की दशा पर बहुत बुरा प्रभाव पडा है। मूल्य के अनुपात म मजदूरी न बढ़न क कारण इनकी आर्थिक

कठिनाई और भी भयकर हो गई है। इनमें सगठन का भी बडा अभाव है, अत किसी प्रकार की सुविधा प्राप्त करने म भी इनको बडी कठिनाई होती है। बीमारी, बुढापे तथा अन्य परिस्थितियो से इन्ह बचाने के लिए सामाजिक सुरक्षा की भी कोई व्यवस्था नहीं है। इस वग की समस्या को सुलझाये बिना भारत की ग्रामीण व्यवस्था की नीव सुदृढ नही हो सकती।

कृषि-श्रमिकों की हीनावस्था के कारण

भारतीय कृषि श्रमिको की हीन दशा क प्रमुख कारण निम्नलिखित है —

(१) जन सख्या की वृद्धि एव भूमि का उप विभाजन—हमारे देश म जन-सख्या बडी तीव्रगति म बढ रहा है और इसक परिणाम स्वरूप कृषको की भू सम्पत्ति का उप विभाजन भी बढता जा रहा है। जात छोटी छोटी होन के कारण अनार्थिक होती जा रही है। छोटे आकार के खेतो म कृषि काय भी अलाभकर हो जाता है। फलत कृषक, का निर्वाह केवल अपनी भूमि म ही नही हो पाता और उन्ह विवश होकर कम मजदूरी पर काम करना पडता है।

(२) कुटीर उद्योगो की अवनति—भारत म अग्रेजी राज्य क प्रारम्भ स हमारे कुटीर उद्योगो का विनाश होन लगा। कुटीर तथा कृषि के अन्य सहायक उद्योग-धन्धो के पतन के कारण अनेक कारीगर बेकार हो गये तथा उन्ह विवश होकर केवल कृषि काय करना पडा। अत कृषि श्रमिको की सख्या में वृद्धि हो गई, जिसमें इन्हे कम मजदूरी पर काम करन के लिए विवश होना पडा।

(३) ऋण का भार—जैसा कि हम पीछे सकेत कर चुके हैं, हमारे देश मे कृषि श्रमिको की आमदनी इतनी कम है कि उन्ह अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं की सन्तुष्टि क लिए ऋण लेना पडता है। वे ऋण में जन्मते, ऋण मे पलते एव ऋणग्रस्त ही मर जाते हैं। कम मजदूरी क कारण व समय पर अपने ऋणो का नही चुका पाते एव विवश होकर अन्त में उन्ह अपनी सम्पत्ति बेचनी पडती है। कभी कभी तो ऋण लेन के लिए इन्ह अपनी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को भी गिरवी रखना पडता है जिसमें वे महाजनों के दास की तरह हो जाते है। इस प्रकार कज क बोझ से भी ऋणग्रस्त मजदूरों की आर्थिक बेकारी बढती जा रही है।

(४) साल भर काम का न मिलना—हमारे देश में कृषि श्रमिको को कम मजदूरी पर भी साल भर काम नही मिल पाता। वे वर्ष के अधिकांश भाग में बेकार ही रहते है। कृषि श्रम जाँच समिति की खोज के अनुसार कृषि-श्रमिको को वर्ष में औसत १८९ दिन कृषि काय में तथा २९ दिन गैर कृषि कार्यो म काम मिलता है। देश के कुछ भागो में तो हमारे खेतिहर मजदूर ६–७ महीने तक बेकार ही रहते है। कृषि श्रमिको का बेकारी का यह समय अत्यन्त दुखदायी होता है। इस अवधि में उनके पास पेट पालन का कोई साधन होता ही नहीं, अन्न भोजन, वस्त्र, आदि के लिये उन्ह ऋण लेना पडता है। अतएव निरन्तर काम न मिलने के कारण भी भारतीय कृषि श्रमिको की आर्थिक दशा बडी हीन होती जा रही है।

(५) मजदूरी चुकाने की दोषपूर्ण पद्धति—कृषि श्रमिको का दी जाने वाली मजदूरी की प्रणाली भी अत्यन्त दूषित है। देश के कुछ भागो मे तो उन्हे नकद रुपयो मे मजदूरी दी जाती है कुछ भागो मे अन्न वस्त्र प्राप्ति के रूप मे और कहीं कहीं दोनो के रूप मे। आजकल मजदूरी अधिकांशत नगद रुपयो के रूप में ही दी जाती है। इससे श्रमिको को सचमुच घाटा ही होता है क्योंकि विभिन्न वस्तुओ के मूल्य मे वृद्धि होने के कारण मजदूरी मे उस अनुपात मे वृद्धि नहीं हुई है। अत उनकी वास्तविक मजदूरी बहुत कम है। कम मजदूरी भी उनकी हीन दशा का एक महत्वपूर्ण कारण है।

(६) दोषपूर्ण रयती कानून तथा जमींदारी प्रथा—हमारा वर्तमान रयती कानून (Tenancy Legislation) भी कृषि श्रमिको की सख्या मे वृद्धि के लिये उत्तरदायी है। यह श्रमिक अन्य लोगो की भूमि पर काय करते है और स्वय केवल अपनी मजदूरी पाने के लिये ही अधिकारी होते है। भूमि का स्वामी बहुधा कृषि काय से बहुत दूर रहता है किन्तु फिर भी वह सम्पूर्ण उपज का अधिकारी होता है। इसी प्रकार जमींदारी प्रथा भी कृषि श्रमिको की दयनीय स्थिति के लिये काफी सीमा तक उत्तरदायी है। अनेक जमींदार गावो मे न रहकर नगरो मे रहते है और उनकी अनुपस्थिति मे जमींदारी की व्यवस्था उनके कारिंदो द्वारा की जाती है। ये लोग कृषको का तरह तरह से शोषण करते है। जमीदारी प्रथा के अन्तर्गत अनेक कृषक भूमि से बेदखल कर दिये गये और उन्हे बाध्य होकर कृषि श्रमिको की श्रेणी मे आना पड़ा।

(७) कृषि श्रमिको मे सगठन का अभाव—भारतीय कृषि श्रमिको मे सगठन की भी बहुत बडी कमी है। विभिन्न राजनतिक दलो के प्रयास के फलस्वरूप देश के औद्योगिक श्रमिक दिन प्रतिदिन सगठित होते जा रहे है और शक्तिशाली सगठन के परिणामस्वरूप उनकी आर्थिक एव सामाजिक स्थिति मे भी सतोषजनक सुधार हुआ है। परन्तु कृषि श्रमिको मे अभी तक सगठन का बहुत अभाव है। यही कारण है कि स्वतन्त्र राष्ट्र होते हुए भी इनकी दशा अधिक उन्नत नहीं हो सकी है।

(८) सरकार व समाज की उदासीनता—कृषि श्रमिको के प्रति भारत सरकार एव जन समाज भी प्रारम्भ से ही उदासीन रहे है। ब्रिटिश शासन काल मे इनकी दशा को सुधारने के लिये कभी भी सक्रिय कदम नहीं उठाया गया। हाँ जबसे हमे स्वतन्त्रता मिली है तब से कृषि श्रमिको की समस्याओ को हल करने के लिये प्रयत्न किये जा रहे है परन्तु फिर भी इस दिशा मे अभी कोई महत्वपूर्ण सुधार नहीं हो सका है।

सक्षेप मे हम यह कह सकते है कि जन सख्या की वृद्धि कुटीर उद्योगो का ह्रास ग्रामीण ऋण ग्रस्तता निरन्तर काम न मिलना सगठन का अभाव एव जनता

व सरकार की उदासीनता के कारण भारतीय कृषि श्रमिकों की दशा बड़ी दयनीय है। इनका जीवन बड़ी निराशा में बीतता है। भूखे नंगे पैदा होकर, भूखे नंगे तथा आश्रयहीन मर जाने तक ही उनके जीवन का सारा इतिहास सीमित है। अत आज देश की सबसे बड़ी मांग है कृषि श्रमिकों की दशा को उन्नत करना।

कृषि-श्रमिको की दशा को सुधारने के उपाय

कृषि श्रमिकों की समस्या का वास्तविक समाधान उस समय सभव होगा जबकि हमारी कृषि का नए सिरे से पुनरुत्थान हो और भूमि पर से जन सख्या का भार कम करके अन्य सहायक व्यवसायों का विकास हो। भारत सरकार इस समस्या को सुलझाने के लिए निम्न प्रयत्न कर रही है—

(१) जमींदारी उन्मूलन तथा शोषण का अन्त—स्वतन्त्रता प्राप्त होने के बाद हमारी राष्ट्रीय सरकार का ध्यान भूमि व्यवस्था की ओर गया और विभिन्न राज्यों में जमींदारी उन्मूलन तथा भूमि सुधार कानून पास किये गए जिनका मुख्य उद्देश्य शोषण को समाप्त करके किसानों की आर्थिक दशा में सुधार करना था।

(२) न्यूनतम मजदूरी का निर्धारण—सन् १६४८ में न्यूनतम मजदूरी अधिनियम पास किया गया और राज्य सरकारों को यह भार सौंपा गया कि कृषि श्रमिकों के लिये न्यूनतम मजदूरी की दर निश्चित करें। इस उद्देश्य की पूर्ति के हेतु सन् १६४६ में एक अखिल भारतीय जाच समिति स्थापित की गई जिसमें समस्त देश के ८१३ गाँवों में आकड़े प्राप्त किए गए। इस जाच के फलस्वरूप प्रथम पच वर्षीय योजना के काल में पजाब, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश तथा अन्य राज्यों में न्यूनतम मजदूरी की दर निश्चित कर दी गई है और शेष राज्य इस दिशा में आवश्यक कदम उठाने जा रहे हैं।

(३) कृषि योग्य बजर भूमि का सुधार—केन्द्रीय ट्रैक्टर सस्था द्वारा कृषि योग्य बजर भूमि का सुधार किया जा रहा है और यह भूमिहीन कृषिको को सहकारिता के आधार पर दी जा रही है। पच वर्षीय योजना में १५ लाख एकड भूमि को कृषि योग्य बनाने तथा २० लाख एकड भूमि को सुधारने का अनुमान है। इससे भूमिहीन कृषकों की समस्या बहुत कुछ हल हो जायगी।

(४) व्यक्तिगत जोत की उच्चतम सीमा निर्धारित करना—सरकार एक उच्चतम सीमा निर्धारित करने जा रही है जिससे अधिक भूमि किसी व्यक्ति के पास नहीं रह सकेगी। जिन लोगों के पास अधिक भूमि है वह उनसे प्राप्त करके भूमिहीन किसानों में बाट दी जायगी।

(५) भूदान यज्ञ—आचार्य विनोबा भावे द्वारा प्रतिपादित भूदान यज्ञ में भूमि

दान के रूप में प्राप्त का जाती है और उसे भूमिहीन कृषकों के रूप में सहकारिता के आधार पर वितरित किया जाता है।

(६) सहकारी ग्राम प्रबन्ध—योजना आयोग का मत है कि गाँव की समस्त भूमि को एक साथ एकत्र करके सहकारिता के आधार पर खेती कराई जाय और इसका प्रबन्ध ग्रामवासियों की एक समिति द्वारा हो। ऐसा हो जाने से भूमिहीन कृषकों की समस्या स्वयं हल हो जायेगी और समस्त ग्राम वासियों के सामूहिक परिश्रम के फल में ये लोग भी भागीदार बन जायेंगे। इस प्रकार उत्पादन में वृद्धि होगी और किसी न किसी रूप में सबको रोजगार मिल सकेगा।

(७) राजकीय बोर्डों की स्थापना—योजना कमीशन ने इस बात की सिफारिश की है कि राष्ट्रीय तथा राज्य स्तर पर सरकारी व्यक्तियों के बोर्डों की स्थापना की जाय, जिनका उद्देश्य भूमिहीन किसानों को बसाने के सम्बन्ध में परामर्श देना तथा समय समय पर काय की प्रगति की देख रेख करना भी हो।

(८) कृषि-श्रमिकों का सगठन—जिस प्रकार उद्योगों में काम करने वाले श्रमजीवियों के श्रम सघ स्थापित हो गये हैं, उसी प्रकार कृषि श्रमिकों के भी सगठन स्थापित होने चाहिये। प्रत्येक गाँव में एक कृषि श्रम सघ की स्थापना हो और एक केन्द्रीय सस्था बनाई जाय जो इन श्रम सघों के काय का सचालन करे। इस योजना से कृषि श्रमिकों की अज्ञानता दूर होगी और उनमें चेतना तथा जागृति पैदा होगी। योजना आयोग ने सुझाव दिया है कि सामुदायिक विकास योजना के अन्तर्गत प्रत्येक गाँव में श्रमसहकारी समितियों की स्थापना होनी चाहिये, और प्रत्येक विकास खड में सहकारी यूनियन होनी चाहिये, जो प्रत्येक गाँव की श्रम समितियों की देखभाल कर सके।

(९) ग्रामीण-उद्योगों का विकास—ग्रामीण उद्योगों के विकास से जन सख्या का भूमि पर अत्यधिक भार बहुत कुछ कम हो जायगा। किसानों को रोजगार मिलेगा और कृषि की उत्पादन क्षमता में वृद्धि होगी। सावजनिक विकास कार्यों में इन लोगों को रोजगार देने का प्रयत्न किया जाता है जैसे—कुँये खोदना, सडकें बनाना, नहरें निकालना आदि। उत्तरप्रदेश की ग्राम्य औद्योगीकरण योजना के अन्तर्गत सन् १९५८ के मध्य तक राज्य की लगभग १६% जन सख्या शामिल हो गई है। इस योजना में प्रशिक्षण व उत्पादन केन्द्र स्थापित किये गये हैं। यह योजना अब १३,८८४ गाँवों में चल रही है, जिनकी जन सख्या ५९,८५,००० है।

उपसहार—

भूमिहीन कृषकों की दशा को सुधारने के लिये तथा उनके पूर्ण रोजगार की व्यवस्था करने के लिये उपरोक्त उपायों के अलावा कुछ अन्य सुझाव भी दिये जा सकते

है। सिचाई का सुविधाग्रा तथा कृषि कला म सुधार किया जाय जिसस कृषि-श्राय म वृद्धि हो। दूसर गाव में रोजगार के दफ्तरो की स्थापना की जाय। इसका तात्पय यह है कि जिस प्रकार रोजगार के दफ्तर बेकार लोगो को काम दिलान का काम करते है उसी प्रकार ग्रामीण श्रम एक्सचेंज भूमिहीन कृषको की सहायता कर सकते है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये यातायात के सस्ते साधनो का विकास होना भी जरूरी है।

भूदान आन्दोलन

(Bhoodan Movement)

भूदान आन्दोलन से आशय—

गत कुछ वर्षो से भारतीय कृषि के इतिहास म हम जिस नई घटना को देख रहे है वह है भूदान आन्दोलन जिसके प्रणेता है सत विनोबाभावे। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद जब हैदराबाद क तेलगाना क्षेत्र म आर्थिक विषमता का दूर करन के लिए कुछ साम्यवादियो न हिंसा की शरण ली तो उस खूनी क्रान्ति को अहिसात्मक ढग से परिवर्तित करन क उद्देश्य से सन्त विनोबा न अपनी पदल यात्रा प्रारम्भ कर दी। तेलगाना के नालकुण्डा क पोचमपल्ली गाव म प्राथना के समय विनोबाजी न भूमि हीन हरिजनो के लिए ८० एकड भूमि की माग की थी। एक उदार हृदय जमींदार न उसी समय १०० एकड भूमि अपनी इच्छा से हरिजनो को दे दी। तभी से सत विनोबा न यह निणय किया कि व पदल घूम घूम कर जमीदारो स स्वेच्छापूवक भूमि का कुछ भाग लकर भूमि हीन कृषको म वितरित करेंगे। भू दान यज्ञ के द्वारा सन्त विनोबा भावे यह प्रयत्न कर रहे है कि गावो म मनोवैज्ञानिक जागरण हो अर्थात् उन लोगो स भूमि लकर जिनके पास वह आवश्यकता स अधिक है उन लोगो को द दी जाय, जिनके पास वह बिल्कुल नही है। विनोबाजी के अनुसार भूमि जल एव वायु की भाति प्रकृतिदत्त पदार्थ है जिस पर किसी व्यक्ति विशेष का नही वरन् समाज का अधिकार है अत यह यायसगत प्रतीत नही होता कि किंचित लोग तो भूमि का उपयोग करें और लाखो करोडो लोगो को वे भूमि के लाभ स वचित कर द।

हमार दश म लगभग ५ करोड व्यक्ति भूमि हीन कृषक है जो भूमि के अभाव म अत्यन्त निम्न जीवन व्यतीत कर रहे है। कृषि हमार दश का प्रमुख व्यवसाय है जिसम लगभग ६७% व्यक्ति लगे हुए है अत यदि उद्योग म ही हम भूमि का समान वितरण कर दते है तो स्वत ही आर्थिक विषमता दूर हो सकती है। सत विनोबा भावे न अहिंसा का शस्त्र लकर इस काय के करन का बीडा उठाया है। वे पदल यात्रा करके गॉव गाव एव घर घर घूमत ह तथा अपन पवित्र एव हृदयस्पर्शी प्रवचनो के द्वारा लोगो का हृदय परिवतन करते ह। इनके इस आन्दोलन की सफलता को देख

कर देश के अनेक नेता एवं समाज-सेवक भी इसमें शामिल हो गये हैं। इस आन्दोलन की उपयोगिता इसी बात से स्पष्ट है कि हमारे प्रधान मन्त्री नेहरू एवं भारत सरकार के अन्य सभी मन्त्री गण तथा कांग्रेस के कार्यकर्त्ता गण इसके प्रति सहानुभूति रखते हैं। यही नहीं, अमृतसर कांग्रेस के अधिवेशन में भू दान आन्दोलन की सफलता के लिए एक प्रस्ताव पास किया गया तथा देश के सभी राज्यों में भू दान अधिनियम बनाये गये हैं। द्वितीय पंच वर्षीय योजना में भी इसे पर्याप्त स्थान दिया गया है।

आन्दोलन का क्षेत्र—

आजकल यह आन्दोलन केवल भूमि के दान तक ही सीमित नहीं है, परन्तु 'सम्पत्ति दान' एवं 'ग्राम दान' भी साथ साथ पनप रहे हैं। सम्पत्ति दान का उद्देश्य यह है कि भूमि-हीन कृषकों को जमीन के साथ साथ इतनी सम्पत्ति भी मिले, जिससे कि वे हल, बैल, बीज इत्यादि खरीद सकें। ग्राम दान आन्दोलन इसलिए है, जिससे कि सर्वोदय के सिद्धान्तों पर गाँव की समस्त भूमि का पुन. वितरण करके ग्रामीण कृषि का पुन. सगठन किया जा सके। यह बड़े सतोष का विषय है कि दुबला पतला सन्त विनोबा १३,००० मील की पैदल यात्रा कर चुका है तथा कुल लगभग ५० लाख एकड़ भूमि प्राप्त हो चुकी है। भूमि के साथ समर्थ व्यक्ति सम्पत्ति का भी दान दे रहे हैं तथा अब तक १०० ग्राम सम्पूर्ण रूप से विनोबाजी को प्राप्त हो चुके हैं।

भू-दान यज्ञ की महिमा—

भू दान यज्ञ की प्रशसा करते हुए श्रीमन्नारायण अग्रवाल ने अपने एक लेख में लिखा है कि इस आन्दोलन के परिणाम स्वरूप भूमि हीन कृषकों के पास छोटे-छोटे खेत हो जायेंगे। यद्यपि कुछ लोगों के विचार में यह आलोचना का विषय है, परन्तु श्री अग्रवाल का मत है कि बड़े बड़े खेतों की अपेक्षा छोटे छोटे खेतों पर खेती करना अधिक लाभप्रद है। उन्होंने बताया है कि जापान में प्राय २.५ एकड़ के खेत हैं। आगे उन्होंने लिखा है कि चीन की नई सरकार बड़े बड़े खेतों को समाप्त करके छोटे-छोटे खेत बनाकर भूमि का पुन. वितरण कर रही है। यही नहीं, रूस में भी कृषकों के पास ½ एकड़ से २½ एकड़ तक भूमि है। इन छोटे छोटे खेतों में तन, मन, धन से काय करके हमारे कृषक सुविधा से अपनी पारिवारिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि कर सकते हैं, अत यह कहना कि भू दान आन्दोलन द्वारा खेतों के छोटा होने के कारण कृषि अनार्थिक हो जायेगी, असत्य है। श्री अग्रवालजी ने यह भी लिखा है कि छोटे पैमाने पर की गई कृषि के स्तर को ऊँचा करने के लिए कृषकगण अपनी सहकारी समितियाँ बना सकते हैं तथा सामूहिक रूप से बीज, खाद, सिंचाई व बिक्री आदि का प्रबन्ध कर सकते हैं। श्री नेहरूजी के शब्दों में—"इस आन्दोलन के द्वारा एक ऐसा अनुकूल मनोवैज्ञानिक वातावरण समाज में उत्पन्न होता जा रहा है जिसने हमारी

भावी समस्याओं को बहुत कुछ सरल बना दिया है।" इस आन्दोलन के सम्बन्ध में श्री भगवानदास केला ने लिखा है—"यह पद्धति अहिंसक क्रान्ति का मार्ग प्रशस्त करती है। इसके पीछे विकेन्द्रीयकरण और स्वावलम्बन की प्रेरणा है।" भू-दान यज्ञ के सम्बन्ध में श्री रामेश्वरदयाल ने लिखा है—"भारत की भूमि की यह विशेषता है कि यहाँ जब धर्म चक्र चल जाता है, तब जनता मन्त्रमुग्धसी सर्वस्व अर्पण कर देती है। साथ ही, हमें यह भी समझना चाहिए कि भू-दान आन्दोलन से उत्पन्न जन-शक्ति के प्रभाव से हमारी आर्थिक रचना सर्वोदय की दिशा में प्रगति करेगी। किसी के भी हाथ में अत्यधिक पूँजी का केन्द्रीयकरण न होगा, क्योंकि प्राथमिक आवश्यकताओं के विषय में विकेन्द्रित स्वावलम्बी व्यवस्था होगी। शेष बड़े उद्योग जो केन्द्रित रूप में चल रहे हैं, उनके राष्ट्रीयकरण के लिए, जिस वातावरण की आवश्यकता है, वह भू दान आन्दोलन में छिपा है। इसी से समाज की जाति, वर्ण, स्त्री-पुरुष आदि की असमानतायें दूर होंगी।"

भूदान-यज्ञ की आलोचना

कुछ अर्थशास्त्रियों का कहना है कि इस प्रकार भूमि का वितरण निर्धनता का वितरण है, क्योंकि जो भूमि कृषकों को दी जाती है वह प्रायः निकृष्ट होती है और इतनी अपर्याप्त है कि उस पर कृषि करना असम्भव हो जाता है। कुछ लोगों ने तो यहाँ तक आलोचना की है कि इससे उप-विभाजन एवं अप-खण्डन को प्रेरणा मिलती है एवं इससे कृषि के प्राचीन एवं पिछड़े हुए तरीकों को मान्यता दी जाती है, परन्तु यदि हम गम्भीरता से विचार करें, तो हमें यह ज्ञात होता है कि ये किंचित आक्षेप आन्दोलन की महिमा को किसी प्रकार कम नहीं करते। वास्तव में भूमि का वितरण करते समय यह विचार रखा जाता है कि जोत अनार्थिक न हो। कुछ सीमा तक उप-विभाजन अवश्य होता है, परन्तु वितरण के बाद सहकारी कृषि द्वारा यह दोष भी दूर हो सकता है। सम्पत्ति-दान एवं ग्राम दान से तो कोई समस्या ही पैदा नहीं होती।

भूदान-आन्दोलन की प्रगति—

द्वितीय योजना में यह स्वीकार किया गया है कि ग्राम दान वाले गाँवों के विकास के सम्बन्ध में प्राप्त व्यावहारिक सफलता सहकारी ग्राम विकास के लिए काफी महत्वपूर्ण रहेगी। 'अखिल भारत सर्व सेवा संघ' द्वारा सितम्बर सन् १९५७ में यलवाल (मैसूर राज्य) में आयोजित सम्मेलन में इस बात पर बल दिया गया कि सामुदायिक विकास कार्यक्रम तथा ग्रामदान आन्दोलन के बीच निकटतम सम्बन्ध स्थापित किया जाये। सामुदायिक विकास मन्त्रालय के तत्सम्बन्धी कर्मचारियों ने इस पर विचार किया और मई सन् १९५८ में माउन्ट आबू में हुए विकास आयुक्त सम्मेलन में इस पर और अधिक विचार किये जाने के बाद भूदान और ग्रामदान के बीच

निकटतम सबध स्थापित करन का निराय किया गया। सामुदायिक विकास खन्ड स्थापित करन और सामुदायिक विकास के अन्य नये काय आरम्भ करन के सबन्ध में सबसे पहले ग्रामदान वाले गाँवो म काय आरम्भ किया जायेगा। भूदान क लिये भूमि दान दिये जान तथा उसके वितरण को सुविधाजनक बनाने के उद्देश्य से आध्र प्रदेश, उडीसा, उत्तरप्रदेश पजाब, बम्बइ (सौराष्ट्र) बिहार, मद्रास, मध्यप्रदेश, राजस्थान, दिल्ली तथा हिमाचल प्रदश में आवश्यक कानून बनाये जा चुके ह। बम्बई म *प्रशासन सबन्धी आदेश जारी किये जा चुक है।*

सन १९५५ ५६ मे विभिन्न राज्य सरकारो न इस आन्दोलन का सफलता के हेतु जो वित्तीय सहायता प्रदान की है, उसका ब्यौरा इस प्रकार है —

भूदान को वित्तीय सहायता (हजार रुपयो में)

राज्य अथवा केन्द्र शासित क्षेत्र	१९५५ ५६	१९५६ ५७	१९५७ ५८	१९५८ ५९	१९५९-६०
(१) आन्ध्र प्रदेश	—	—	३ ०	२ ०	०·८
(२) बिहार	३३ ०	१००·०	१८६·०	१५०·०	५० ०
(३) बम्बई					
(अ) बिधव	†	†	२० ०	*	*
(ब) सौराष्ट्र	२५ ३	२५ ३	१६ ६	४५·०	४८·०
(४) केरल					
(५) मध्यप्रदश	—	—	६ ६	२८·०	—
(अ) मध्यप्रदश	५० ०	५०·०	३० ०	१५·०	
(ब) मध्यभारत	१५·०	३०·०	२०·०	१०·०	६० ०
(स) भोपाल	—	—	—	२ ५	
(द) विन्ध्यप्रदेश	—	—	५ ०	३ ७	
(६) मद्रास	—	—	—	१·०	१३ ८
(७) उडीसा	३५ ४	३·६	३३५ ०	२०·०	३३५·२
(८) पजाब	—	—	५ ०	५·०	
(९) राजस्थान	१०·०	२५·०	३०·०	५·०	—
(१०) उत्तर प्रदश	—	—	—	५० ०	५०·०
(११) हिमाचल प्रदश	—	—	५ ०	—	—

भारत सरकार द्वारा सन् १९५६ ५७ म ११ ९२ लाख रुपये और सन् १९५७-५८ म १० लाख रुपय भूदान आन्दोलन की वित्तीय सहायता क लिए स्वीकार किए गए। सन् १९५७ ५८ म बिहार राज्य म एक नई योजना स्वीकार की गई जिसक अतगत भूदान स सबन्धित भूमि रहित श्रमिकों को बसाया गया। यह काय सहकारिता के आधार पर किया गया एवं इस पर कुल २½ लाख रुपया खच हुआ। एक दूसरी योजना, *जिसके अतगत भूमिरहित कृषि परिवारो को वित्तीय सहायता की व्यवस्था की गई, थी*

† पूर्व मध्यप्रदश में सम्मिलित
* कुल बम्बइ राज्य के लिए

कार्यान्वित हुई। इस पर कुल ३० लाख रुपया खर्च किए गए और यह योजना भी बिहार के भूदान से सबन्धित क्षेत्रो मे लागू की गई। सामुदायिक विकास एव सहकारिता मत्रालय (Ministry of Community Development and Co operation) द्वारा सामुदायिक विकास क्षेत्रो में भूदान सबन्धी साहित्य वितरित किया गया। इस कार्य में सन् १९५८ ५९ में १·८२ लाख रुपये खर्च हुए और सन् १९५९ ६० मे २·६५ लाख रुपये खर्च होने का अनुमान है। ग्रामदान एव ग्राम सकल्प गाँवो में ग्रामीण एव लघु उद्योगो को आर्थिक सहायता प्रदान करने के लिए उक्त मन्त्रालय ने सन् १९५९ ६० म क्रमश. १ ६६ व २·१ लाख रुपया देना स्वीकार किया है। ग्राम दान से सम्बन्धित गाँवो मे विकास कार्य के हेतु ऋण देने की योजना अनेक राज्यो ने स्वीकार कर ली है जिनमें से प्रमुख ये हैं.—आन्ध्रप्रदेश, आसाम, बम्बई, केरल और मद्रास।

३० नवम्बर १९५९ तक राज्य वार भूमि एव ग्रामो का दान इस प्रकार था —

भूदान एवं ग्राम-दान

राज्य अथवा क्षेत्र	भूदान का क्षेत्र फल (एकड में)	वितरित भूमि का क्षेत्रफल (एकड में)	ग्रामदान (सख्या)
(१) आन्ध्र प्रदेश	२,४',९५०	९५,२७८	४८१
(२) आसाम	२३,१९६	२२५	१२७
(३) बिहार	२१,२२,९१०	२,४२,२५३	१५३
(४) बम्बई			
(i) गुजरात	४७,४८६	११,५२७	६३
(ii) सौराष्ट्र	३१,२३७	८,१८५	२
(iii) विन्ध्य प्रदेश	८६,७७८	४५ ०००	—
(५) देहली	३९६	१५७	—
(६) हिमाचल प्रदेश	१,५६८	२१	—
(७) केरल	२६,०२१	२,१२६	५४३
(८) मध्य प्रदेश :			
–(i) मध्य भारत	२,७४,६५७	३३,९२४	
(ii) महाकौशल	१,१८,३५३	५५२	७४
(iii) विन्ध्य प्रदश	११,१९५	३,६७०	
(९) मैसूर	१९,९८९	२,६९४	६६
(१०) पजाब	१९,९२९	५,६५३	२
(११) राजस्थान	४,२८,१७३	८१,१०१	२३४
(१२) तामिलनाड (Tamilnad)	७०,८०३	२,३४९	२५४
(१३) उत्तर प्रदेश	४,११,४८४	१,२७,८३५	५९
(१४) उत्तकल (Utkal)	३,९३,४६६	१,१८,३३५	१,९४६
(१५) वैस्ट बगाल (West Bengal)	१२,६८१	३,६७३	२६
योग	४४,०९,६३६	८,४०,९०९	४,५६५

STANDARD QUESTIONS

1 Carefully describe the Economic condition of Agricultural Labourers in India. How would you improve your lot ?

2. Discuss the present condition of land-less Agricultural Labourers in India. How far Bhoodan can solve their problems ?

3 Discuss the various factors responsible for the bad Economic condition of Indian Agricultural Labour. Suggest suitable remedies for its improvement.

4. What do you understand by the term 'Bhoodan Yagya' ? How far has it solved the problem of landless labour in India ?

5 Write a critical essay on 'Bhoodan Movement.'

अध्याय ६

सामुदायिक विकास योजनाएँ

(Community Development Projects)

प्रारम्भिक—

हमारा देश 'गाँवों का देश' है, जिसकी ८२.७% जन सख्या ५½ लाख गावो में निवास करती है। अत्यन्त प्राचीन काल से भारत के समस्त राष्ट्रीय जीवन की इकाई इसके गाँवों में ही केन्द्रित रही। परन्तु यह दुर्भाग्य का विषय है कि आज हमारे गाँवो की दशा अत्यन्त शोचनीय है। वे अपने अतीत का गौरव खो चुके हैं। अंग्रेजो ने इनकी समृद्धि का अपहरण किया। यही कारण है कि हमारे गाँव शोषितो, अशिक्षितो, दरिद्रो आदि के श्मशान मानव-जीवन से समस्त दोष यहाँ विद्यमान है। समाज के शिक्षित एव साहसी व्यक्ति गावों में रहना नही चाहते। यदि हम भारत के आर्थिक स्तर का ऊँचा उठाना चाहते हैं तो सबसे पहले भारतीय गावों की दशा को सुधारना होगा। भारत के आर्थिक विकास के लिए यहाँ के ५½ लाख गाँवो के आर्थिक तथा सामाजिक जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाना अनिवार्य है। हमको गाँवो के सभी अगो का विकास करना चाहिये। स्फुट प्रयत्नो से इनका विकास नहीं हो सकता। हम एक ही साथ गावा का आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक पुनर्निर्माण करना है। इसके लिये कृषि की उन्नति,मनोरजन के साधनो की व्यवस्था, शिक्षा, सफाई तथा चिकित्सा का प्रबन्ध पारम्परिक द्वेष, सघर्ष तथा मुकदमेबाजी का अन्त, बेकारी, ऋणग्रस्तता तथा पशुधन की समस्या का समाधान, यातायात एव सदेशवाहन के साधनो का विकास, ग्रामीणों में नई आशा का सचार आदि अनेक कार्यों की आवश्यकता है।

ब्रिटिश शासन काल में भारतीय गावो के विकास क लिए सरकार द्वारा प्राय. कोई प्रयत्न नही किया गया। ग्रामीण उन्नति के प्रति विदशी शासन की नीति सदैव उपेक्षापूर्ण रही। हाँ, देश-प्रेमी कुछ समाज सुधारको ने इस दिशा में सराहनीय कार्य किये हैं। महात्मा गाधी ने राष्ट्रीय सग्राम के साथ-साथ ग्रामीण विकास को भी अपना परम कर्त्तव्य समझा तथा ग्रामीण जीवन के उत्थान के लिए उनके नेतृत्व

में अखिल भारतीय चरखा संघ तथा अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघ ने ग्रामीण भारत में एक नई जान फूंक दी। इसी प्रकार स्वर्गीय श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर ने इस दिशा म प्रशसनीय काय किया है। सन् १९३५ के वैधानिक सशोधन के पश्चात् भारत सरकार का ध्यान भी इस ओर आकर्षित हुआ और तब से केन्द्रीय सरकार न प्रान्तीय सरकारो को इस काय के लिए एक करोड रुपया अनुदान के रूप म देना स्वीकार किया। सन् १९३७ म देश के विभिन्न प्रान्तो म काग्रसी सरकारो की स्थापना के बाद ग्राम सुधार का काय तीव्र गति से प्रारम्भ हुआ। प्रत्येक प्रा त म ग्राम सुधार के हेतु एक अलग विभाग खोला गया और ग्रामीण जीवन के सर्वांगीण विकास क लिये योजनायें कार्यान्वित का गई। परन्तु इन प्रयत्नो की सबसे बडी दुबलता यह थी कि सरकार के विभिन्न विभागो के प्रतिनिधि अपन विभागीय उद्देश्यो को लकर पृथक पृथक रूप से ग्रामीणा के पास पहुँचने थ जिससे ग्रामीण किंकर्त्तव्य विमूढ हो जाता था और इसके सारे प्रयत्न निष्फल हो जात थे। सच बात तो यह है कि ग्रामीण क्षेत्रों के विकास के लिए जो भी योजना बनाई जाय वह समबद्ध होनी चाहिए एव उसम ग्रामीण जीवन का कोई भी पहलू छूट न जाय। ग्रामीण विकास के लिय गाँवा के लोगो में उत्साह की भी बडी आवश्यकता है। इन उद्देश्यो की पूर्ति के हेतु हमारी जन प्रिय सरकार न सामुदायिक विकास योजना (Community Development Project) बनाई है।

सामुदायिक विकास योजना का अर्थ—

सामुदायिक विकास योजना वास्तव में बहुमुखी आधार पर ग्रामीण विकास की एक विस्तृत योजना है। श्री सैंडरसन के अनुसार, "सामूहिक सगठन उन उद्देश्यों को प्राप्त करने जोकि सामूहिक कल्याण के लिये आवश्यक है तथा उनको प्राप्त करने के सर्वोत्तम उपाय दोनो को ही उपलब्ध करने की एक काय विधि है।'

भारत मे सामुदायिक विकास योजनाओं की आवश्यकता—

सामुदायिक विकास योजनाओं की हमारे देश के आर्थिक पुनर्गठन म विशेष आवश्यकता है। यदि हम ग्रामीण क्षेत्रो की सम्पन्नता चाहते है, तो उनका एकमात्र उपाय सामुदायिक योजनाय ही है। ऐसी योजनाएं जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विस्तृत है, जिसम शिक्षा, स्वास्थ्य चिकित्सा, कृषि, उद्योग, सामाजिक कार्य आदि सभी सम्मिलित है। ग्रामवासियो का जीवन स्तर ऊँचा करने में भी ये योजनाएँ काफी सीमा तक *सहायक होगी। यदि सच्चा सामाजिक सुधार करना है, ग्रामवासियों को आदर्श नागरिक* बनाना है तो गाँव को अच्छा, साफ और रहने योग्य बनाना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त खाद्य समस्या का समुचित हल करने के लिए एव आर्थिक स्वावलम्बता प्राप्त करने के लिय भी सामुदायिक योजनाओं का विशेष महत्त्व है। ऐसी योजनाओं स

कृषकों में यह विश्वास उत्पन्न किया जा सकता है कि वे अपने सामूहिक प्रयत्नों द्वारा अपनी दशा को स्वयं भी सुधार सकते हैं।

सामुदायिक विकास योजनाओं का उद्देश्य—

भारत सरकार द्वारा प्रकाशित 'सामुदायिक योजना की रूपरेखा' शीर्षक पुस्तक में इसका उद्देश्य इस प्रकार बताया गया है—"योजना के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्र के पुरुषों, स्त्रियों एवं बच्चों के जीवित रहने के अधिकार में, एक मार्ग-प्रदर्शक व्यवस्था के रूप में सेवायें प्रदान करना। "सामुदायिक विकास योजना का प्रमुख उद्देश्य क्षेत्र के मानव और भौतिक साधनों का पूर्णतः विकास करना है। श्री विलसन ने, जो भारत में टैकनीकल कोऑपरेशन फॉर इण्डिया के सचालक हैं, बताया है कि सामुदायिक विकास योजना का उद्देश्य सभी दिशाओं में विकास करने के लिये, समाज के लिये भोजन, स्वास्थ्य तथा आवश्यक ज्ञान उत्पन्न करना है।

सामुदायिक विकास योजनाओं के प्रमुख अङ्ग—

(१) इन योजनाओं की सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि ये ग्रामीण जीवन के बहुमुखी विकास के लिये प्रयत्नशील हैं। जैसा कि कृषि के शाही कमीशन ने कहा था—"कृषि सुधार की समस्या भारतीय ग्रामीण जीवन के सुधार की समस्या है और उसे सामूहिक रूप से ही हल करना होगा। ग्रामीण जीवन के सभी पहलू प्रायः परस्पर सम्बन्धित हैं अतः सर्वश्रेष्ठ विधि यही होगी कि ग्रामीण जीवन की समस्याओं पर एक ही समय में और एक-दूसरे के साथ समुचित सहयोग से आक्रमण किया जाय।" सामुदायिक विकास योजना की भी यही कार्यशैली है।

(२) ये योजनाएँ किंचित चुने हुये क्षेत्रों तक ही सीमित हैं। ऐसा करने का यह आशय नहीं है कि शेष भागों की अपेक्षा कर दी जाये, वरन् उसका उद्देश्य यह है कि छोटे-छोटे क्षेत्रों में केन्द्रीभूत प्रयत्नों से अधिक सफलता मिलने की आशा है।

(३) ये योजनाएं एकाकी बहु-उद्देशीय साधन की व्यवस्था करती है, जो सीधे किसानों के घर तक पहुँचाने वाला है। अभी तक सरकार के विभिन्न विभाग ग्रामीणों की विभिन्न समस्याओं को पृथक-पृथक हल करने में लगे थे। इसमें व्यय भी अधिक होता था एवं सफलता भी नहीं मिली, किन्तु सामुदायिक विकास योजना लोगों को स्वयं अपने पैरों पर खड़ा होना सिखलाती है एवं उनकी सारी समस्याओं को एक साथ हल करने का प्रयत्न करती है।

(४) इन सामुदायिक विकास योजनाओं का सार अपनी सहायता करने के लिये जनता की सहायता करना है ।

(५) इनकी सफलता के हेतु पर्याप्त आर्थिक तथा औद्योगिक व्यवस्था भी की गई है । पूर्व प्रयत्नों में इस बात की बड़ी कमी थी ।

सामुदायिक योजनाओं का कार्य-क्षेत्र—

इन योजनाओं के अन्तर्गत विकास के निम्न कार्य किये जायेंगे —

(क) खेती तथा उससे सम्बन्धित अन्य कार्य—

(१) भूमि को उपजाऊ बनाना और सिंचाई के छोटे छोटे कार्य ।

(२) अच्छे बीज खेती का सुव्यवस्थित प्रबन्ध तथा पशु चिकित्सा खेती के सुधरे हुये औजार चीजों का क्रय विक्रय ऋण की सुविधाएं पशु पालन तथा नस्ल सुधारने के केन्द्र भूमि तथा खाद का अनुसंधान ।

(३) मीनागार फलों और तरकारियों की खेती वन लगाने का विकास और भोजन का सुधार ।

(ख) यातायात—

सड़कों का प्रबन्ध यातायात यन्त्र ट्रांसपोर्ट को उन्नत करना जहाँ पशुओं का यातायात तथा अन्य कार्यों के लिए उनका प्रयोग किया जाता है वहां उस कार्य की उन्नति करना ।

(ग) शिक्षा—

निःशुल्क अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा हाईस्कूल मिडिल स्कूल सामाजिक शिक्षा और वाचनालयों का प्रबन्ध करना ।

(घ) स्वास्थ्य—

सफाई और जन स्वास्थ्य की व्यवस्था रोगियों की चिकित्सा बच्चा होने में पहले और बाद की देख भाल तथा दाइयों की व्यवस्था करना ।

(ङ) प्रशिक्षण—

(१) विद्यमान कारीगरों के स्तर को नवीन अध्ययन द्वारा ऊंचा करना ।

(२) खेतिहरों विस्तार कार्य सहायकों निरीक्षकों कारीगरों प्रबन्धकों स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यकर्ताओं और अफसरों के प्रशिक्षण का प्रबन्ध करना ।

(च) व्यवस्था प्रबन्ध—

देहाती प्रदेशों में बेरोजगारी को दूर करने के लिए सहायता देना तथा अधिक से अधिक व्यवसाय दिलाने के लिए —

(१) छोटे तथा मध्यम स्तर के घरेलू उद्योगों का विकास करना ।

(२) आयोजित वितरण व्यापार सहायक और कल्याण सेवाओं द्वारा व्यवसाय दिलाने का प्रबन्ध करना ।

(छ) गृह निर्माण—

देहाती तथा नागरिक क्षेत्रों में मकानों के आधुनिक डिजाइन और नक्शे तयार करना।

(ज) लोक-कल्याण—

(१) स्थानीय कलाकारों की सुलभता और संस्कृति के अनुसार सामूहिक मनोरंजन की व्यवस्था करना, फिल्म द्वारा शिक्षा देना और मनोरंजन करना।

(२) स्थानीय तथा अन्य खेलों और मेलों का प्रबन्ध करना।

(३) सहकारी समितियों और पंचायतों द्वारा जनता के आर्थिक तथा नागरिक आन्दोलन का संगठन करना।

योजना का संगठन—

इस कार्यक्रम का संपूर्ण उत्तरदायित्व सामुदायिक विकास तथा सहकारिता मन्त्रालय पर है। आधारभूत नीति संबन्धी प्रश्न केन्द्रीय समिति के सम्मुख रखे जाते हैं। इस समिति में योजना आयोग के सदस्य, खाद्य तथा कृषि मन्त्री और सामुदायिक विकास तथा सहकारिता मन्त्री होते हैं। प्रधान मन्त्री इस समिति का अध्यक्ष होता है। विशेष समितियों द्वारा तत्संबन्धी मन्त्रालयों के साथ समन्वय स्थापित किया जाता है।

इस कार्य को कार्यान्वित करने का दायित्व मुख्यतः राज्य सरकारों पर है। राज्य सरकार इस कार्यक्रम को राज्यीय विकास समितियों द्वारा कार्यान्वित करती है। इन समितियों में राज्यों के मुख्य मन्त्री, विकास मन्त्री तथा विकास आयुक्त होते हैं। मुख्य मन्त्री इनके अध्यक्ष तथा विकास आयुक्त इनके कार्यालय सचिव होते हैं। कार्यक्रम का कार्यपालक प्रधान विकास आयुक्त होता है। जिलों में इसको कार्यान्वित किये जाने का दायित्व कलक्टरों पर होता है। खण्डों में खण्ड विकास अधिकारी की सहायता के लिए कृषि, पशु पालन, कुटीर उद्योग तथा सहकारिता जैसे विषयों के विशेषज्ञ विस्तारी अधिकारी होते हैं। गावों में ग्राम सेवक बहुधन्धी विस्तार अभिकर्त्ता एजेन्ट के रूप में १० गावों का कार्य संभालता है।

विस्तार संगठन—

खंडों तथा गावों में विस्तार संगठन दो कार्य करता है—(१) ग्रामीणों को व्यावहारिक शोध आदि की जानकारी कराता है और (२) सरकार द्वारा दी जाने वाली वित्तीय तथा अन्य प्रकार की सुविधाएं उपलब्ध कराता है। ग्रामीणों की समस्याओं को यह संगठन विशेष अध्ययन आदि के लिये शोध संस्थाओं तक पहुँचाना है।

सामुदायिक संगठन—

आयोजन और कार्यान्वयन का दायित्व लोक संगठनों पर है। चुनी हुई पंचायतें आवश्यक आंकड़ों का संग्रह करती तथा महत्व के अनुसार क्रम से योजनाएं निर्धारित करती हैं। प्राथमिक सहकारी समितियां तथा गांवों के स्कूल भी इस कार्य क्रम से संबंधित रहते हैं।

खण्ड विकास समिति—

खण्ड विकास समितियों में पंचायतों तथा सहकारी समितियों के प्रतिनिधि कुछ प्रगतिशील कृषक, सामाजिक कार्यकर्त्ता तथा कार्यकर्त्रियां, तत्संबंधी क्षेत्र के संसद सदस्य तथा विधान सभाई सदस्य रहते हैं। ये समितियां अपने अपने क्षेत्रों की विकास योजनाओं के आयोजन, उनके संबंध में पहल करने, उनको स्वीकृति दिलाने तथा उन्हें कार्यान्वित करने के लिये उत्तरदायी होती हैं। कुछ राज्यों में खंड पंचायत समितियां स्थापित करने के लिये कार्यवाही आरम्भ की जा चुकी है।

वित्त व्यवस्था—

कार्यक्रम को कार्यान्वित करने के लिये वित्त की व्यवस्था जनता तथा सरकार मिलकर करती है। प्रत्येक खण्ड क्षेत्र की विकास योजनाओं के लिये जनता से नकद तथा श्रम के रूप में प्राप्त होने वाले स्वेच्छिक योगदान की मात्रा निर्धारित होती है। वित्तीय सहायता सरकार की ओर से मिलने की स्थिति में केन्द्रीय तथा राज्य सरकार आवर्तक मदों पर होने वाले व्ययों को समान रूप से तथा अनावर्तक मदों पर होने वाले व्यय को ३ : १ के अनुपात से वहन करती है। सिंचाई तथा भूमि पुनरुद्धार जैसे कार्यों के लिये केन्द्रीय सरकार ऋणों के रूप में राज्य सरकारों को आवश्यक वित्तीय सहायता देती है। खंडों में नियुक्त कर्मचारियों पर राज्य सरकारों द्वारा किये जाने वाले व्यय में से भी आधा भाग केन्द्रीय सरकार वहन करती है।

मार्च ३१, १९५६ तक जनता ने ७४.५६ करोड़ रु० के मूल्य का योगदान दिया जो १४०.८६ करोड़ रुपये के कुल सरकारी व्यय का लगभग ५०% है। प्रथम योजनाकाल के निर्धारित ९६.५० करोड़ रु० के व्यय की तुलना में इस अवधि में केवल ५२.४० करोड़ रु० ही व्यय किये गये। इसी प्रकार ४४.१० करोड़ रु० की शेष निर्धारित राशि का उपयोग द्वितीय योजनाकाल में किया जायेगा। द्वितीय योजना के लिये लगभग २ अरब रुपये के व्यय की व्यवस्था की गई है।

इस कार्यक्रम के अन्तर्गत उपकरणों के आयात के लिये प्राविधिक सहयोग मण्डल सहाय करार के अनुसार अमेरिका सरकार से १ करोड़ ४२ लाख ८० हजार डालर प्राप्त हुये। योजनाकार्य कर्मचारियों के प्रशिक्षण के लिये फोर्ड प्रतिष्ठान से भी सहायता प्राप्त हुई।

निम्न तालिका में वे विभिन्न मद दी गई हैं जिन पर प्रथम एवं द्वितीय योजना के अन्तर्गत व्यय किया गया —

व्यय तथा जनता का योग-दान

(अप्रेल १, १९५९)

(लाखो रुपयो मे)

विवरण	प्रथम याजना अवधि मे	द्वितीय योजना अवधि म १९५६ ५७	१९५७ ५८	१९५८ ५९	योग	महा योग
(१) **राजकीय व्यय :**						
ब्लॉक हैडक्वार्टर (यातायात, कार्यालय भवन आदि को सम्मिलित करते हुए)	६,६२	५,१३	६,२८	११ ५२	२५,९३	३५,५५
कृषि तथा पशु सम्पदा	३,५२	१,७६	१,६८	१,८२	५,२६	८,७८
सिचाई तथा भूमि प्राप्ति	८ ०८	४,७४	६,६७	९,१२	२०,८३	२८,९१
स्वास्थ्य एव ग्रामीण सफाई	४,५२	२,२९	३,१२	३,०१	८,४२	१२,९४
शिक्षा	२,६५	२,५२	२,५४	२,१६	७,२२	९,८७
सामाजिक शिक्षा	१,६५	९६	१,५३	१,९७	४ ४६	६,४१
सदेशवाहन	६,६४	९५	२,११	१,८०	४,८६	११,५०
ग्रामीण उद्योग	१,७८	१,०५	८४	७८	२,६७	४,४५
गृह	३६	१,३४	१ २९	२,१६	४,७९	५ १५
अ-वर्गित व्यय	७,७६	२,९६	१,३६	५,२२	९,५४	१७ ३०
योग	४६,८८	२३,७०	३०,७२	३९,७६	९३,९८	१,४०,८६
(२) **जनता का योग .**						
योग	२५,१३	१६,३१	१६,३०	१६ ८४	४९,४६	७४ ५९

नोट—२ अक्टूबर १९५९ को राजकीय व्यय एव जनता का योग क्रमश १५३,९६ लाख रुपये तथा ७९ ७८ लाख रुपये था।

विकास खण्डो पर व्यय—

राज्यो की योजना म कोषो का विभाजन खण्ड वार किया गया है। प्रथम स्तरीय खण्डो (Stage I Block) के लिये पांच वर्षों की अवधि के हेतु १२ लाख रुपये का व द्वितीय स्तरीय खण्डो के लिये पांच वर्षो के हेतु ५ लाख रुपये का आयोजन किया गया है। पूव विस्तार अवधि क लिये कृषि विकास के हेतु १८,००० रु० उपलब्ध किये गये है।

प्रशिक्षण—

ग्राम सेवको को दो वष की ट्रेनिंग दी जाती है और इसके लिए ६१ विस्तार प्रशिक्षण केन्द्र (Extension Training Centres) खाले गये है। सितम्बर १६५६ के अन्त तक १५०० ग्राम सेविकाओं को ३५ प्रशिक्षण केन्द्रो में प्रशिक्षित किया गया। सामाजिक शिक्षा के सगठनकर्त्ताओं की प्रशिक्षा के लिये १३, मुख्य सेविकाओं की प्रशिक्षा के लिए २ तथा खड विकास अधिकारियो क लिये ८ प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित है। स्वास्थ्य कर्मचारियों की प्रशिक्षा के लिये ३ प्रशिक्षण केन्द्र है। ६६ केन्द्र नर्सो की ट्रेनिंग के लिये व ६ केन्द्र महिला स्वास्थ्य अधिकारियो के लिये खोले गये है। विभिन्न प्रशिक्षण केन्द्रो के आचार्यों की ट्रेनिंग क लिये देहरादून के पास एक प्रशिक्षक प्रशिक्षण केन्द्र (Trainers' Training Institute) खोला गया है। उच्चाधिकारियों की ट्रेनिंग के लिये मसूरी में एक केन्द्रीय सस्था स्थापित की गई है। अल्पकालीन प्रशिक्षण कैम्प भी चलाये जाते है जहाँ गैर सरकारी व्यक्तियो को ट्रेनिंग दी जाती है। ३१ मार्च १६५६ तक १६ लाख ग्राम सहायक ग्राम सवकों के काय म सहायता देने के लिये प्रशिक्षित किये गये थे।

सामुदायिक विकास योजनाओ का आरम्भ एव विकास—

सामुदायिक विकास कार्यक्रम, जिसका उद्दश्य भारत की विशाल ग्रामीण जन सख्या का व्यक्तिगत तथा सामूहिक कल्याण करना है, का भारत म २ अक्टूबर सन् १६५२ को चुने हुए ५५ योजना काय क्षेत्रो मे प्रारम्भ किया गया था। प्रत्येक योजना काय में ५०० वर्ग मील के क्षेत्रफल मे फैले हुए लगभग २ लाख की जनसख्या के करीब ३०० गांव आते है। यह कायक्रम खण्डो (Blocks) के रूप म कार्यान्वित किया जाता है। प्रत्येक खण्ड में सामान्यत. १५० वर्ग मील में फैले तथा ६०-७० हजार की जन सख्या युक्त १०० गांव आते है। पाँच वर्ष भरपूर विकास का कार्य किए जाने के बाद प्रत्येक खण्ड के दूसरे चरण का कार्य का प्रारम्भ होता है। जैसा कि नीचे दी हुई तालिका मे प्रगट होता है, १ अप्रैल १६५६ तक इस योजना के अन्तगत २,५४८ खण्ड, ३,३६,५१८ गांव तथा १७·३ करोड़ व्यक्ति आ गए—

सामुदायिक विकास योजना की कार्य प्रगति

(१ अप्रेल १६५६ तक)

राज्य व केन्द्र शासित क्षेत्र	सीमा रहित (Delimited) खण्डो की सख्या	खण्डो की सख्या (१-४-५६) प्रथम स्टेज	दूसरी स्टेज	योग	जनसख्या (हजारो मे)	गाँव	क्षेत्रफल (वर्ग मील)
(१) आन्ध्र प्रदेश	४४७	१६१	६१	२२२	१ ५६ ७४	१४ ८७१	५० ८२१
(२) आसाम	१५२	४२	२७	६६	३७ ६६	१२ २८७	२२ ७०६
(३) बिहार	५७५	२५४	३८	२६२	१ ६६ २१	३ ७८४	२३ ३६०
(४) बम्बई	६४६	२११	८४	२६५	१ ६६ ५२	३७ ६१६	६१ ६४४
(५) जम्मू और काश्मीर	५२	४८	४	५२	२३ ५८	५ ८४२	४७,५६२
(६) केरल	१४२	५५	१८	७३	६७ ३०	८६२	५ ६६६
(७) मध्य प्रदेश	४१६	१५१	७२	२२३	१ ३८ ५३	४२ ७२०	८० २०५
(८) मद्रास	२५८	१०६	५८	१६७	१ ४१ ६०	८ ६११	२२ ८८०
(६) मैसूर	२६८	६६	३७	१३६	१ ०८,५३	१४ ५१३	५० ७३७
(१०) उडीसा	३०७	११६	२४	१४३	६२,०६	३१ ४०८	३० ६८४
(११) पजाब	२२८	६०	४३	१३३	६२ ६७	१८ १३३	२५ ७०३
(१२) राजस्थान	२३२	८६	३३	११६	७८ ७५	१८ ३०७	५५ ५१८
(१३) उत्तर प्रदेश	८६६	३१७½	८६½	४०७	२ ६५ ५६	५७ ६६२	५५ ७२३
(१४) वेस्ट बगाल	३४१	१२३	२३	१४६	१,०८ ६३	१६ ६१६	१५,८५२
(१५) केन्द्र प्रशासित क्षेत्र	१५१	५१	२०	७१	२६ २६	१० ८६५	२६ ६११
योग	५,२१७	१ ६१६½	६३१½	२५४८	१७ ३० ६१	३ ३६ ५१८	६ ०६ ०११

नोट—२ अक्टूबर १६५६ तक इस योजना के अन्तर्गत २ ७०८ ब्लाक्स ३ ६० हजार गाँव तथा १७ ६२ करोड व्यक्ति आ गए थे ।

अक्टूबर १९६३ तक सामुदायिक विकास का काम सारे देश में फैल जायगा।

दोष और सुझाव—

ये योजनायें सफल रही हैं, परन्तु इनमें कई दोष हैं:—

(१) पूर्व योजना की कमी। यह दोष अधिकाधिक अनुभव से दूर होगा।

(२) राज्य सरकारों के विभिन्न विभागों में सहयोग अथवा सहकारिता की भावना में कमी। अब यह माना जाने लगा है कि विकास कार्यक्रमों को लागू करने का दायित्व मुख्यतः डिप्टी कमिश्नर पर होना चाहिये। इस व्यवस्था से उन्नत सहयोग एवं कार्यपालन सम्भव हो जायगा।

(३) गैरसरकारी वर्ग का सहयोग पर्याप्त नहीं है। मूल्यांकन सङ्गठन ने बताया है कि राज्यों में योजना सलाहकार समितियों की स्थापना नहीं हुई है। जहाँ हुई है, वहाँ वे मिलकर नियमित रूप से विचार नहीं करतीं। योजना अधिकारियों ने इसे लाभदायक न पाकर बाधक पाया है, अतः अधिकाधिक सहयोग को प्रोत्साहन मिलना चाहिये।

(४) उपकरण के प्राप्त होने में देरी लगती है।

(५) कई योजनाओं में भौतिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अनुचित शीघ्रता की गई है। इससे कई बार भौतिक उद्देश्यों की पूर्ति हो जाती है, परन्तु आन्दोलन जड़ नहीं पकड़ता, अतः प्रभाव अस्थायी होगा। जन प्रोत्साहन तो यथेष्ठ है, किन्तु ऐसी स्थायी संस्थायें बनाने की आवश्यकता है जो इस प्रोत्साहन तथा सामूहिक कार्य क्रम का स्थायी ढङ्ग से चलावें। इसके लिये पंचायतों एवं सहकारी संस्थाओं को प्रोत्साहन देने और ध्यान देने की आवश्यकता है।

(६) विस्तार सेवा कर्मचारियों के चरित्र, प्रशिक्षण एवं चुनाव की ओर अधिक ध्यान देना चाहिये।

राष्ट्रीय विस्तार सेवा

(National Extension Service)

जबकि सामुदायिक विकास योजना ग्रामीण पुनर्सङ्गठन का एक अङ्ग है, राष्ट्रीय विस्तार सेवा उसकी एजेन्सी है। इसके चालू करने की सिफारिश 'अधिक अन्न उपजाओ' जाँच समिति तथा योजना आयोग ने की थी और यह २ अक्टूबर सन्

१९५३ से चालू की गई । उद्देश्य एक सा होने के कारण केन्द्र तथा राज्यों में सामूहिक विकास योजना एवं राष्ट्रीय विस्तार सेवा को मिला दिया गया है, परन्तु राष्ट्रीय विस्तार सेवा स्थायी है, जबकि सामूहिक योजना ३ वर्ष के लिए है । राष्ट्रीय विस्तार सेवा के द्वारा योजना काल के अन्त तक सारे देश के लोगों तक पहुँचने का प्रयत्न किया जावेगा ।

किसान बिना सहायता एवं पथ प्रदर्शन के स्वयं वैज्ञानिक कृषि अपनाने में असमर्थ है । इस योजना के अन्तर्गत अनेक व्यक्तियों को ग्रामीण जनों की सहायतार्थ प्रशिक्षित किया गया है । वे गाँव वालों को अपने घर एवं गाँव साफ, स्वास्थ्यवर्द्धक रखने, सड़कें बनाने व मरम्मत करने, कुटीर उद्योग चलाने एवं सहकारी समितियाँ सगठित करने के लिये कहते हैं । दूसरे शब्दों में, वे ग्रामीणों को अपने ही प्रयत्नों द्वारा अपने प्रसाधनों का अधिकतम उपयोग करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं । प्रत्येक १० गाँव के पीछे एक ऐसा कार्यकर्त्ता रखा गया है । ग्राम स्तर कार्यकर्त्ताओं का यह सगठन 'राष्ट्रीय विस्तार सेवा' के नाम से बोला जाता है ।

सामुदायिक योजना क्षेत्रों में अन्य स्थानों की अपेक्षा प्रशिक्षित कार्यकर्त्ता कहीं अधिक संख्या में होते हैं । उदाहरण के लिये, एक योजना क्षेत्र में प्रति ४ या ५ गाँव पीछे एक ग्राम स्तर कार्यकर्त्ता होता है । वह ग्राम स्तर कार्यकर्त्ता गाँव वालों का मित्र एवं मार्ग दर्शक होता । स्वयं वह ब्लॉक प्रधान कार्यालय के ब्लॉक विकास अधिकारी एवं अन्य तान्त्रिक विशेषज्ञों से मार्ग-दर्शन प्राप्त करता है ।

आरम्भ में यह सेवा सम्पूर्ण देश भर में २४० ब्लॉकों में चालू की गई थी । प्रथम पंच वर्षीय योजना काल में लक्ष्य सामुदायिक विकास कार्य क्रम एवं राष्ट्रीय विस्तार सेवा के अन्तर्गत ग्रामीण जन-संख्या के लगभग $\frac{1}{4}$ भाग तक पहुँचने का था । अक्टूबर सन् १९५५ तक यह कार्य क्रम ६.८६ करोड़ व्यक्तियों को, जो कि १,०६,०५७ गाँवों में (९५१ सामुदायिक योजना एवं राष्ट्रीय विस्तार सेवा ब्लॉकों में विभाजित) निवास करते थे, विस्तृत किया । ये सामुदायिक योजना ब्लॉक १५२ और राष्ट्रीय विस्तार सेवा ब्लॉक १३५ थे । इस प्रकार भारत में प्रत्येक पाँच गाँवों में एक गाँव उपरोक्त किसी एक या दोनों ही सेवाओं का लाभ पा रहा था ।

प्रथम योजना के अन्त तक १,१६० विकास ब्लॉक बनाये गये, जिनमें से प्रत्येक में १०० गाँव और ६०-७० हजार जनसंख्या है । इनमें से लगभग ३०० को गहन सामुदायिक योजनाओं में परिवर्तित कर दिया गया और शेष राष्ट्रीय विस्तार सेवा के अन्तर्गत थे । द्वितीय योजना में इस कार्यक्रम के लिये २०० करोड़ रुपये रखे गये हैं, ताकि यह सम्पूर्ण भारत में विस्तृत हो जाय । कुल ३,८०० अतिरिक्त ब्लॉक विस्तार सेवा के अन्तर्गत बनाये जायँगे, जिनमें से १,१२० को गहन विकास के लिये चुन लिया जायगा ।

STANDARD QUESTIONS

1. Explain the importance of villages in the economic system of India and discuss the attempts made for rural reconstruction in our country.
2. Examine the main aim of the Community Development in our Country. How far they have succeeded in achieving their aims ?
3. What are the main features of Community Development Projects launched in the Country ? Examine their usefulness as an instruments of rural reconstruction
4. Write a full note on the achievements of Community Development Projects in India.
5. Write an Explanatory note on India's National Extension Service

अध्याय १०

भारतीय सूती वस्त्र उद्योग

(Indian Cotton Textile Industry)

प्रारम्भिक—

"भारत का सूती वस्त्र मिल उद्योग देश के अतीत का गौरव, वर्तमान और भविष्य का सदेह, परन्तु सदैव आशा की वस्तु रहा है।" यह भारत का सबसे प्राचीन उद्योग है, किन्तु परिमाण एव गति की दृष्टि से इसके विकास में विशेष रूप से विगत शताब्दी का समय अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है। आजकल कृषि उद्योग के बाद सूती वस्त्र उद्योग ही देश के सर्वाधिक व्यक्तियो को जीविका प्रदान करता है, इसके साथ ही हमारे देश के कुल उत्पादन का ३५ प्रतिशत भाग उत्पन्न करने का भी इस उद्योग को श्रेय है। इस उद्योग मे ८ लाख श्रमजीवी लगे ह एव १२२ करोड रुपये की पूँजी लगी हुई है। सन् १९४७ में जब कि हमारा देश स्वतन्त्र नही हुआ था, यहाँ ३८८ सूती मिलें थी, जिनमें १ करोड तकवे एव २ लाख करघे थे और अब इस उद्योग में ४८२ सूती मिलें हैं, जिनमें १३ करोड ४० लाख तकवे है। १९४८ मे जो उत्पादन १४,४७० लाख पौंड सूत और ४३,१९० लाख गज कपडा था, १९५७ में वही उत्पादन बढकर १७,८०० लाख पौंड सूत और ५३,१७० लाख गज कपडा हो गया। सन् १९५९ में कपडे का उत्पादन ४९,२८० लाख गज और सूत का उत्पादन १७,१८८ लाख पौंड हुआ। आज यह उद्योग ४०० करोड रुपये की उत्पत्ति कर रहा है। सूती वस्त्र के परिमाण को ध्यान में रखते हुए यह विश्व के तीसरे दर्जे का उद्योग है एव सूत उद्योग में इसका विश्व में दूसरा स्थान है। भारतीय मिल उद्योग में सूत एव कपडे के उत्पादन में निरतर प्रगति हो रही है।

सन् १९४७ में भारत के विभाजन के समय भारत की बहुत सी अच्छी कपास उत्पन्न करने वाली भूमि पाकिस्तान को हस्तातरित कर दी गई, इसके बावजूद भी उत्पादन में वृद्धि इस बात का द्योतक है कि भारतीय वस्त्र उद्योग में अपार उत्पादन-क्षमता निहित है। उद्योग के लिए कपास की खपत भी १९४८ की ३५ लाख गाँठो से

बढ़कर १९५८ में ५० लाख गाँठें हो गईं। इनमें ६ लाख कपास की गाँठें विदेशों में निर्यात की गईं तथा शेष ४० लाख गाँठों का देश में ही उत्पादन किया गया।

भारत ने सूती कपड़े के निर्यात में भी प्रगति की है। निर्यात करने वाले देशों में जापान के बाद भारत का स्थान है। सूती वस्त्र का निर्यात भारत पश्चिम में कनाडा से लेकर पूर्व में इण्डोनेशिया तक और उत्तर में फिनलैण्ड से लेकर दक्षिण में आस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैंड तक करता है। आज हमारा देश ७५ से ८० करोड़ गज मिल का कपड़ा विदेशों को निर्यात कर रहा है जब कि कुछ समय पूर्व हमारा देश विदेशों से कपड़े का आयात करता था। इस उद्योग में हुई इस तरक्की के कुछ अन्तर्राष्ट्रीय कारण हैं किन्तु वास्तव में देश में हुई प्रगति को ही इसका श्रेय प्राप्त है। हमारे देश द्वारा सन् १९५४, ५५, ५६, ५७ में क्रमशः ६५१, ८७३, ८०४, ७६५ मिलियन गज कपड़ा निर्यात किया गया और सन् १९६०-६१ में १,००० मिलियन गज कपड़ा निर्यात करने का लक्ष्य है।

उद्योग का अतीत एवं विकास—

हमारे देश में सूती वस्त्र उद्योग बहुत प्राचीन काल से ही उन्नत स्थिति में था। *भारतीय सभ्यता के प्राचीन स्मारक मोहनजोदड़ो के अवशेषों में सूती वस्त्र भी प्राप्त हुए हैं।* प्रसिद्ध वैज्ञानिक जॉन टेलर और ए० एन० गुलाटी के मतानुसार ये प्राप्त सूती वस्त्र रुई से बनाये गये होंगे। ग्रीस के सुप्रसिद्ध इतिहासकार हैरोडोटस आश्चर्य चकित होकर कहते हैं कि भारतवासी एक ऐसी ऊन के वस्त्र पहनते हैं जो भेड़ बकरियों के शरीर से प्राप्त नहीं होती वरन् पेड़ों पर उगाई जाती है। अजन्ता की कला कृतियाँ भी इस उद्योग के गौरवपूर्ण अतीत की कहानी कहती है। भारतीय वस्त्र उद्योग को मुस्लिम काल में बहुत गौरव प्राप्त हुआ। श्री टी० एन० मुकर्जी के मतानुसार मलमल का एक २० गज लम्बा तथा १ गज चौड़ा सुन्दर टुकड़ा अँगूठी के बीच में से सुगमता पूर्वक निकल सकता था। इस कपड़े के निर्माण में लगभग ६-७ माह लगते थे। श्री *टैवर्नियर के शब्दों में—"भारतीय मलमल इतना महीन था कि हाथ से वह अनुभव* नहीं की जा सकती थी।

सूती कपड़ा बनाने की मिल यद्यपि भारत में सन् १८१८ में हुगली नदी के किनारे घूसरी नामक स्थान पर स्थापित की गई थी परन्तु वास्तविक रूप में इस उद्योग की प्रगति का प्रारम्भ सन् १८५४ में उस समय हुआ जब कि एक पारसी उद्योगी श्री कावसजी नाना भाई डावर ने बाम्बे स्पिनिंग एंड वीविंग कम्पनी की स्थापना की और इसके बाद एक अंग्रेज उद्योगपति ने भड़ौंच में दूसरी मिल स्थापित किया। *इन दोनों कारखानों की प्राप्त सफलता के परिणामस्वरूप सन् १८७५ तक समस्त* देश में ४८ वस्त्र मिल स्थापित हुईं। इन कारखानों की प्रगति से प्रभावित होकर

अहमदाबाद शोलापुर मद्रास कानपुर आदि नगरो म सूती वस्त्र मिलों की स्थापना की गई और सन् १६१४ तक २६४ वस्त्र मिल स्थापित की गई।

प्रथम महायुद्ध काल मे उद्योग की स्थिति—

देशी सूती कपडा मिल की उन्नति और खासकर सन् १६१४ के बाद की प्रगति म पणत नही तो मुख्य रूप स महायुद्ध स्वदेशी आन्दोलन एव इस उद्योग के उत्पादन से विदेशी प्रतियोगिता की समाप्ति आदि का योग रहा। किन्तु इस उद्योग के विकास को सर्वाधिक रूप से देश म बढी हुई कपडे की माग ने प्रभावित किया।

प्रथम महायुद्ध काल म इस उद्योग को विशेष प्रोत्साहन मिला क्योकि इस समय विदेशो से कपड का आयात बन्द हो गया और साथ ही भारतीय सैनिको की आवश्यकताओ को पूरा करन के लिए शासन ने देश म ही बहुत स सामान खरीदा। युद्धोपरान्त ६ वष तक यह उद्योग निर्बाध रूप से चलता रहा किंतु इसके बाद जापान एव अमरीका स प्रतिस्पर्धा युद्ध के पश्चात् माग म कमी हडताल एव कोयल क मूल्य म वद्धि होन से उद्योग को भारी क्षति उठाना पडी। इस समय तक सूती वस्त्र मिलो की सख्या बढ कर २७१ हो गई थी। इन परिस्थितियो म जबकि उद्योग का स्थिति अ म त दयनीय थी सरक्षण की माग की गई। सन् १६२७ म स्थापित टरिफ बोर्ड द्वारा आयात मशीनो के कर को सरक्षण दिया गया। सन् १६३० म वस्त्र उद्योग सरक्षण अधिनियम बना इस अधिनियम के अनुसार ब्रिटिश आयात पर १५ प्रतिशत तथा अन्य देशो के आयात पर २० प्रतिशत कर लगाया गया। इस कर म सन् १६३४ म ५ प्रतिशत की वृद्धि की गई। सन् १६३४ म एक अधिनियम और पास हुआ जिसके अनुसार सरक्षण की अवधि १६४ तक बढा दी गई।

द्वितीय महायुद्ध काल मे उद्योग की स्थिति

द्वितीय महायुद्ध के प्रारम्भ म ३८८ सूती वस्त्र मिल थी युद्ध की शङ्ख ध्वनि के साथ ही उद्योग को पुन प्रोत्साहन मिला। युद्ध क कारण विदेशो स आयात बन्द हो गया एव निर्यात को प्रोत्साहन मिला जिसके कारण मूल्यो म वृद्धि हुई। साथ ही ब्रिटिश वस्त्र उद्योग युद्ध की आवश्यकताओ के उत्पादन म लग गया एव जापान मे शत्रुता होन के कारण भारत को उपभोक्ताओ एव मित्र देशो की सनाओ का आवश्यकता पूर्ति का एकाधिकार प्राप्त हो गया। उद्योग की स्थिति म विवश होकर सरकार को कपड पर कन्ट्रोल लगाना पडा इसके लिए सरकार ने चार आदेश जारी किये। प्रथम आदेश Cotton Clotoh and Yarn Control Order 1943 के अनुसार कपड का उत्पादन वितरण एव कीमत पर सरकार द्वारा नियन्त्रण किया

गया। दूसरे आदेश द्वारा कपडे का स्थानीय उत्पादन बढाने का प्रयत्न एव तीसरे आदेश के अनुसार कपडे के यातायात पर नियन्त्रण रखने का प्रयत्न किया गया एव चौथे आदेश का उद्देश्य कपडे के उत्पादन के लिए आवश्यक कच्चे माल तथा अन्य साधनो के मूल्यों पर नियन्त्रण करना था। इस नियन्त्रण के प्रभाव से सन् १९४६ में उद्योग की स्थिति में प्रभाव हुआ, अतः सन् १९४७ में वस्त्र उद्योग पर से नियन्त्रण सम्बन्धी सभी आदेश हटा लिए गए। नियन्त्रण से पूर्व सन् १९४२ मे कपडे का मूल्य सन् १९३९ की अपेक्षा चार गुना बढ गया, साथ ही भारतीय वस्त्रो का निर्यात भी बढता जा रहा था एव देश में भी कपडे की माँग में वृद्धि हो रही थी। किन्तु सन् १९४८ तक उद्योग की स्थिति सामान्य हो गई और इस समय तक कपडा मिलो की सख्या बढकर ४०७ हो गई।

देश के विभाजन का वस्त्र उद्योग पर प्रभाव—

१५ अगस्त सन् १९४७ को देश स्वतन्त्र होने के साथ साथ भारत एव पाकिस्तान, दो हिस्सो में विभाजित हो गया, जिसके परिणामस्वरूप सूती वस्त्र उद्योग को गहरा धक्का लगा। ७५ प्रतिशत श्रेष्ठ कपास उत्पन्न करने वाली भूमि तथा १४ सूती वस्त्र कारखाने पाकिस्तान को हस्तातरित किये गये। इस समय उद्योग के लिए कपास एक समस्या बन गई। भारत एव पाकिस्तान के मध्य अनेक व्यापारिक समझौते होते हुए भी पाकिस्तान के दुर्व्यवहार से भारत को हानि उठानी पडी। अन्त में विवश होकर भारत ने मिश्र, अफ्रीका आदि देशो से समझौते किये एव देश में 'अधिक कपास आन्दोलन' चलाया गया, परिणामस्वरूप वस्त्र उद्योग पुनः प्रगति के मार्ग पर बढने लगा एव उत्पादन में वृद्धि हुई।

प्रथम पचवर्षीय योजना मे सूती वस्त्र-उद्योग—

प्रथम पचवर्षीय योजना के अधीन ४७० करोड गज कपडा और १६४ करोड पौंड सूत पदा करने का लक्ष्य था और उत्पादन के ये लक्ष्य अपनी योजना की अवधि ३१ मार्च १९५५ के समाप्त होने के बहुत पूर्व ही पूरे कर लिये गये थे। प्रथम पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत वस्त्र उद्योग हेतु रखे गये एक निश्चित कार्यक्रम के अनुसार लक्ष्य था कि भारत पर्याप्त मात्रा में वस्त्रो का निर्यात करता रहे और देश के आन्तरिक उपभोग के लिए भी आवश्यकता से अधिक कपडा प्राप्त हो।

कर्वे कानूनगो समिति की सिफारिशो के अनुसार योजना काल में हस्त करघा उद्योग को विशेष प्रोत्साहन दिया गया, जिसके कारण करघो की सख्या में अपेक्षित वृद्धि से कम वृद्धि हुई। समिति की सिफारिशो के अनुसार हस्त चलित एव शक्ति-चलित करघो का उद्योग में अधिक उपयोग होना चाहिए, जिससे बेकार बैठे लोग रोजगार पर लग सकें। सरकार ने इस योजना-काल में कपडे का निर्यात बढाने के लिए एक सूती वस्त्र निर्यात प्रवर्तक परिषद' (Cotton Textile Export Promotion

Council) की नियुक्ति की, जिसका कार्य वस्त्र निर्यात को प्रोत्साहित करने के लिए हर सम्भव उपाय करना था।

द्वितीय पचवर्षीय योजना मे सूती-वस्त्र उद्योग—

द्वितीय आयोजना के अन्त तक ८४० करोड गज के कुल उत्पादन का अनुमान है। इस योजना काल के लिए वस्त्र उद्योग के उत्पादन-लक्ष्य की घोषणा सन् १९५६ में की गई थी, जिसके अनुसार सन् १९६० ६१ तक २४ प्रतिशत उत्पादन में वृद्धि करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। इसमे ३,५०० मिलियन गज कपडे का उत्पादन हस्त-करघा उद्योग के लक्ष्य की सीमा है। इस अनुमान के अनुसार योजना के अन्त तक देश में प्रति व्यक्ति कपडे का औसत उपभोग बढकर १८'५ गज हो जायगा एव सारे देश की आवश्यकता पूर्ति के लिए ७४० करोड गज वस्त्र प्रति वर्ष उत्पादन करने का लक्ष्य है, साथ ही १०० करोड गज कपडे के निर्यात करने का लक्ष्य है। उपरोक्त लक्ष्य की प्राप्ति हेतु १४,६०० नये चलित करघे लगाने की व्यवस्था है। वस्त्र उद्योग मे मिल क्षेत्र का जहां तक सम्बन्ध है, इस योजना के अन्तर्गत यह निर्धारित नही किया गया है कि देश की खपत के लिए उस कितना उत्पादन बढाना है। ऐसा करने का उद्देश्य मिलो द्वारा कपडे का उत्पादन ५०० करोड गज के आस-पास ही स्थिर रखने का है, जिससे कपडे की अतिरिक्त माँग को हस्तकरघो एव विद्युत चलित करघो के उत्पादन से पूरा किया जा सके। इस प्रकार द्वितीय पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत सरकार द्वारा वस्त्र उद्योग के सम्बन्ध मे जो नीति निर्धारित की गई, देश के उद्योगपतियो द्वारा उसका स्वागत किया गया। किन्तु आवश्यकता इस बात की है कि मिल उद्योग एव करघा उद्योग में समन्वय स्थापित किया जावे, जिसमे विशाल उद्योग के साथ साथ ही छोटे पैमाने के करघा उद्योग भी उन्नति कर सकें। इस योजना के अन्तगत इस विषय पर विशेष रूप से ध्यान दिया गया है।

भारत सरकार की नई वस्त्र-नीति—

भारत सरकार द्वारा सूती वस्त्र उद्योग के सम्बन्ध में घोषित अपनी नई नीति के अनुसार मिलो द्वारा ३५'३ करोड गज, विद्युत चलित करघों द्वारा २०'१ करोड गज एव हस्त करघा द्वारा १०० करोड गज अतिरिक्त कपडा बुना जाना चाहिए। सरकार की इस नीति की प्रमुख बातें निम्नलिखित है—

(i) नवीन तकलियो के लाइसेंस केवल उन्ही व्यक्तियो को दिये जाएँ जो उनको शीघ्र चालू करने का प्रबन्ध कर सकें, जिससे बढती हुई माँग को शीघ्रता से पूरा किया जा सके।

(ii) सूती वस्त्र मिलो को १४,६०० नवीन करघो को लगाने की अनुमति इसलिए दी गई है कि उनका समस्त उत्पादन, जो लगभग ३५ करोड गज है प्रति वर्ष निर्यात किया जा सके।

(iii) ३५ ००० विद्युत चलित करघे सहकारी समितियों द्वारा लगाये जाने की व्यवस्था की गई है, और

(iv) इस नीति के अन्तर्गत अबर चरखा को विशेष महत्त्व दिया गया है। उपरान्त नीति के अनुसार कुटीर एवं ग्रामोद्योगो का काफी विकास होगा। अबर चरखा एवं नई सूती मिलो के बीच के राजनीतिक मतभेद भी समाप्त हो जाने की आशा है। अनुमान है कि इससे भारतीय सूती वस्त्र के निर्यात व्यापार पर भी कोई बुरा प्रभाव नही पडेगा।

कुछ आलोचको के मतानुसार यह नीति वर्तमान स्थिति में अनुपयुक्त प्रतीत होती है। राष्ट्रीयता के विकास एवं प्रतियोगिता की तीव्रता से यह मान लेना कि २ वर्ष मे उद्योग ३५ करोड गज वस्त्र निर्यात करने लगेगा, सन्देहास्पद है। इस नीति के अनुसार सरकार ३५ हजार विद्युत चलित करघों की स्थापना का विचार रखती है, अत हस्तकरघा उद्योग पर इसका बुरा प्रभाव पडने की आशंका है। वस्त्र जांच समिति (१९५८) के अनुसार भी द्वितीय योजना मे प्रति व्यक्ति कपडे की खपत १७ ५ गज से अधिक होने की सम्भावना नही है जबकि निर्धारित लक्ष्य १८ ५ गज का है, इसका कारण यह बताया गया है कि देश की आर्थिक प्रगति उस गति से नहीं हो रही, जिसका अनुमान किया गया था।

उद्योग की समस्याएँ और हल —

वर्तमान मे सूती वस्त्र उद्योग की प्रधान समस्याएँ निम्न है .—

(१) यंत्र सामिग्री का आधुनिकीकरण एवं स्वचालन—पिछले दो महायुद्धो मे अत्यधिक उत्पादन के कारण यत्र सामिग्री बहुत घिस गई है। युद्ध काल एव उसके पश्चात् यन्त्रो के मिलने में कठिनाई होने एवं उनका अधिक मूल्य होने के कारण उन यंत्रो को परिवर्तित नहीं किया गया अत इन पुरानी मशीनो में अत्यधिक टूट फूट एव घिसाई हुई है। साथ ही अन्य देशों की अपेक्षा हमारा उत्पादन व्यय भी उपरोक्त कारणो से अधिक हो गया है। वर्तमान समय मे इस उद्योग में लगी हुई सभी मशीनें लगभग ४० वर्ष पुरानी है। अत आज इस उद्योग की महत्त्वपूर्ण समस्या यत्र सामिग्री के पुन संस्थापन एव आधुनिकीकरण की है। 'समस्त उद्योग मे उपयुक्त आधुनिकीकरण के बिना लागत मे कमी अथवा क्वालिटी में कोई बडा सुधार होना सम्भव नहीं है।'

सूती वस्त्र उद्योग मे विश्व ने अत्यधिक प्रगति की है। भारत जो कि सूती वस्त्र का सबसे बडा उत्पादक है, उस प्रगति के साथ चलना होगा, यह विश्व की बढती प्रतियोगिता में अपना स्थान बनाये रखने के लिये भी नितांत आवश्यक है। आज विश्व के अन्य देशो में स्वचालित करघो का उपयोग होता है, हम पुराने यन्त्रो के प्रयोग में इस उद्योग में सूती वस्त्र के उत्पादन में गुण एव संख्या में वृद्धि नही कर

सकने । सूती वस्त्र मिलो मे जिस तेजी के साथ पुरानी यत्र सामिग्री के स्थान पर नवीनतम उपकरणो का प्रतिस्थापन किया जायेगा, वैसे वैसे सूती वस्त्र के उत्पादन मे गुण एव सख्या मे वृद्धि सभव होगी । इस समय आधुनिकीकरण की आवश्यकता केवल उद्योग की दृष्टि से ही महत्वपूर्ण नही है अपितु स्वदेश एव विदेश की निरतर बदलती हुई माँग को योग्यता एव सुविधा से पूरा करने के लिये भी आधुनिकीकरण आज की माँग है । वस्त्र-उद्योग मे प्रयुक्त होने वाली कुछ मशीने जैसे—रिंग फ्रेम, करघे एव धुनाई इजन आदि का निर्माण अब देश मे ही वृहद परिमाण मे होता है, इसके साथ ही फ्रेम, स्वचालित करघे, फ्लाई फ्रेम तथा रीलिंग मशीनों के निर्माण का काय भी प्रारम्भ हो चुका है । फिर भी देश मे निर्मित कपडे की किस्म में सुधार एव माल के समापन के काम मे लायी जाने वाली मशीनो का आयात आवश्यक है ।

इस उद्योग मे भारतीय अपन उत्पादन क्षेत्र (निर्यात) म तभी सफलता प्राप्त कर सकते है, जबकि उत्पादन व्यय म कमी आये और यह तभी सभव है, जबकि उद्योग मे पुराने यत्रों के स्थान पर नवीनतम यत्रो का उपयोग हो तथा स्वचालित करघो का प्रयोग किया जावे ।

(२) **वस्त्र उद्योग के लिये आवश्यक यत्रो का निर्माण**—विज्ञान के क्षेत्र म हमारा देश पिछडा होने के कारण, वस्त्र उद्योग देश का प्राचीनतम उद्योग होते हुए भी, उद्योग के लिये आवश्यक यत्र सामिग्री के लिये विगत १०० वर्षो से विदशी आयात पर निभर था इसके अलावा विदेशो मे, विशेषकर अवमूल्यन के बाद, यत्र सामिग्री के दाम बहुत ऊँचे हो गये है । अत. विदेशी विनिमय की सुरक्षा एव आत्म-निभरता की दृष्टि से यह आवश्यक है कि हमारे देश में आवश्यक यत्रो का निर्माण हो, जिससे हम विदेशो पर निर्भर नही रहे ।

हमारे देश मे विगत कुछ समय मे वस्त्र उद्योग म प्रयुक्त होने वाले कई यत्र एव उनके हिस्स बनाने की दिशा मे काफी प्रगति हुई है । आज हमारे देश मे तकुए, सादा करघे, रिंग फ्रेम इत्यादि का निर्माण पर्याप्त परिमाण में होता है, साथ ही स्वचालित करघों, ड्रा फ्रेम्स, फ्लाई फ्रेम्स आदि यत्रो का निर्माण कार्य भी प्रारम्भ कर दिया गया है । बहुत शीघ्र ही यत्र सामिग्री के अन्य कई भागो का निर्माण देश में ही प्रारम्भ किया जायेगा । वस्त्र उद्योग से सम्बन्धित यत्रों के निर्माण के लिये नियुक्त की गई काम चलाऊ समिति द्वितीय पचवर्षीय योजना काल मे वस्त्र उद्योग मशीनरी के हिस्सो के तैयार करने के सम्बन्ध में शीघ्र उठाये जाने वाले कदमो पर विचार करेगी । इस दिशा में कुछ उद्योग पतियों द्वारा भी कदम उठाया गया है ।

(३) **हस्त-करघा एवं मिलों मे समन्वय**—हस्त-करघा एव मिलें स्वस्थ प्रति योगिता के साथ कदम ब-कदम मिलाकर चल सकें, इसके लिए आवश्यक है कि हस्त करघा उद्योग एव मिल उद्योग में समन्वय स्थापित हो सके । द्वितीय पचवर्षीय योजना

क ग्र तगत सूती वस्त्र का उत्पादन बढाने हतु सरकार न ३५,००० विद्युत चलित करघो के लगान का लक्ष्य निर्धारित किया है इससे निश्चित रूप स उत्पादन म तो वृद्धि होगी, किन्तु सरकार के इस कदम से बेकारी फैलन का भय है। इसलिए ग्राज ग्रावश्यकता इस बात की है कि सरकार हस्त करघा उद्योग का ग्रधिक से ग्रधिक सरंक्षण दे जिससे मिल उद्योग एव हस्त करघा उद्योग म समन्वय स्थापित किया जा सके। हमारी सरकार की नवीन सूती वस्त्र नाति इस दिशा म प्रयत्नशील है।

(४) पर्याप्त कच्चे माल का ग्रभाव—दश के विभाजन स पूव तो यहाँ पर्याप्त मात्रा म कपास उत्पन्न होता था देश की ग्रावश्यकता पूर्ति क साथ साथ विदशो को कपास का निर्यात भी किया जाता था। किन्तु दश के विभाजन क परिणामस्वरूप कपास उत्पादन का एक बहुत बडा क्षेत्र पाकिस्तान म चला गया ग्रौर हमारे देश में कपास एक महत्वपूर्ण समस्या बन गयी। हमें ग्रपनी ग्रावश्यकता पूर्ति के लिए विदेशो से ग्रधिक मूल्य देकर कपास का ग्रायात करना पडा। यह कठिनाई इस उद्योग मे ग्राज भी है, यद्यपि १६४८ म उत्पन्न १८ लाख गाँठ से बढकर १६५८ में उत्पादन ३४ लाख गाठ हो गया।

इस समस्या के समाधान हतु ग्रच्छे किस्म एव लबे रेशे वाली रुई का उत्पादन बढाने हेतु ग्रनुसन्धान होना चाहिए जिससे कच्चे माल के उत्पादन म हम ग्रात्मनिर्भर हो सकें। साथ ही समस्या समाधान हेतु Research Institute for Cotton Industries (वस्त्र उद्योग से सम्बन्धित ग्रन्वेषण सस्था) खोली जावे, जिससे कच्चे माल के उत्पादन एव गुणो में सुधार हो सके।

(५) विदेशी प्रतियोगिता—विदेशो में भारतीय माल को जापान, ब्रिटेन एव ग्रन्य देशो के मध्य तीव्र प्रतियोगिता का सामना करना पडा है। भारत की वस्त्र मिलें, सरकार की वस्त्र उद्योग सम्बन्धी ग्रनिश्चित नीति क कारण ग्रपने निर्यात के वायदे पूरे नही कर सकी हैं इसके साथ ही भारतीय माल की किस्म एव पैकिंग भी निर्यात शर्तों के ग्रनुरूप नहीं हो सका ग्रौर इन सब कारणो म हमारे हाथ से निर्यात बाजार निकलते जा रहे है एव विदेशो म भारतीय उद्योग की प्रतियोगिता शक्ति दुर्बल हो गयी है।

सन् १६५८ की प्रथम एव विशेष रूप से द्वितीय तिमाही म भारतीय वस्त्र निर्यात म तीव्रता स कमी ग्राने के ग्रनेक कारणो म से एक कारण भारतीय उद्योग का चीन जापान एव ग्रन्य दशो के उद्योग स होन वाला प्रतियोगिता थी। भारत को विदेशो म ग्रपनी प्रतियोगिता की स्थिति सुधारने की विशेष ग्रावश्यकता है। बदलती हुई माँग को ध्यान म रखन एव विदेशी बाजारो का गहन ग्रध्ययन ही इस समस्या का उचित हल है। ग्र तर्राष्ट्रीय बाजार ग्राज ग्राहक प्रधान बाजार है, वहाँ ग्राहक की इच्छा का विशेष रूप म ध्यान रखा जाता है, इसके ग्रलावा वस्त्र उद्योग म नवानतम

तरीकों से अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में होने वाली प्रतियोगिता के कारण माल का मूल्य एव उसके गुण ग्राहक को विशेष रूप से प्रभावित करते हैं। जापान की अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में दृढ स्थिति का कारण उसके द्वारा माल के गुण एव मूल्य मे प्रतियोगिता करने की शक्ति है। अत भारतीय उद्योग को विदेशी प्रतियोगिता में अपना स्थान सर्वोच्च बनाने के लिए यह आवश्यक है कि यहा भी इन तरीको को अपनाया जाये। इस समस्या के समाधान हेतु हमे उत्पादन बढाना चाहिये, उच्च कोटि का माल निर्माण करने के लिए प्रयत्न करना चाहिए, उत्पादन यन्त्रो मे सुधार होना चाहिये एव श्रमिको की कार्य क्षमता बढाने के लिए हर सम्भव उपाय करना चाहिए। इसके साथ ही करो मे कमी होना भी अति आवश्यक है।

अन्य सुझाव—

वस्त्र मिल उद्योग की समस्याओ को हल करने के लिए राष्ट्रीय योजना आयोग ने निम्न सुझाव दिये है—(i) मशीनो की उत्पादन शक्ति का पूरा उपयोग किया जाये। (ii) वे मिलें जो घाटे पर कार्य कर रही है, उनका विस्तार करके आर्थिक बनाया जाये। (iii) साढे तीन लाख नये तकुए लगाये जाएँ। (iv) केवल श्रेष्ठ माल का निर्यात करके विदेशी बाजार में अपना स्थान बनाने का प्रयत्न किया जाये एव प्रति वर्ष १०० करोड गज कपडा निर्यात करने की अनुमति दी जाए। (v) जहा तक सम्भव हो, धागे का निर्यात नही किया जाये।

मई सन् १६५८ म भारत सरकार द्वारा नियुक्त सूती-वस्त्र उद्योगजाच समिति क अनुसार उद्योग के सभी क्षेत्रो—मिला, विद्युत करघा एव हस्त-करघा—का अभिनवीकरण किया जाये। यह काय १५ वर्षो म तीन खडो में किया जाना चाहिए। मिल उद्योग के कताई विभाग का भी विस्तार किया जाना चाहिये तथा उसको विद्युत करघा एव हस्त-करघा विभाग से मिला दना चाहिये। सिफारिश के अनुसार यह कार्य ६ वष म पूरा किया जाना चाहिये तथा इस पर ५० करोड से अधिक धन राशि के व्यय की व्यवस्था की जानी चाहिय। समिति ने आवश्यक विदेशी विनिमय मुद्रा प्राप्त करन और मिल-उद्योग मे रोजगारी बनाये रखने के लिए १०,००० लाख गज सूती वस्त्र निर्यात करने का भी सुझाव दिया है। समिति के अनुसार महीन और अधिक महीन वस्त्रो के निर्यात से भारत अधिक आय प्राप्त कर सकता है। हस्तकरघा उद्योग के लिए जो कपडे की उत्पादन मात्रा निश्चित की गई है, सिफारिश के अनुसार सन् १६६० तक उसे कायम रखना चाहिए। हस्तकरघा उद्योग को मलमल एव वायल जैसे कपडो के उत्पादन से रोका जाना चाहिये।

उत्पादकता अध्ययन—

उद्योग की उन्नति में उत्पादकता अध्ययन का भी अत्यधिक महत्व है। इसलिए प्रबन्ध एव श्रम दोनो वर्गो क हित में यह आवश्यक प्रतीत होता है कि वे अपनी अधिक

शक्ति इस प्रकार के अध्ययन में लगाएँ। निश्चयात्मक रूप में ऐसे अध्ययन प्रबन्ध, श्रम एवं सारे उद्योग के लिए ही लाभप्रद होंगे।

यन्त्र सामग्री की देख रेख—

यन्त्र सामग्री की उचित देख रेख की आवश्यकता से इन्कार नही किया जा सकता। इस पर जितना ध्यान दिया जाना चाहिये था, अभी तक नही दिया गया। मिल के उत्पादक यन्त्र को सुचारु एवं सुव्यवस्थित बनाये रखने के लिए यन्त्रों के हिस्सों को बदलना उचित निरीक्षण एवं देखभाल बहुत जरूरी है। इस कार्य में तान्त्रिकों को मिल के प्रबन्धकों के साथ ज्यादा से ज्यादा मदद करना चाहिये।

लागत मूल्य मे कमी एवं किस्म मे सुधार—

वस्त्र उद्योग में लागत मूल्य में कमी एवं किस्म में सुधार लाने के लिए आवश्यक है कि मिल उद्योग के उत्पादन, आधुनिकीकरण एवं पुरातन यन्त्रों के स्थान पर नवीनतम यन्त्रों का प्रतिस्थापन किया जाये। इसमें गति लाने के लिए *एक निश्चित कार्य क्रम की आवश्यकता है। उत्पादन कार्यों में दक्ष व्यक्तियों को* मिल के प्रबन्धकों को इस बात की सलाह दी जानी चाहिये कि उद्योग में किस प्रकार से शीघ्र आधुनिकीकरण एवं पुनः सस्थापन हो सकता है। इस ओर तान्त्रिकों को भी महत्वपूर्ण कार्य करना है क्योंकि वे प्रबन्ध एवं श्रम को मिलाने वाली एक कड़ी है। तृतीय पचवर्षीय योजना में तीव्र औद्योगीकरण पर बल दिया गया है, इसलिए यह *आवश्यक है कि तान्त्रिक प्रशिक्षण की उचित व्यवस्था हो।*

निर्यात करना आवश्यक—

भारतीय वस्त्रों का निर्यात न सिर्फ वर्तमान स्तर पर, अपितु उसके बढ़ाने जाने के लिए निरन्तर प्रयत्न अति आवश्यक है। मिल उद्योग में सामान्य आर्थिक स्थिरता एवं विदेशों से आयात की जाने वाली ४०-५० करोड रुपये की रुई, आवश्यक यन्त्र सामग्री एवं अन्य माल के आयात के भुगतान के लिए यह आवश्यक है।

निर्यात बढ़ाने के लिये हम जिन बाजारों में भारतीय वस्त्र की मांग है, वहां मांग कायम रखने एवं बढ़ाने के लिये तो प्रयत्न करने ही चाहिये, साथ ही साथ उन बाजारों में भी कपड़ा बेचने के प्रयत्न बहुत आवश्यक हैं, जहां पर हमारे यहां के कपड़े का विक्रय *खास बड़े पैमाने पर नहीं होता। मध्य योरोप व पश्चिमी जर्मनी जैसे देशों में जहाँ* हमारे वस्त्रों की अच्छी खासी बिक्री हो सकती है, बशर्ते कि वहाँ के बाजारों के प्रतिमानों के अनुसार हम माल निर्यात कर सकें। बिक्री बढ़ाने के नये मार्ग निकालने *के लिये माल के उत्पादन में विविधता लाना,* समाचित माल तैयार करना एवं अधिक निर्यात करना जरूरी है। हम देश की भौगोलिक स्थिति एवं कुछ अन्य कारणों, जिनसे

देश में पर्याप्त रुई का उत्पादन होता है, ऐसी स्थिति में है कि अन्य देशों को उनकी आवश्यकता का कपड़ा निर्यात कर सकते हैं।

उपसंहार—

आज मिलों में कपड़े का स्टॉक पर्याप्त मात्रा में है। इस दिशा में १६५७–५८ की अपेक्षा काफी परिवर्तन हुए हैं। इस समय ३ लाख बेची एवं बिना बेची हुई गाठों का स्टॉक मिलों में है। निर्यात की दशा में भी गत वर्ष की अपेक्षा काफी सुधार हुआ है।

अन्त में उपरोक्त समस्याओं का समाधान हो जाने के बाद एवं सुझावों को कार्य के रूप में परिणित किये जाने के बाद भारतीय वस्त्र उद्योग का भविष्य निश्चित रूप में और भी उज्ज्वल होगा। हम विदेशी प्रतिस्पर्धा का मुकाबला करने में पूर्णरूपेण समर्थ होंगे एवं अधिक से अधिक स्वदेश एवं विदेश की मांग को पूरा कर सकेंगे और वह दिन दूर नहीं है, जब हम अपने अतीत के गौरव को फिर से प्राप्त कर लेंगे।

भारत की तृतीय पंचवर्षीय योजना की जो रूपरेखा ६ जुलाई, १६६० को प्रकाशित हुई है उसमें कपड़े के उत्पादन का लक्ष्य ८,४५,००,००,००० गज रखा गया है। निर्यात के लिये ८५,००,००,००० गज का लक्ष्य इसमें अलग है। दूसरी योजना के अन्त तक सूती कपड़े का उत्पादन ५ अरब गज तक पहुँच जाने की सम्भावना है। यह आशा है कि तृतीय योजना का लक्ष्य पूर्ण होने पर प्रत्येक व्यक्ति को १७॥ गज कपड़ा प्रति वर्ष उपलब्ध होने लगेगा।

STANDARD QUESTIONS

1. Trace the history of Indian Cotton Textile Industry since independence uptodate.
2. What are the present problems of our Cotton Textile Industry? Give suggestions to solve them.

अध्याय ११

भारतीय जूट-उद्योग

(Indian Jute Industry)

प्रारम्भिक—

जूट उद्योग भारत का गौरव है। संसार के आर्थिक इतिहास में भारत के जूट उद्योग का प्रथम एवं महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। देश में उत्पादित विभिन्न प्रकार के रेशों में जो औद्योगिक कच्चे माल के रूप में प्रयुक्त किये जाते हैं रुई के बाद केवल जूट का स्थान प्राप्त है। यह उद्योग सुव्यवस्थित सुसंगठित एवं केन्द्रित उद्योग है। इस उद्योग में ८३.४ करोड़ रुपये की पूंजी लगी हुई है एवं ३ लाख श्रम जीवियों को कार्य मिला हुआ है। सम्पूर्ण देश में ११३ जूट की मिलें हैं। देश का जूट उद्योग वास्तव में निर्यात उद्योग है। भारत में निर्मित जूट के माल का लगभग ८० प्रतिशत विदेशों को निर्यात किया जाता है। अमरीका भारत के जूट निर्मित माल का सबसे बड़ा ग्राहक है इसलिये यह उद्योग डालर प्राप्ति का एक महत्वपूर्ण साधन है।

भारतीय जूट उद्योग की महत्वपूर्ण दो विशेषताएँ हैं—प्रथम यह उद्योग संगठित उद्योगों में एक आदर्श उद्योग है जिसमें प्रबन्ध निदेशन एवं अन्य व्यवस्था सुनियन्त्रित है। दूसरे यह उद्योग एक स्थान पर व्यावहारिक रूप में केन्द्रित है। केवल ११ मिलों को छोड़कर जो उत्तर प्रदेश बिहार मद्रास एवं मध्य प्रदेश में हैं शेष १०२ मिलें अनुकूल भौगोलिक परिस्थितियां यातायात के साधन पर्याप्त श्रम एवं सस्ती शक्ति के कारण पश्चिमी बंगाल में स्थित हुगली नदी के किनारे कलकत्ता से २५ मील ऊपर एवं २५ मील नीचे की ओर लगभग २ मील चौड़े एवं ६० मील लम्बे क्षेत्र में स्थित हैं।

विदेशी मुद्रा का उपार्जन करने की दृष्टि से जूट के द्वारा निर्मित वस्तुओं का सर्वोच्च स्थान है। देश में निर्मित समस्त जूट के माल का ८० प्रतिशत निर्यात होने के कारण हम इसके द्वारा कुल विदेशी विनिमय के लगभग २० प्रतिशत की प्राप्ति

होती है। यद्यपि माल का अधिकांश उत्पादन देश में ही हो जाता है, किन्तु जो माल निर्यात किया जाता है उससे हमें अमूल्य विदेशी विनिमय प्राप्त होता है, जिससे हम विदेशों से आयात की हुई खाद्य एवं अन्य वस्तुओं के भुगतान कर सकते हैं।

उद्योग का अतीत एवं विकास—

देश में जूट की खेती अत्यंत प्राचीन काल से होती है। पूर्व में यह उद्योग यहाँ पर कुटीर-उद्योग के रूप में सगठित था, किंतु योरोपीय देशों से जूट का व्यापार ईस्ट इंडिया कम्पनी की स्थापना के बाद प्रारम्भ हुआ। पालो से चलने वाले जहाजों के लिए रस्सी की आवश्यकता थी। इसके द्वारा बिछौने, एवं बोरो का भी निर्माण होता था। सन् १७९५ से १८३० तक भारत ने भारी मात्रा में टाट के टुकड़ों का निर्यात किया, किंतु १८३५ में डंडी चलित करघे के आविष्कार से कच्चे जूट की मांग बढ़ गयी। अतः कुटीर-उद्योग नष्ट होने लगा। शनैः-शनैः जूट के उद्योग को प्रोत्साहन मिला, १९वीं शताब्दी के पूर्व ही स्काटलैंड का जूट-उद्योग भारत में स्थापित हुआ। प्रारम्भ में उद्योग की धीमी गति से उद्योग के असफल होने का भय था, किन्तु इसके निरंतर विकास ने इसे भारत का प्रमुख उद्योग बना दिया। विगत १०० वर्षों से जूट उद्योग में यन्त्रों द्वारा निर्माण क्रिया प्रारम्भ हुई है।

हमारे देश में सबसे पहला जूट मिल थी रामपुर में १८५४ में स्थापित हुआ, परन्तु आर्थिक विषम परिस्थितियों के कारण कुछ समय बाद यह मिल बंद हो गई। इसके बाद सन् १८१६ में भारत में एक जूट मिल की और स्थापना हुई और सन् १८८२ तक मिलो की संख्या २२ पहुँच गई, जिनमें २०,००० श्रमजीवी कार्य करते थे। इन मिलो को आर्थिक लाभ एवं सफलता प्राप्त हुई, इन सभी मिलो के स्वामी अंग्रेज थे। मिल-उद्योग की उन्नति से डन्डी के जूट मिलों को काफी हानि हुई। मिल उद्योग की उन्नति के कारण भारत ने अमरीका एवं आस्ट्रेलिया को बड़ी मात्रा में निर्यात प्रारम्भ किया, जिससे जूट-उद्योग को प्रोत्साहन मिला। उपरोक्त २२ जूट कारखानों में से १७ कलकत्ते के ही समीपवर्ती क्षेत्रों में ही थे। विदेशों की बढ़ती हुई मांग से जूट-उद्योग को प्रोत्साहन मिला। परस्पर मिलों में अस्वस्थ्य प्रतिस्पर्धा का वातावरण भी पैदा नहीं हुआ और सगठन भी अच्छा रहा। पटसन का उत्पादन हमारे देश की मांग की अपेक्षा विदेशों की मांग पर अधिक निर्भर करता था, यन्त्रों से दबाया हुआ पटसन विदेशों को निर्यात किया जाने लगा। विदेशों में पटसन से निर्मित माल की मांग में वृद्धि होने से मिलों की संख्या में वृद्धि हुई। इसमें लगे श्रमजीवियों की संख्या लगभग दुगुनी हो गयी, करघो एवं तकुओं की संख्या भी बढ़कर लगभग ढाई गुनी एवं तीन गुनी हो गयी। उत्पादन वृद्धि ने उत्पादन व्यय में कमी की, साथ ही लाभ की मात्रा में वृद्धि हुई। कच्चे माल की समीपता ने उद्योग के विकास में सहयोग दिया।

यद्यपि १८६६ से १९०० के मध्य पड़े दुर्भिक्ष में इस उद्योग को क्षति उठानी पड़ी परन्तु २०वीं शताब्दी के प्रारम्भ में कृषि की उन्नति ने पाट के धन्धे में गति प्रदान की। जूट उद्योग की समस्याओं के हल एवं उनमें समन्वय स्थापित करने के लिए सन् १८८४ में जूट निर्माण संघ की स्थापना प्रतिस्पर्धा माल की खपत के लिये नये बाजारों की खोज के उद्देश्य से की गई। सन् १९०२ में इस उद्योग का नाम जूट मिल संघ रखा गया। सन् १९०५-०६ में विश्वव्यापी मन्दी के कारण पुनः उद्योग में शिथिलता आ गई इसके साथ ही जर्मनी व अमरीका आदि देशों में पटसन की स्थानापन्न वस्तुओं का आविष्कार किया जा रहा था किन्तु इसके कारण उद्योग को विशेष क्षति नहीं उठानी पड़ी। सन् १९१३-१४ तक जूट मिलों की संख्या बढ़ कर ६४ हो चुकी थी।

प्रथम महायुद्ध काल में उद्योग की दशा—

प्रथम महायुद्ध काल में जूट उद्योग अत्यन्त ही लाभप्रद स्थिति में रहा। एक तो फौजी आवश्यकताओं के लिए जूट की मांग बढ़ गई दूसरे यन्त्र सामिग्री का विदेशों से आयात बन्द हो गया जिससे नई मिलों की स्थापना एवं उनमें प्रतिस्पर्धा का डर नहीं रहा तीसरे विदेशों में भी जूट की मांग बढ़ गई। मिल मालिकों में दृढ़ संगठन था इसलिए जूट का उत्पादन पूर्ण क्षमता से किया गया। कच्चे माल का निर्यात एकदम रोक दिया एवं कारखाना अधिनियम भी ढीला कर दिया गया। सन् १९१५-१८ की इस अवधि में मिल मालिकों ने खूब लाभ कमाया। जूट की खपत भी ५५ लाख गांठ प्रति वर्ष हो गयी जबकि युद्ध के पूर्व ४४ लाख गाँठें प्रति वर्ष की खपत थी। इसी समय मजदूरी की दर एवं पाट के मूल्य में भी विशेष वृद्धि हुई।

मन्दी के समय उद्योग—

युद्ध समाप्ति के पश्चात मन्दी का एक झोंका आया। सरकारी मांग लुप्त हो गयी किंतु मजदूरी एवं कच्चे माल के दाम बढ़ गये। युद्धकालीन लाभ से उत्साहित होकर कुछ नई मिलों की स्थापना हुई एवं कुछ पुरानी मिलों ने अपने कार्य क्षेत्र में वृद्धि की। इस प्रकार उत्पादन वृद्धि तो होने लगी किंतु खपत घटने से मन्दी बढ़ती गई। फसल अच्छी होने से कच्चे जूट की पूर्ति बढ़ गई जिससे मूल्य में कमी हुई। इधर कोयले की भी कमी अनुभव हुई। अस्तु जूट मिल संघ के निर्णयानुसार काम के घन्टे घटा दिये गये एवं किसी भी मिल को और अधिक विस्तार न करने का निश्चय किया गया। सन् १९३१ में काम करने के घंटों की संख्या ४० प्रति सप्ताह कर दी गई एवं १५ प्रतिशत अतिरिक्त करघे भी बन्द कर दिये। यह निर्णय सन् १९३८ तक चलता रहा। यद्यपि इस नियंत्रण में कुछ मिलों ने सहयोग नहीं दिया फिर भी संगठन अच्छा होने के कारण स्थिति में धीरे धीरे सुधार हुआ।

द्वितीय महायुद्ध मे उद्योग की दशा—

सन् १९३९ में द्वितीय महायुद्ध के प्रारम्भ के साथ ही देश के जूट-उद्योग को बहुत प्रोत्साहन मिला। विदेशी माँग में वृद्धि होने से, बोरे और अन्य जूट निर्मित सामान के लिए सरकार की माँग में वृद्धि होने से, उत्पादन में बहुत वृद्धि हुई, फलतः कार्य अवधि पर से रोक-थाम हटाकर सभी मिलें अपनी पूरी क्षमता से ६० घन्टे प्रति सप्ताह कार्य करने लगी। १९४० तक तो उद्योग की स्थिति ठीक रही, इसके बाद माँग कम हो जाने से उद्योग में संकट की स्थिति दृष्टिगोचर होने लगी, परिणामस्वरूप कार्यावधि ४५ घन्टे प्रति सप्ताह कर दी गई। उद्योग मे समय-समय पर इस प्रकार से उतार-चढ़ाव होते रहे। सन् १९४२ में जूट मिल संघ द्वारा उद्योग के विवेकीकरण का सुझाव दिया गया, सन् १९४३ मे तो कोयले की कमी के कारण कुछ मिलों को स्वयं ही अपना कार्य बन्द करना पड़ा। यहाँ तक कि जौलाई के अन्तिम सप्ताह में तो सभी मिलें कोयले व विद्युत-शक्ति की कमी, यातायात की कठिनाई एवं १९४३ के बंगाल के अकाल के कारण बन्द रही और इसके पश्चात् जूट-उद्योग में विवेकीकरण की नयी योजना लागू की गई, जो सन् १९४४ की जौलाई से १९४६ के मार्च तक लागू रही। इस प्रकार सन् १९४७ तक जूट-उद्योग की ऐसी ही स्थिति रही।

देश के विभाजन का उद्योग पर प्रभाव —

सन् १९४७ में देश का भारत एवं पाकिस्तान के दो हिस्सों मे विभाजन होने के बाद उद्योग की स्थिति पर गंभीर प्रभाव पड़ा। विभाजन से पूर्व देश मे विश्व का ९७ प्रतिशत जूट उत्पन्न होता था, किंतु विभाजन के परिणामस्वरूप जूट उत्पन्न करने वाली ७५ प्रतिशत भूमि पाकिस्तान को हस्तांतरित कर दी गई। भारत में प्रायः शत प्रतिशत जूट मिलें थीं, किन्तु पाकिस्तान द्वारा पाट के निर्यात पर कर लगा देने के कारण, कच्चे माल के अभाव मे देश की जूट मिलें कई माह तक बन्द रही। पाकिस्तान भारत को १९४८ के एक समझौते के अनुसार ५० लाख गाँठें जूट की देता था, परन्तु यह समझौता १९४९ में टूट गया। सितम्बर १९४९ में भारतीय रुपये का अवमूल्यन हो गया, पाकिस्तान द्वारा ऐसा नहीं किया गया, फलतः पाकिस्तान से कच्चा माल प्राप्त करने के लिए ४४ प्रतिशत मूल्य अधिक देना पड़ा और १९४९-५१ के बीच तो भारत-पाक के मध्य व्यापार भी रुक गया, इस कारण देश की कुछ मिलें बन्द हो गईं एवं कुछ की कार्यावधि में कमी करनी पड़ी। उधर पाकिस्तान जूट के निर्यात का चिटगाँव बन्दरगाह को केन्द्र बनाना चाहता है एवं पाक सरकार ने ब्रिटिश विशेषज्ञों को जूट-उद्योग के विकसित करने के लिए आमन्त्रित किया है एवं वहाँ नई जूट मिलें खोलने के आदेश भी दिये गये है। ऐसी दशा में देश में जूट-उद्योग के विकास एवं कच्चे माल की आत्मनिर्भरता के लिए विशेष रूप से प्रयत्न किये गए है। जूट-उद्योग को सहायता प्रदान करने के लिए सन् १९५२ में निर्यात शुल्क में कमी की जाना शुरू हुई, जो सन्

१९५६ में बिलकुल उठा ली गई। इस प्रकार सन् १९४५ से १९५५ तक के ये १० वर्ष जूट-उद्योग के लिए बहुत नाजुक थे।

विभाजन के फलस्वरूप जूट उद्योग पर आई कठिनाइयों को दूर करने के लिए अब देश को अपने कारखानों की पूर्ति हेतु स्वयं अधिक मात्रा में कच्चा माल उत्पन्न करना होगा। यह हर्ष का विषय है कि बिहार, उड़ीसा, उत्तरप्रदेश एवं ट्रावनकोर कोचीन आदि राज्यों में जूट की खेती को प्रोत्साहित करने के प्रयत्न किये जा रहे हैं। अब एक पृथक विभाग के द्वारा गाँव-गाँव जाकर जूट की खेती का प्रचार किया जाता है, उत्तम बीज बाँटता है एवं खेती सम्बन्धी सभी प्रकार की जानकारी देता है एवं कृषकों को विक्रय सम्बन्धी असुविधाओं से बचाने के लिए स्थान स्थान पर उत्पन्न माल के खरीदने का प्रबन्ध करता है। जूट-उद्योग से सम्बन्धित नवीन अनुसंधान किये जा रहे हैं। इस समय उत्तरप्रदेश ने जूट उत्पादन क्षेत्र से कई सौ मील दूर होते हुए भी जो प्रगति की है, वह सराहनीय है। यहाँ तीन बड़ी जूट की मिलें हैं। कच्चे माल की पर्याप्तता के लिए यहाँ चार क्षेत्र, लखीमपुर, सीतापुर, गोंडा तथा गोरखपुर, "अधिक जूट उत्पादन" के हेतु बनाए हैं। राजकीय प्रयत्नों के परिणामस्वरूप अब उत्तरप्रदेश में जूट का उत्पादन ६,००० मन पाट से बढ़कर ६,००,००० मन पाट उत्पन्न होता है। यद्यपि यहाँ का पाट घटिया किस्म का "जंगली पाट" है, किंतु अच्छे पाट के उत्पादन के लिए प्रयत्न जारी हैं। इसी प्रकार अन्य राज्यों में भी जूट उद्योग के विकास के लिए हर सम्भव प्रयत्न किये जा रहे हैं।

प्रथम एवं द्वितीय पंचवर्षीय योजना में उद्योग की दशा।—

योजना आयोग के द्वारा जूट उद्योग के विकास के लिए भविष्य की कोई योजना नहीं बनायी गई है, अपितु वर्तमान स्थिति को ही दृढ़ एवं ठोस बनाने का निश्चय किया गया है। आयोग द्वारा कच्चे जूट के उत्पादन पर अधिक बल दिया गया है, क्योंकि उसके अनुसार भारतीय जूट मिलों की उत्पादन क्षमता तो अधिक है, किंतु आवश्यकता कच्चे जूट की है। अतः सरकार द्वारा जूट उत्पादन के लिए खेती व फसल के तरीकों में सुधार, सिंचाई की उचित व्यवस्था, उत्तम बीज व खाद के वितरण एवं आर्थिक सहायता प्रदान करके विभिन्न राज्यों में समुचित प्रयत्न किये जा रहे हैं। विभाजन के समय पटसन का वार्षिक उत्पादन १·७ मिलियन गाँठें था, सन् १९५०-५१ में उत्पादन बढ़कर ३·३ मिलियन गाँठें हो गया, १९५५-५६ में ४ मिलियन गाँठों का उत्पादन था और सन् १९६०-६१ तक ५ मिलियन गाँठ उत्पादित करने का लक्ष्य है।

प्रथम पंचवर्षीय योजना में सन् १९५५-५६ के लिये १२ लाख टन जूट के उत्पादन का एवं १० लाख टन जूट निर्मित माल के उत्पादन का लक्ष्य था। १९५६ एवं १९५७ में क्रमशः १०६३ हजार टन एवं १०३० हजार टन जूट का उत्पादन

हुग्रा । द्वितीय पचवर्षीय योजना में जूट के उत्पादन का लक्ष्य १९६०,६१ तक १२ लाख टन स्थिर किया गया है । सन् १९५८ तथा १९५९ में जूट का उत्पादन क्रमशः १०'९२ हजार टन एवं १० ५९ हजार टन हुग्रा ।

उद्योग की वर्तमान समस्यायें एवं हल—

जूट उद्योग की वर्तमान समस्याग्रो के हल द्वारा ही उद्योग की उन्नति सभव है । भारतीय जूट मिल एसोसियेशन के प्रधान श्री के० डी० जालान के मतानुसार उद्योग की निम्न समस्यायें है—बढ़िया किस्म के जूट की कमी, जूट के मूल्य में कमी एवं प्रतियोगिता ग्रादि ।

(१) ग्रच्छी किस्म व सस्तो जूट का ग्रभाव—देश के विभाजन से उद्योग के एकाधिकार की ग्रवस्था छिन्न भिन्न हो गयी है, ग्राज सबसे जटिल समस्या जूट के उत्पादन की है । पाकिस्तान से ग्राने वाली जूट पर देश की मिलें निर्भर नही रह सकती है, क्योंकि न मालूम कब पाकिस्तान भारत को जूट देना बन्द करदे । ग्रावश्यक्ता इस बात की है कि देश मे ही ग्रच्छी किस्म का, सस्ता जूट उत्पन्न किया जावे, इसी उद्योग मे 'ग्रधिक जूट उपजाग्रो ग्रान्दोलन' प्रारभ किया गया, फलतः १५'८ लाख एकड़ भूमि पर ४१ ४ लाख गाँठें जूट १९५५,५६ में उत्पन्न हुग्रा, जबकि १९४६,४७ में केवल ५'४ लाख एकड भूमि पर १३'२ लाख गांठो का उत्पादन हुग्रा था । प्रथम योजना का जूट उत्पादन का लक्ष्य ५३'९ लाख गाँठे यद्यपि पूरा नहीं हो सका, फिर भी हम ग्रब पाकिस्तान पर ग्रधिक निभर नहीं है । इस समय देश को ग्रपनी ग्रावश्यकता का केवल १० प्रतिशत कच्चा जूट पाकिस्तान से ग्रायात करना पडता है । जूट के उत्पादन के लिए किये गये प्रयत्नो के परिणाम स्वरूप १९५८,५९ में जूट की फसल देश में बहुत ग्रच्छी रही, ग्रतः कच्ची जूट तथा जूट निर्मित माल के भाव गिर गये । सरकार द्वारा जूट उत्पादक विभिन्न राज्यों की गति विधियों का एकीकरण करने के लिये एवं केन्द्रीय देव रेख सगठन स्थापित किया गया है । यह सगठन जूट-उत्पादन के कायक्रम को काय रूप देता है, प्रति एकड ग्रधिक उपज करने एवं फसल की किस्म ग्रादि सुधारने का भी ध्यान रखता है । यह सङ्गठन जूट उद्योग से सम्बन्धित सभी महत्वपूर्ण कार्यों को करता है । यदि इस वष किसानो को कच्ची जूट का उचित मूल्य नही मिल पाया तो फिर जूट का उत्पादन देश में कम हो सकता है ।

यद्यपि पाट उत्पादन के नवीन क्षेत्रो में जलवायु सम्बन्धी (जैसे-सूखा, बाढ़, ग्रादि) कठिनाइयाँ भी एक प्रधान समस्या है । फिर भी सरकार कृत्रिम वर्षा, बाढ नियन्त्रण, उन्नत बीज एवं खाद द्वारा जूट की फसल प्रति एकड बढ़ाने के लिये प्रयत्न कर रही है ।

(२) जूट का स्थानापन्न वस्तु का भय—विज्ञान ने आज के युग में बहुत प्रगति की है अतः विकसित देशों में जूट की स्थानापन्न वस्तुओं का निर्माण किया है। अब उपभोक्ताओं का माल बंधन के लिये उत्पादन का नई नई प्रणालियों का विकास हुआ है। जूट के स्थान पर अब एक ऐसा वस्तु का उत्पादन किया जाने लगा है जो कपड़े के समान है एवं जूट के बोरो का जगह उपयोग में आती है। अन्य देशों में जूट के स्थान पर प्रयुक्त होने वाले नये रेशे खोज निकाले गये हैं तथा नवीनतम उपकरणों में पुराने जूट मिल खोले जा रहे हैं ऐसी स्थिति में यदि ये जूट का स्थानापन्न वस्तुएं जूट से सस्ता प्राप्त होने लगी तो इस उद्योग के नष्ट हो जाने का भय है। अतः आज इस बात का आवश्यकता है कि जूट निर्मित माल का उत्पादन बढ़ाया जाये उसके गुणों में सुधार किया जाय तथा विभिन्न एवं नवीन क्षेत्रों में उसके प्रयोग के लिये अनुसंधान किये जाये।

(३) प्रतियोगिता—देश के विभाजन के परिणामस्वरूप जूट उत्पन्न करने वाला ७५ प्रतिशत भूमि पाकिस्तान को सौंप दी गई और वहाँ की सरकार इस उद्योग को हर प्रकार से प्रोत्साहित कर रही है नवीन उपकरणों से सुसज्जित कारखानों का निर्माण किया जा रहा है एवं इस सम्बन्ध में ब्रिटिश विशेषज्ञों द्वारा भी सहायता ली जा रही है। अतः निश्चित है कि वहाँ की मिलें भारत की अपेक्षा अधिक कार्य में लगेंगी तथा वहाँ जूट की भी अधिकता है। भारत को पाकिस्तान से कठिन प्रतियोगिता का सामना करना पड़ेगा और हो सकता है कि हानि भी उठाना पड़े। इसलिए सरकार को अधिक मात्रा में जूट उत्पन्न करने के लिये कारखानों में आधुनिकतम उपकरणों के प्रयोग पर बल एवं अच्छी से अच्छी किस्म की जूट उत्पन्न करने के प्रयत्न करना चाहिये।

(४) आधुनिकीकरण—जूट उद्योग में आधुनिकीकरण के प्रयत्न विगत कई वर्षों से हो रहे हैं। सरकार ने उद्योग में आधुनिकीकरण की आवश्यकता को स्वीकार किया है। इस समय जूट उद्योग को सहायता प्रदान करने में सरकार को ४० करोड़ रुपया की विदेशी मुद्रा की आवश्यकता है एवं ८ हजार श्रमिकों के बेरोजगारी की समस्या का सामना करना पड़ेगा फिर भी ऐसी यन्त्र सामग्री की व्यवस्था की गई है जो या तो उत्पादन के बिलकुल अयोग्य है या जिसके प्रयोग में उत्पादन व्यय अधिक आता है। उद्योग आधुनिकीकरण की ५० प्रतिशत योजना पूरा कर चुका है। सरकार द्वारा उद्योग को राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम द्वारा सहायता प्रदान करने की भी व्यवस्था की है। जूट उद्योग के आधुनिकीकरण के लिये राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम द्वारा ३१ मार्च १९५९ तक ४.५६ करोड़ रु० का ऋण दिया गया जिससे जूट मिलों में आधुनिकीकरण का कार्य पूरा करने में बहुत सहायता मिली है तथा कई मिलों ने तो भविष्य की योजनाएं भी बनाली

है। आशा है कि दो या तीन वर्षों में उद्योग आधुनिकीकरण योजना का ७५ प्रतिशत पूर्ण कर लेगा। यद्यपि उद्योग में सम्पूर्ण रूप से आधुनिकीकरण की आवश्यकता है किन्तु मिलों के कताई बुनाई विभाग में नवीनतम उपकरण होना बहुत आवश्यक है क्योंकि इससे उत्पादन लागत में कमी के साथ काम भी अच्छा होगा।

(५) जलवायु सम्बन्धी कठिनाई—देश के विभाजन के बाद जूट का उत्पादन अधिक मात्रा में करना बहुत आवश्यक है। उद्योग में कच्चे माल में आत्म निर्भर होना है, इसके लिये किये गये प्रयत्नों में जूट उत्पादन के जो नये क्षेत्र बनाये गये हैं वहां जलवायु सम्बन्धी (जैसे–सूखा, बाढ़, अनावृष्टि आदि) कठिनाइयों की एक प्रधान समस्या है। इनके हल के लिये कृत्रिम वर्षा, बाढ़ नियंत्रण, उत्तम बीज एवं खाद का प्रयोग करना बहुत आवश्यक है जिससे प्रति एकड़ फसल अधिक बढ़ाई जा सके।

(६) पाकिस्तान का असंतोषजनक व्यवहार—भारत एवं पाकिस्तान के बीच ठीक सम्बन्ध नहीं होना भी जूट उद्योग की प्रगति में बाधक सिद्ध हुआ है। पाकिस्तान ने दोनों देशों के मध्य हुए समझौता को कभी पूरा नहीं किया। ५ अगस्त १९५२ को नई दिल्ली में हुआ एक समझौता भी पूरा न हो सका जिससे भारतीय व्यापारियों में निराशा छा गई। समझौते के अनुसार भारत को आशा थी कि २½ रु० प्रति मन का विवेचनात्मक लाइसेंस शुल्क (Discriminating License Fee) जोकि पाकिस्तान ने लगा रखा था, हटा दिया जायेगा परन्तु इसके विपरीत पाकिस्तान द्वारा समझौते को तोड़ा गया यही नहीं पाकिस्तान अन्य देशों को निर्यात की जाने वाली जूट की गांठों पर निर्यात कर ३ रु० प्रति मन प्राप्त करता था और भारत से पौने चार रु० प्रति मन निर्यात कर वसूल करता था। अतः पाकिस्तान के इस असंतोषजनक व्यवहार से पाकिस्तानी जूट का निर्यात करने एवं उसके द्वारा वस्तुएं तैयार करने में बहुत अधिक व्यय करना पड़ता है।

(७) मुद्रा सम्बन्धी कठिनाई—२१ सितम्बर १९४९ को भारत ने संयुक्त राज्य अमरिका के डालर के सम्बन्ध में अपने रुपये का अवमूल्यन किया। स्टर्लिंग क्षेत्र के सभी देशों ने अपनी मुद्रा का अवमूल्यन किया परन्तु पाकिस्तान ने इन सबके विपरीत अपनी मुद्रा का अवमूल्यन नहीं करने का निश्चय किया। परिणामस्वरूप पाकिस्तान को १०० रु० के स्थान पर भारत द्वारा १४४ रु० दिये गये। इस प्रकार भारत द्वारा पाकिस्तानी माल निर्यात करने के लिये ४४ प्रतिशत मूल्य अधिक दिया गया। भारत अपने जूट के मिल के दाम नहीं बढ़ा सकता, क्योंकि ऐसा करने से भारतीय निर्यात व्यापार पर प्रभाव पड़ता। विवश होकर पाकिस्तानी जूट का निर्यात भारत की जूट मिल एसोसियेशन द्वारा कम कर दिया गया। इससे उद्योग को बड़ा हानि उठानी पड़ी और आज भी हानि उठानी पड़ रही है।

निःसंदेह इस अभाव को पूरा करने के लिये जूट टैक्नालाजिकल इन्स्टिट्यूट ने

कन्नाय जूट समिति के संकेत पर अलसी के छिलके से रेशा निकालने की कला में विकास किया है इस रेशे को जूट में मिलाते हैं। किन्तु इससे कोई विशेष लाभ नहीं हो सकता क्योंकि स्थानापन्न रेशे का मूल्य अधिक है।

(८) विदेशी प्रतिस्पर्धा का भय— भारतीय जूट उद्योग की एक बहुत बड़ी समस्या विदेशी माल विशेषकर जूट की स्थानापन्न वस्तुओं से प्रतिस्पर्धा की है। विश्व के विभिन्न देशों में जूट की स्थानापन्न वस्तुओं के निर्माण में काफी प्रगति हुई है एवं देश के विभाजन के बाद तो इन देशों को और भी प्रोत्साहन मिला है। भारतीय मिलों की उत्पादन क्षमता भी कम हो गई है अतएव अपेक्षाकृत अन्य देशों का जूट मिल उद्योग काफी उन्नति कर रहा है। पाकिस्तान भी जूट निर्माण के लिये प्रयत्न कर रहा है ऐसी परिस्थितियों में भारत को सावधान होकर कार्य करना चाहिये।

(९) पाट के मूल्य का प्रश्न—जूट के दामों में अन्य स्थानापन्न वस्तुओं के मूल्य की अपेक्षा जो अधिक वृद्धि हुई है उसका एक कारण यह भी है कि पाकिस्तान से आयात किये गये पाट के मूल्य में वृद्धि हो गई है। सन् १९४७ के अन्तिम दिनों में पाकिस्तान की सीमा से बाहर जाने वाले पाट पर वहाँ की सरकार द्वारा जूट पर कर लगा दिया तथा पाकिस्तान से आयात की गई जूट पर मौसम के कारण नमी अधिक होने से १६४ लाख रु० की हानि हुई। दूसरे श्रम ... तरी हुई। भारतीय मजदूरों की कार्य करने की शक्ति कम होने के कारण १ मजदूर का कार्य ४ मजदूर करते हैं। अन्त इन सब कारणों का उद्योग पर कुप्रभाव पड़ा। अन्य देशों में अभिनवीकरण की तीव्र गति की अपेक्षा भारत में यह गति बहुत कम हो गई क्योंकि उपरोक्त कारणों से उद्योग की आय पर बुरा प्रभाव पड़ा था।

अतः यदि हमने उद्योग के यन्त्रीकरण एवं आधुनिकीकरण के लिये उचित प्रयत्न नहीं किये तो लागत मूल्य में कमी नहीं हो सकती। इसके लिये सरकार द्वारा जूट के माल पर निर्यात कर की दर भी कम करना आवश्यक है जो भारतीय रुपये के अवमूल्यन के बाद बहुत बढ़ गई है। साथ ही सरकार निर्यात की कोटा पद्धति को समाप्त करे। हाँ वह अब बना रहे जो विदेशों से हुए द्विपक्षीय समझौते की पूर्ति के लिये आवश्यक हो।

पटसन जांच आयोग—

उपर्युक्त समस्याएं सुलझाने के लिए सरकार द्वारा एक पटसन जाँच आयोग नियुक्त किया जिसने उद्योग के विकास के लिये अनेक सुझाव दिये। सरकार द्वारा आयोग की यह सिफारिश मानली गई कि भविष्य में पटसन का पैदावार बढ़ाया जाए। इसकी किस्म में सुधार करने के लिये प्रयत्न किया जाना अधिक आवश्यक है।

इसके अनुसार सरकार ने नई मिलों को खोलने की अनुमति नहीं देने का भी

निश्चय किया है क्योंकि वर्तमान मिलों में ही पूरा काम नहीं है अतः हमारा लक्ष्य सब प्रथम यह होना चाहिये कि वर्तमान मिलों को पूरा काम मिले। आयोग की यह सिफारिश भी स्वीकार कर ली गई है कि पटसन के विक्रय के बारे में बम्बई के ईस्ट इंडियन काटन एसोसियेशन की तरह पटसन के लिये भी एक व्यापारिक संगठन कायम किया जाये।

सरकार ने जूट उद्योग का ध्यान भी आयोग के सुझावों की ओर आकर्षित किया है। दूसरी अन्य बातों के साथ इन सुझावों में से कलकत्ते में पटसन के गोदामों का उचित उपयोग काम के घण्टे बढ़ाकर सप्ताह में ४८ घण्टे करने विविध प्रकार का माल बनाने तथा उद्योग के विकास एवं उन्नति के लिए अपने ही साधनों पर निर्भर रहने के लिये विशेष रूप से जोर दिया गया है। अपने ही साधनों पर निर्भर रहने के लिये उद्योग को कम लाभांश रखने की सलाह दी गई है।

सुझाव—

अच्छे कारखानों मे उत्पादन किया जाये—जूट उद्योग के युक्तियुक्त संगठन करने के उद्देश्य से यह आवश्यक प्रतीत होता है कि जो कारखाने अक्षम है जिन में पुराने घिसे हुए यंत्र लगे है उनमें होने वाले उत्पादन को ऐसे कारखानों में किया जाये जो आधुनिकतम यंत्र सामिग्री से सुसज्जित हो। इस ओर पिछले दो वर्षों में विशेष रूप से ध्यान दिया गया है। उपरोक्त विधि के अपनाने से न तो कुल उत्पादन में कोई कमी आई है और न ही श्रमिकों की संख्या को कम करना पड़ा है। इस प्रकार का परिवर्तन भारतीय जूट मिल एसोसियेशन द्वारा निर्धारित कार्य के समय सम्बन्धी समझौते के अनुसार कार्य करके किया गया है। इस समझौते के अनुसार एक मिल के लिये निश्चित किये गये साप्ताहिक करघा घण्टे दूसरे मिल को दिये जा सकते है। यह समझौता जूट उत्पादन की विश्वव्यापी माँग पर उत्पादन नियमन कर देता है। उत्पादन का एकाकरण करने एवं अत्यधिक उत्पादन को रोकने में भी यह समझौता विशेष रूप से सहायक सिद्ध हुआ है।

उद्योग में आधुनिकतम यंत्र सामिग्री से पूर्ण कारखानों में उत्पादन करना कितना महत्वपूर्ण है यह इस बात से प्रकट है कि इससे उत्पादन लागत में कमी आजायेगी एवं अन्य देशों से प्रतिस्पर्धा करने में उद्योग समर्थ हो जायेगा।

उत्पादनों की विविधता—विश्व के कुछ देशों में जूट उद्योग का अब विकास होने के कारण व अपना कार्य अपने देश की उत्पत्ति से ही चला लेते है। अब इन देशों में भारत का जूट निर्यात होना बन्द सा होगया है। इसके साथ ही जूट की निर्मित वस्तुओं के स्थान पर अन्य चीजों से निर्मित वस्तुओं का प्रयोग होने लगा है। यद्यपि विश्व में अनाज का पैदावार बढ़ी है फिर भी उस अनुपात में जूट निर्मित बोरियों की माँग नहीं बढ़ी। इन सब बातों का ध्यान में रखते हुए आज जूट उत्पादन

तृतीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत ६५ लाख गांठ कच्चा पटसन पैदा करने का लक्ष्य रखा गया है। इससे हम जूट उद्योग के लिये कच्चे माल की उपलब्धि के बारे में बहुत कुछ निश्चित हो जायेंगे।

इस प्रकार जूट-उद्योग को पूर्णरूपेण प्रोत्साहन दिया जा रहा है और वह दिन दूर नहीं जब भारत को विश्व में जूट-उत्पादन का एकाधिकार पुनः प्राप्त होगा।

STANDARD QUESTION

1. Discuss briefly the effects of partition on India's Jute Mill Industry. How have they been tackled ? What are your suggestions in this connection

अध्याय १४

भारतीय लोह एवं इस्पात उद्योग

(Indian Iron And Steel Industry)

प्रारम्भिक—

आज के युग में किसी देश की औद्योगिक उन्नति की कसौटी यह है कि वहां कितना इस्पात बनता है और उपयोग में आता है। विश्व के आधारभूत उद्योगों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण लोहा एवं इस्पात उद्योग है। वर्तमान युग यन्त्रीकरण का युग है क्योंकि चाहे कोई भी उद्योग हो सभी में यन्त्रों के प्रयोग द्वारा उत्पादन एवं विकास किया जाता है और यन्त्रीकरण लोह एवं इस्पात उद्योग पर ही निर्भर है। किसी देश की आर्थिक प्रगति, विकास एवं राजनैतिक सुरक्षा के लिये भी इस उद्योग द्वारा महत्वपूर्ण कार्य किया जाता है। लोह की महिमा के सम्बन्ध में ऐसा कहते हैं कि — सोना महल की रानी के लिये आवश्यक है, चांदी महल की दासी के लिए और तांबा एक साधारण कारीगर के लिए किन्तु लोहा इन सभी धातुओं का स्वामी है।

इस उद्योग में अमरीका का प्रथम स्थान है जहां १० करोड़ टन से भी अधिक इस्पात बनता है। रूस में ५ करोड़ टन एवं ब्रिटेन तथा जर्मनी में २ करोड़ टन प्रति वर्ष इस्पात का उत्पादन होता है। यह उद्योग भारत में बहुत तीव्र गति से विकास कर रहा है। उद्योग के लिए आवश्यक कच्चा माल देश में पर्याप्त मात्रा में है। योरोपीय देशों में स्वीडन को छोड़कर अन्य कोई ऐसा देश नहीं जहां भारत के समान उच्च कोटि का लोहा एवं कोयला मिलता हो। हमारे देश में लोह के भण्डार साधारण नहीं हैं केवल सिंहभूमि भाग में ही २ हजार करोड़ टन से भी अधिक लोहा है जिसका प्रयोग यदि वर्तमान गति से हो तो भी वह २००० वर्ष तक चल सकता है। भारत ने द्वितीय योजना के अन्त तक ६० लाख टन प्रति वर्ष इस्पात तैयार करने का लक्ष्य निर्धारित किया है।

उद्योग का अतीत एवं विकास—

लोह एवं इस्पात उद्योग भारत का अति प्राचीन उद्योग है। आज से ५७

हजार वष पूव भी भारतीय लोह का उपयोग जानते थ । भारतीय इस्पात का माल विदेशो म भी जाता था एव अपनी सुदरता के लिये लोकप्रिय था । दिल्ली का लौह स्तम्भ हमारे देश के प्राचीन इजीनियरो की कला का जीता जागता उदाहरण है । *इस उद्योग की प्राचीनता पर प्रकाश डालते हुए प्रोफेसर विल्सन ने लिखा है कि—* ' लोह की ढलाई तो इगलैड म थोडे ही वर्षो स प्रारम्भ की गई है परन्तु हिन्दू लोग लोहा गलाने ढालने तथा इस्पात बनाने की कला का ज्ञान अत्यन्त प्राचीन काल से रखते है ।

आधुनिक समय म इस उद्योग का इतिहास विगत १५० वर्षों का है । इसके पूर्व कुछ योरोपियो ने इस उद्योग को चलाने का प्रयत्न किया पर व सफल न हो सके । *इन प्रयत्नो म सन् १७७७ म झरिया की कोयले की खान के निकट एक लोहे* एव इस्पात का कारखाना खोला गया जो दो वष के बाद बन्द हो गया । इसके बाद सन् १८ ७ म बाराकपुर आयरन स्टील क० की स्थापना की गई ६ वर्षों तक यह कारखाना काय करता रहा फिर इसे ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने खरीद लिया । दो वष के बाद इस कारखाने का नाम बदलकर दी बगाल आयरन एण्ड स्टील कम्पनी रखा एव कारखाने का आधुनिकीकरण भी किया गया । यह कारखाना इस्पात उत्पादन म ना असफल रहा किन्तु इसम आधुनिक पद्धति स पिग आयरन का उत्पादन किया जाने लगा ।

आधुनिक काल म लौह एव इस्पात उद्योग की नीव डालने का श्रेय श्री जमशेद जी नौसरवान जी टाटा को है जिन्होने सन् १९०४ म जमनी एव अमेरिकन विशेषज्ञो द्वारा देश के मध्य प्रान्त की जाच करवाई । सरकारी विभाग से स्वीकृति लेकर विदेशो म भ्रमण करके एव अन्य अनेकानेक कठिनाइयो को पार करने के पश्चात कारखाना प्रारम्भ करने का निश्चय किया गया किन्तु यह कारखाना जिस स्थान पर स्थापित करना था वह कोयले एव लोह की खानो म समान दूरी पर था अत अस्वीकार कर दिया गया । तत्पश्चात श्री पी० एन० बसु की सहायता म निरीक्षण आदि करा कर मयूरभज (उडीसा) म सन् १९११ म जिस स्थान पर कारखाने का प्रारम्भ किया गया वही स्थान आज जमशेदपुर के नाम से प्रसिद्ध है । इस कारखाने का नाम दी टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी (T sco) रखा गया इस कारखाने म काय प्रारम्भ होने के बाद सन् १९१२ म इस्पात तयार होने लगा । टिस्को (T sco) आज भारत ही नही वरन् दुनिया का गौरव है

प्रथम महायुद्ध से उद्योग की स्थिति—

सन् १९१४ म योरोपीय महासमर का प्रारम्भ लौह इस्पात उद्योग के लिए स्वण अवसर लाने वाला सिद्ध हुआ । इस समय देश की माँग म वृद्धि हुई एव विदेशो से लोह इस्पात का आयात कम हो गया । इस समय टाटा द्वारा अत्यधिक लाभ कमाये

पूर्ति मन्त्रालय द्वारा बताया गया कि वार्षिक उत्पादन २६ लाख टन होना चाहिए, मूल्य पर नियन्त्रण रखा जाना चाहिये एवं उद्योग को आर्थिक सहायता प्रदान करना चाहिये। सरकार ने उद्योग को निम्न रूप से उत्पादन बढ़ाने के लिए सहायता दी—टाटा को १० करोड़ रु०, बंगाल स्टील कार्पोरेशन को ३ करोड़ व इण्डियन आयरन एण्ड स्टील कम्पनी को १ करोड़ रु० ऋण के रूप में दिया गया।

युद्धोत्तर काल में उद्योग का उत्पादन गिर गया एवम् निर्यात कम हो गया। इसके अनेक कारण है, जैसे—कोयला प्राप्त करने में कठिनाई, मजदूरी बढ़वाने के लिए श्रमिकों द्वारा हड़तालें आदि और यातायात की असुविधा, इत्यादि। फलत देश को विदेशी विनिमय की हानि उठानी पड़ी। देश के अन्दर प्रान्तीय कोटे कम कर दिये गये, व विकास की योजनाएँ खटाई में पड़ गयीं।

प्रथम पंचवर्षीय योजना में उद्योग—

देश के विभाजन के बाद हमारे देश में बनी राष्ट्रीय सरकार ने लोहे एवम् इस्पात उद्योग की उन्नति एवम् विकास का भार अपने ऊपर ले लिया। प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत सरकार ने उद्योग को विशेष सहायता देने का यत्न किया। योजनानुसार सरकार ने सन् १९५६ तक सार्वजनिक क्षेत्र (Public Sector) में ३० करोड़ रु० खर्च करने एवम् निजी उद्योगपतियों को उनकी विकास योजनायें कार्यान्वित करने के लिए ४९ करोड़ रु० देने का निश्चय किया। सरकार को उद्योग की उत्पत्ति निम्न ढंग से बढ़ने की आशा थी—

	सन् १९५०-५१ में उत्पत्ति	सन् १९५५-५६ में उत्पत्ति
गला हुआ लोहा—	१७·८ लाख टन	१९.५ लाख टन
तैयार स्पात—	१०·३५ ,, ,,	१२·८ ,,

प्रथम पंचवर्षीय योजना में सरकार द्वारा, ५ लाख टन इस्पात पिंड तैयार करने की क्षमता वाला एक कारखाना स्थापित करने का कार्यक्रम रखा गया था, किन्तु उस समय विदेशी सहयोग प्राप्त करना कठिन था। अन्त सन् १९५३ में दो जर्मनी की क्रप्प व डेमग फर्मों के सम्मिलित सहयोग से एक कारखाने के निर्माण का समझौता किया गया। यह कारखाना 'हिन्दुस्तान स्टील लि०' के नाम से प्रारम्भ हुआ तथा इस पर १० करोड़ रु० व्यय किया गया। सरकार द्वारा, देश में लोहे एवम् इस्पात का उत्पादन बढ़ाने के लिए १ जनवरी सन् १९५३ को स्टील कार्पोरेशन ऑफ बंगाल तथा इंडियन आयरन एण्ड स्टील कम्पनी का एकीकरण (II SCO and SCOB Marger) किया गया।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में उद्योग—

भारत की विकास योजनाओं के साथ ही साथ देश में लोहे एवम् इस्पात की माँग में भी वृद्धि हुई, अतः भारत सरकार ने उद्योग के महत्व को समझकर इस द्वितीय

पंच वर्षीय योजना में महत्वपूर्ण स्थान दिया। इस उद्योग पर ४३१ करोड़ रुपया व्यय करने का निश्चय किया गया। इस योजना के अन्तर्गत उद्योगों की उत्पादन क्षमता बढ़ाने तथा नये कारखाने खोलने का भी निश्चय किया गया। इस योजना के अन्तर्गत स्वयं सरकार ने तीन नये कारखाने खोले हैं—प्रथम रूरकेला (उड़ीसा) द्वितीय भिलाई (मध्य प्रदेश) एवम् तृतीय दुर्गापुर (पश्चिमी बंगाल)। भिलाई का कारखाना रूस सरकार की सहायता से स्थापित किया गया है। रूरकेला इस्पात कारखाने की प्रथम धमन भट्टी का कार्य ३ फरवरी १९५९ को एवम् भिलाई इस्पात कारखाने की धमन भट्टी का कार्य दिनांक ४ फरवरी १९५९ को प्रारम्भ हो गया। दुर्गापुर इस्पात कारखाने को धातु कर्म सम्बन्धी बढ़िया किस्म का कोयला उपलब्ध कराने के लिये पश्चिमी बंगाल द्वारा स्थापित कोयला भट्टी संयंत्र का मार्च १९५९ में उद्घाटन हुआ।

योजना के अन्तर्गत सरकार द्वारा स्थापित नवीन कारखाने

(१) रूरकेला (उड़ीसा)—

कलकत्ते से २७० मील दूर ब्राह्मणी और कोयल नदियों के संगम पर स्थित रूरकेला नगर, जहाँ से कलकत्ता बम्बई रेलवे लाइन जाती है, एक छोटा सा गाँव है। यहाँ पर सरकार द्वारा इस्पात का कारखाना बनाया जा रहा है जिसमें १० लाख टन इस्पात बनाया जायगा किन्तु इसके पश्चात् में थोड़ा सा विस्तार करके इसका उत्पादन १८ लाख टन तक किया जा सकेगा। योजनानुसार इसकी उत्पादन क्षमता २० लाख टन रखी गई है।

३ फरवरी १९५९ को रूरकेला इस्पात कारखाने की प्रथम धमन भट्टी का उद्घाटन करते हुए राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद ने कहा था कि "रूरकेला भिलाई एवम् अन्य योजनाएं हमारी महत्वाकांक्षाओं की प्रतीक हैं। हमने हितकारी राज्य की स्थापना का संकल्प किया है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति का अपना घर हो और उसे पर्याप्त भोजन तथा कपड़ा मिले। ये भारी उद्योग उसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रथम प्रयास हैं। मुझे आज रूरकेला कारखाने के उद्घाटन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है और मुझे आशा है कि इस कारखाने से हमें अपने हितकारी राज्य का स्वप्न पूरा करने में बहुत मदद मिलेगी।"

राष्ट्रपति ने आगे कहा कि इस क्षेत्र में खनिज काफी मात्रा में है। रूरकेला और अन्य छोटे कारखानों में इसका उपयोग होगा। राष्ट्रपति ने आशा प्रकट की कि कुछ समय बाद यह जमशेदपुर के प्रसिद्ध औद्योगिक केन्द्र का मुकाबला करने लगेगा। रूरकेला कारखाने एवं हीराकुड बाँध से इस क्षेत्र के लोगों की उन्नति होगी। यहाँ तक कि इससे देश की आर्थिक स्थिति भी सुधरेगी

रूरकेला कारखाने के समीप ही पर्याप्त कच्चा माल उपलब्ध है । खनिज लोहा प्राप्त करने के लिये यहाँ से ४५ मील दूर बरसुग्रा में नई खान खोदी जा रही है । इस कारखाने के लिये कोयला बिहार की करगली, बोकारो एवं झरिया की खानों से प्राप्त किया जायेगा । करगली में कोयला धोने का कारखाना भी स्थापित किया जायेगा । इसके अलावा कारखाने के लिये चूने के पत्थर की व्यवस्था हाथीबाडी और बीरमित्रपुर में किया जा रहा है, जो कारखाने से १५ मील दूर है ।

वर्तमान में इस्पात दो तरीकों से बनाया जाता है, प्रथम खुली भट्टियों द्वारा, यह तरीका बहुत प्राचीन है एवं दूसरा एल० डी० प्रणाली द्वारा, यह तरीका बिलकुल नया है । इस तरीके के द्वारा कम खर्च होता है, स्थान कम घिरता है, सयन्त्र आदि कम लगते हैं और उत्पादन भी अधिक होता है । साथ ही उत्पादकों से उर्वरक और अन्य रासायनिक पदार्थ तैयार किये जा सकते हैं, किंतु इस प्रणाली के द्वारा उत्तम किस्म का कार्बन, टेन्साइल और विशेष प्रकार का इस्पात शायद न बनाया जा सके, इसलिये खुली भट्टियों द्वारा भी इस्पात बनाना अति आवश्यक है । रूरकेला कारखाने में पहले तरीके से २,५०,००० हजार टन इस्पात बनाया जायेगा तथा दूसरे एल० डी० तरीके से ७,५०,००० हजार टन इस्पात बनाया जायेगा । इस कारखाने में कुल उत्पादन ७,२०,००० टन प्रतिवर्ष होगा तथा इस कारखाने पर १७० करोड़ रु० के लगभग व्यय किये जायेंगे ।

(२) भिलाई (मध्य प्रदेश)—

दिनांक ४ फरवरी १९५९ को राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद ने भिलाई कारखाने की धमन भट्टी का उद्घाटन करते हुए कहा कि—"कारखाने का यह आरम्भ देश की आर्थिक स्थिति को बदलने तथा अपने अनन्त प्राकृतिक साधनों का उपयोग करके लोगों के रहन सहन के स्तर को ऊँचा उठाने की हमारी आशाओं का प्रतीक है । मैं समझता हूँ कि वह दिन दूर नहीं, जब देश के लोगों के ये प्रयत्न फलदायी होंगे । उन्होंने कहा कि यह विशाल कारखाना उज्वल भविष्य के प्रति देश के विश्वास और बाधाओं को पार करके आगे बढ़ने का निश्चय प्रतीक है । भारी उद्योग खड़े करने के हमारे कार्यक्रम में इन इस्पात कारखानों का महत्वपूर्ण स्थान है । कल मैंने रूरकेला का उद्घाटन किया और आज इस भिलाई कारखाने का उद्घाटन कर रहा हूँ । ये दोनों दिन भारत के औद्योगीकरण के इतिहास में अविस्मरणीय रहेंगे ।

नागपुर से १५६ मील दूर बम्बई कलकत्ता की मुख्य रेल्वे लाइन पर स्थित है भिलाई । अभी लगभग १७ माह पूर्व ही इसका कार्य प्रारम्भ किया गया था और इस छोटीसी अवधि में भिलाई कारखाने की योजना ने काफी तरक्की की है । भिलाई कारखाने में ७,७०,००० टन इस्पात की मिलें तैयार की जायेंगी, जिनसे रेल की पटरियाँ और स्लीपरें, इमारतों में काम आने वाला सामान तथा चद्दरें आदि बनाई

जायगा। योजनानुसार कारखाने का विस्तार कर इसकी उत्पादन क्षमता को २५ लाख टन इस्पात की सिल्लों तक बढ़ाया जा सकता है

इस कारखाने के लिए राजहरा की खानों से खनिज लोहा मंगाया जायगा यह भिलाई से ६० मील दूर है। कोयला बिहार की करगली बुकारो एवं भरिया तथा मध्य प्रदेश की कोरबा की खानों से आयगा। चूने का पत्थर भिलाई से १२ मील दूर नन्दिनी की खानों से लिया जायगा

भिलाई इस्पात कारखाना रूस के सहयोग से खोला जा रहा है। रूस के द्वारा इस कारखाने को आर्थिक तथा टेक्निकल सहायता दी जा रही है। वह इसके लिए ६२ करोड़ १० लाख रु० के मूल्य की मुख्य मशीन तथा अन्य यन्त्रादि ढाई प्रतिशत सूद के हिसाब से दे चुका है। इसका भुगतान १२ सालाना किश्तों में किया जायगा। कुछ यन्त्र रूस से नगद भी खरीदे गये हैं। समझौते के अनुसार रूस तथा भारत पर काम का बटवारा इस प्रकार है

रूस—

(१) योजना का विस्तृत रिपोर्ट तैयार करना नक्शा बनाना और कारखाना खड़ा करने का कार्यक्रम तयार करना

(२) मुख्य मशीन तथा अन्य सामान आदि देना

(३) मशीन लगाने तथा चालू करने में टेक्निकल सहायता देना

(४) रूस में भारतीयों के प्रशिक्षण की व्यवस्था करना तथा भारत में भी इंजीनियरों तथा कारीगरों को प्रशिक्षण देने की व्यवस्था करना।

भारत—

(१) कारखाने के लिए ऊबड़ खाबड़ जमीन को चौरस बनाना

(२) कारखाने के लिए उपयुक्त स्थान की प्रारम्भिक जाँच करना

(३) रूसी विशेषज्ञों की देख रेख में यन्त्र आदि लगाना

(४) रूस से आने वाले सामान को बन्दरगाह से निश्चित स्थान तक लाने की व्यवस्था एवं भारत में मिलने वाले सामान की पूर्ति (Supply) की व्यवस्था करना।

(५) कारखाने के श्रमिकों के लिए बस्तियाँ तथा सड़कें एवं रेल की पटरी बिछाने की व्यवस्था।

(६) कारखाने तक बिजली और पानी पहुँचाने की व्यवस्था और

(७) कच्चे माल की पूर्ति।

इस कारखाने का निर्माण कार्य एक भारतीय मुख्य इंजीनियर के हाथ में है। इस कारखाने पर लगभग १२० करोड़ रु० व्यय होगा एवं इसका वार्षिक उत्पादन

७ ७० ००० लाख टन होगा । भिलाई इस्पात कारखाने में १२ अक्तूबर १९५९ में इस्पात का उत्पादन प्रारम्भ हुआ यहां ११ अप्रैल १९६० तक १ लाख टन इस्पात तयार हो चुका है ।

(३) दुर्गापुर (पश्चिमी बंगाल)—

दुर्गापुर का इस्पात कारखाने का निर्माण अन्य दोनो कारखानो के बाद प्रारम्भ हुआ फिर भी काम विधिवत एवं अत्यन्त शीघ्रता से चल रहा है । इस कारखाने के निर्माण में कुछ ब्रिटिश फर्में भी सहयोग दे रहा है । दुर्गापुर कारखाने की लागत के लिये ब्रिटेन के बैंको का एक सिंडीकेट ११५ लाख पौंड और ब्रिटिश सरकार १५० लाख पौंड दे रहा है ।

दुर्गापुर कारखाने के लिये कारकर तथा भरिया की खानों का कोयला उपयोग में लाया जायेगा । चूने का पत्थर बीरमित्रपुर तथा हाथीबाड़ा क्षेत्र से मगाया जायगा । दुर्गापुर में दामोदर घाटी निगम १ लाख ५० हजार किलोवाट क्षमता का एक ताप बिजली घर बना रहा है । इसके अलावा कारखाने का अपना १८ हजार किलोवाट की क्षमता का ताप बिजली घर काम करेगा

दुर्गापुर के इस इस्पात कारखाने पर १३८ करोड़ रु० के लगभग व्यय करने का अनुमान है । इस कारखाने का वार्षिक उत्पादन ६ १० ००० टन होगा ।

भारत के केन्द्रीय इस्पात एवं ईंधन मन्त्री सरदार स्वर्णसिंह ने लोकसभा में वक्तव्य देते हुए कहा कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्त तक ६० लाख टन इस्पात पिंड बनाने का लक्ष्य है । इन इस्पात पिंडो में से ४५ लाख टन का तैयार सामान बनाया जायेगा । दूसरी योजना के अन्तर्गत जमशेदपुर बर्नपुर भद्रावती कारखानों का बढ़ाने की व्यवस्था की गई है । जमशेदपुर में २० लाख टन बर्नपुर में १० लाख टन और भद्रावती में १ लाख टन इस्पात बनाने का लक्ष्य रखा गया है ।

इस प्रकार सरकारी एवं निजी दोनों क्षेत्रों का सम्मिलित उत्पादन ६० लाख टन होगा जिसमें से इस्पात का ४५ लाख टन तयार माल बनाने और बिक्री के लिये ७ लाख ५० हजार टन ढलवां लोहा बनाने का लक्ष्य पूरा हो जायगा ।

उद्योग की वर्तमान स्थिति एवं भविष्य—

देश में लोहे एवं इस्पात के लगभग १३६ कारखाने बिहार बंगाल मद्रास उड़ीसा मध्य प्रदेश आदि राज्यों में केन्द्रित हैं । इस उद्योग में लगभग ८६ हजार श्रमजीवी काय करते हैं । इस समय निजी क्षेत्र में हमारे देश में टिस्को इस्को तथा म्लाब की संयुक्त संस्था एवं मसूर आयरन वर्क्स भद्रावती —तीन प्रमुख कारखाने लोहे एवं इस्पात का उत्पादन कर रहे हैं। इन सब की उत्पादन शक्ति १८ ७८ ००० टन ढला हुआ लोहा व १० ५०० टन इस्पात है । इन उत्पादकों

की पूंजी ६४ करोड़ रुपया है। सन् १९५६ तक हमारी माँग २५ लाख टन तक पहुंच चुकी है किन्तु इस समय तक देश में इस्पात का उत्पादन बहुत कम है।

दूसरी योजना के अन्त तक टाटा इस्पात के कारखाने का उत्पादन ८ लाख टन से बढ़कर प्रतिवर्ष १५ लाख टन हो जायगा और इस पर ८४.६ करोड़ रु० व्यय होगा। इसी प्रकार इंडियन आयरन एण्ड स्टील वर्क्स की उत्पादन क्षमता भी ३ लाख टन से बढ़ कर ८ लाख टन हो जायगी और इस पर ४२.५ करोड़ रु० व्यय होगा। रूरकेला, भिलाई तथा दुर्गापुर के नवीन स्थापित कारखानों में १९६०-६१ तक २० लाख टन तैयार इस्पात तथा ४.५ लाख टन कच्चा लोहा उत्पन्न होने लगेगा।

देश में लौह एवं इस्पात का उत्पादन

	वर्तमान उत्पादन (टनों में)	१९६०-६१ का लक्ष्य (टनों में)
१—वर्तमान कारखानों की वृद्धि से		
टाटा आयरन एण्ड स्टील वर्क्स	७ लाख ८० हजार	१५ लाख
इंडियन आयरन एण्ड स्टील वर्क्स	३ लाख ४० हजार	८ लाख
मैसूर आयरन एण्ड स्टील वर्क्स	२० हजार	१ लाख
२—सरकारी क्षेत्र के नये कारखानों से—		
रूरकेला	—	७ लाख २० हजार
भिलाई	—	७ लाख ७० हजार
दुर्गापुर	—	८ लाख
कुल उत्पादन	११ लाख ४० हजार	४६ लाख ९० हजार

उद्योग की समस्याएँ—

भारतीय लौह एवं इस्पात उद्योग की निम्नलिखित मुख्य समस्याएं हैं—

(१) वित्त—इस उद्योग को नई मशीनें लगाने तथा पुरानी मशीनों को ठीक करने के लिए बहुत धन की आवश्यकता है। इस कार्य के लिये ३.१५ करोड़ डालर का एक ऋण विश्व बैंक से प्राप्त किया गया है।

(२) श्रम—उद्योग के सम्मुख दूसरी मुख्य समस्या श्रम की है। श्रमिक कार्य तो करना चाहते हैं, परन्तु वे ऊंची मजदूरी लेकर कार्य करने को तैयार होते हैं। श्रम की कार्य क्षमता में भी कोई वृद्धि नहीं हुई है।

(३) सरकारी नीति—सरकार की इस उद्योग के प्रति कोई सन्तोषजनक नीति नहीं है। सरकार निजी पूँजी को अधिक प्रोत्साहित नहीं करना चाहती, वह उसको और शंका की दृष्टि से देखती है। इस कारण से उद्योगपति अपना धन उद्योग में लगाने से डरते हैं।

(४) श्रेष्ठ कोयले का अभाव—उद्योग के लिये आवश्यक श्रेष्ठ कोयले का अभाव है। भारत में श्रेष्ठ कोयला (कोकिंग) बहुत कम मात्रा में उपलब्ध है। साथ ही यहाँ पर अच्छे कोयले का प्रयोग रेलगाडियो को चलाने में भी किया जाता है।

(५) कर्मचारियो का प्रशिक्षण—नव निर्मित इस्पात के प्रत्येक कारखाने के लिये ६७० इन्जीनियर तथा अन्य उच्च निरीक्षक एव कर्मचारियों की आवश्यकता होगी, इसके साथ ही ६३०० कारीगर एवं शिक्षित मजदूर भी चाहिये। भारत में योग्य कारीगरो, इन्जीनियरो, श्रमिकों, कर्मचारियो का अभाव है, क्योकि इस उद्योग का विकास हुए यहाँ अधिक समय नही हुआ है। अतः उद्योग के लिये कर्मचारियो को प्रशिक्षण देने की भी महत्वपूर्ण समस्या है।

इस समस्या के हल के लिये निजी क्षेत्र में प्रयत्न जारी है। सरकार की ओर से २४१ इन्जीनियर रूस में प्रशिक्षण प्राप्त करने भेजे गये है, कुल ६८३ इन्जीनियरो को प्रशिक्षण देना है। रूरकेला एव दुर्गापुर कारखानो के लिये फोर्ड फाउन्डेशन की सहायता से अमरिका में बहुत से इन्जीनियरो को प्रशिक्षण दिया जायेगा। कोलम्बो योजना के अन्तर्गत ब्रिटेन में भी ३०० इन्जीनियरो को दुर्गापुर कारखाने के लिये प्रशिक्षण किया जायगा।

जमशेदपुर में भी प्रशिक्षण का एक विशाल केन्द्र चल रहा है, जिसमें विदेशो को जाने के पूर्व इन्जीनियरो को प्रशिक्षण दिया जायेगा। इस प्रकार सरकार इस समस्या की ओर पूरा ध्यान दे रही है।

(६) उत्पादन की लागत—इन कारखानो में निर्माण पर जो अधिक खर्च पड रहा है, उससे तैयार इस्पात की लागत भी अधिक पडेगी। इन कारखानो में पूँजी अधिक लगने के कारण उत्पादन लागत अधिक पडेगी। किन्तु इस समस्या को सचालन लागत कम करके हल किया जा सकता है। नये कारखानो में नये यन्त्रो को चलाने से कम मनुष्यो की आवश्यकता होगी। इनका अच्छा सगठन होने की आशा है, फलतः पूँजीगत लागत अधिक होने पर भी उत्पादन लागत के बराबर ही पडेगी।

(७) विवेकीकरण एव आधुनिकीकरण—उत्पादन की लागत की समस्या को सुलझाने के लिये उद्योग का विस्तार एव नवीनीकरण किया जाना चाहिये। उत्पादन व्ययो में अभिनवीकरण एव वैज्ञानिक प्रबन्ध के द्वारा भी कमी की जा सकती है। हमारी औद्योगिक नीति भी ऐसी होनी चाहिये, जिससे उद्योग का पर्याप्त विकास हो सके। फोर्ड फाउन्डेशन की रिपोर्ट के अनुसार बिना विवेकीकरण के भारतीय श्रमिको की कार्य-क्षमता एव दक्षता का अनावश्यक रूप से ह्रास होता है। आधुनिकीकरण

के अभाव में वे वर्तमान टेक्नोलाजी का सदुपयोग नहीं कर पाते। फलतः अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा में भी टिकना कठिन हो सकता है। आधुनिकीकरण के विरोध में श्रम संघों की जो दलील है वे पुरानी थोथी प्रतीत होती है और उनका दृढ़ता के साथ सामना किया जाना चाहिये। हाँ यह अवश्य है कि विवेकीकरण के परिणामस्वरूप जिन श्रमिकों की छटनी की जाये उनको रोजगार देने की पूर्ण व्यवस्था होना चाहिये।

(८) कर की समस्या—गणतन्त्र की करारोपण नीति भी भारतीय उद्योगपतियों को निरुत्साहित किया है। सन् १९४८ की अपेक्षा आज भारत सरकार ने सम्पत्तियों पर मूल्य ह्रास की दर को काफी बढ़ा दिया है और इसके लिये भारत सरकार बधाई की पात्र है परन्तु फिर भी हमारे उद्योगपति यह अनुभव करते हैं कि आय कर व सुपर टैक्स की दर बहुत ऊंची है जिसके कारण वे विस्तार व आधुनिकीकरण से सम्बन्धित योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए पर्याप्त मात्रा में पूंजी का संचय नहीं कर पाते।

लौह इस्पात परामर्शदाता समिति—

६ फरवरी सन् १९६० को लौह एवं इस्पात परामर्शदाता समिति का प्रथम बैठक हुई जिसमें देश के विभिन्न इस्पात उद्योगपतियों ने इस उद्योग से सम्बन्धित समस्याओं पर विचार विमर्श किया। एसोसियेटेड चेम्बर आफ कामर्स के सरवाल्टर मिचिल मोरा (Sir Walter Michelmora) ने श्रेष्ठ किस्म के कोयले एवम् विद्युति के अभाव पर प्रकाश डाला। उन्होंने यह संकेत किया कि रेलों के विद्युतिकरण से लौह एवम् इस्पात उद्योग के लिये शक्ति की समस्या अत्यन्त गहन हो जायगी क्योंकि उत्पादित विद्युत शक्ति का उपयोग रेलों में अधिक किया जायेगा। टिस्को के श्री स्लीटस (Mr sleetus) ने यह सुझाव दिया कि इस्पात के मूल्यों में कुछ कमी की जानी चाहिये। इन्होंने इस बात की भी सिफारिश की कि देश में इस्पात उद्योग की उचित प्रगति के लिये एक उच्च स्तरीय वैधानिक बोर्ड स्थापित किया जाये। इण्डियन आयरन एण्ड स्टील के श्री कपूर (Mr Kapoor) ने सुझाव दिया कि देश में इस्पात के उपभोग की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करने से भी बहुत लाभ हो सकता है। मद्रास के स्वामी एम० एल० ए० ने बतलाया कि भारत के दक्षिण में इस्पात की बहुत कमी है अतएव इसके उत्पादन को बढ़ाने की चेष्टा करनी चाहिये। फेडरेशन आफ इण्डियन चेम्बर एण्ड कामर्स इन्डस्ट्रीज के श्री जी० एल० बंसल (Mr G L B nsal) ने इस्पात के वितरण पर से नियन्त्रण हटाने का सुझाव दिया।

तृतीय पंचवर्षीय योजना में उद्योग—

जुलाई १९६० में प्रकाशित तृतीय पंचवर्षीय योजना के अनुसार ऐसी आशा है कि सन् १९६५-६६ तक तैयार इस्पात का उत्पादन ६.७ मिलियन टन हो जायेगा। यद्यपि इंगोट का उत्पादन (Ingot Prodouction) लगभग ४.५ मिलियन टन हो

जायेगा । इसके अतिरिक्त १।। मिलियन टन पिग आयरन के उत्पादन की आशा है जिसका उपयोग विक्रय के लिए किया जायेगा ।

उपसहार—

६ फरवरी १९६० को हुई लौह इस्पात परामर्शदाता समिति की प्रथम बैठक में केन्द्रीय इस्पात एवम् ईंधन मन्त्री सरदार स्वर्णसिंह ने बतलाया कि देश में लौह एवम् इस्पात उद्योग का भविष्य अत्यन्त उज्जवल है । उन्होंने यह संकेत किया कि निकट भविष्य में एक ऐसी संस्था का निर्माण किया जायेगा जो निजी व राजकीय क्षेत्र के इस्पात के कारखानों की बढ़ती हुई आवश्यकताओं (विशेषत कच्चे माल की पूर्ति में सम्बन्धित) की सन्तुष्टि का ध्यान रखेगा ।

उसी अवसर पर उद्योग मन्त्री श्री मनुभाई शाह ने बतलाया कि अभी तक दो वर्ष तक हमारे पास इस्पात का आधिक्य नहीं होगा क्योंकि हमारी निजी आवश्यकताएँ ही बहुत है । यदि थोड़ा बहुत आधिक्य होगा भी तो उसके लिए हमको निश्चय बाजार मिल जायेगा । जिन जिन देशों से भारत के व्यापारिक सम्बन्ध है उनमें से अनेक ने ५ ५ ७ ७ वर्ष के लौह इस्पात आयात करने की इच्छा प्रकट की है । इस से उद्योग के उज्जवल भविष्य का आभास मिलता है ।

STANDARD QUESTIONS

1 Briefly trace the origin progress present position and problems of the Iron and Steel Industry

2 Discuss the principal problems of the Indian Iron and Steel Industry and suggest remedies to solve them

अध्याय १३

भारतीय चीनी उद्योग

(Indian Sugar Industry)

प्रारम्भिक—

भारत के संगठित उद्योगों में सूती कपड़े के बाद चीनी उद्योग ही प्रमुख उद्योग है। यह उद्योग भारत का प्राचीन उद्योग है। जब विश्व के अन्य देश इस वस्तु के नाम से अनभिज्ञ थे, उस समय भारत इससे परिचित था। ईसा से चार शताब्दी पहले कौटिल्य ने अपने 'अर्थशास्त्र' में गन्ने के द्वारा चीनी बनाने तथा शोरे से मध्य-सार निकालने की विधियों का उल्लेख किया है। १७वीं शताब्दी के प्रारम्भ में सूरत व कालीकट से बहुतसी सफेद चीनी और खाँड निर्यात की जाती थी। बनारस की निर्मित चीनी विदेशों में बड़ी प्रसिद्ध थी और देश की आन्तरिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी इससे होती थी। आज भी हमारे देश में संसार की कुल गन्ने की उपज का २६% भाग होता है। सरकार को इस उद्योग से लगभग ८५ करोड़ रुपये की वार्षिक आय होती है। उद्योग की कार्यशील पूँजी भी १०० करोड़ रुपये से अधिक है।

उद्योग का विकास—

भारत में आधुनिक चीनी उद्योग की नींव सन् १८९९ में पड़ी, जबकि सरकार ने चीनी के आयात पर कर लगा दिया। इस प्रतिबन्ध की आड़ में चीनी व आधुनिक कारखाने उत्तरी भारत में खोले गये, परन्तु शताब्दी के आरम्भ में प्रायः यह कुटीर उद्योग अवनति कर रहा था। उत्पादन के ढंग अवैज्ञानिक थे, जिससे कीमत अधिक होती थी और भारत अन्य देशों की स्पर्धा में लड़खड़ा रहा था। प्रथम युद्ध तक आते-आते भारत इसके उपभोग के लिये आयात पर निर्भर हो गया। सन् १९०१-१९२० के मध्य भारतीय गन्ने की नस्ल सुधारने तथा उत्पादन में वृद्धि करने के प्रयत्न किये गये। सन् १९०१ में गन्ने के सुधार के लिये एक अनुसन्धान केन्द्र खोला गया। सन् १९१९,२० में एक चीनी समिति भी स्थापित की गई। इन प्रयत्नों के फलस्वरूप गन्ने का उत्पादन बढ़ा।

उद्योग को संरक्षण—

सन् १९२९ में चीनी समिति ने सिफारिश की कि आधुनिक ढंग के चीनी के कारखाने खोलने पर विचार किया जाय और विदेशों से चीनी आयात करने में करोड़ों,

रुपयों की हानि को रोका जाय। फलतः भारत सरकार ने इस प्रश्न पर विचार करने के लिये टैरिफ़ बोर्ड नियुक्त किया, जिसकी सिफारिशों के आधार पर सरकार ने इस उद्योग को सन् १६३१ से १५ वर्ष के लिए संरक्षण देना स्वीकार किया। संरक्षण के लिए चीनी के आयातों पर पहले सात वर्षों के लिए ७½ प्रति हन्डरवेट के हिसाब से संरक्षण कर लगाया। सन् १६३१ में चीनी का आयात १० लाख टन था, जो सन् १६३६,३७ में १६ हजार टन रह गया। आयात के कम होने से जो हानि हुई उसकी पूर्ति के लिए आबकारी कानून के अन्तर्गत २।) प्रति हन्डरवेट की दर से कर लगाया गया। गन्ने के क्षेत्र में भी वृद्धि की गई। सन् १६३१,३२ में भारत में कुल ३२ चीनी मिलें थीं, किन्तु अगले पाँच वर्षों में ही संख्या ३२ से बढ़कर १३० हो गई। निम्नलिखित तालिका से चीनी उद्योग का आभास मिलता है—

चीनी उद्योग का विकास*

वर्ष	मिलों की संख्या	गन्ने का उत्पादन (हजार टनों में)
१६३१ ३२	३२	१,६०
१६३८-३६	१३२	६,४२
१६४५ ४६	१३८	६,२३
१६५०-५१	१३६	११,१६
१६५५-५६	१४३	१८,५६
१६५६-५७	१६६	२०,३६
१६५७ ५८	—	२०,०६
१६५६	—	२०,८४

उत्पादन बढ़ते ही चीनी का मूल्य बहुत बढ़ गया तथा पारस्परिक प्रतिस्पर्द्धा बहुत बढ़ने लगी।

सन् १६३७ में भारतीय चीनी संघ की स्थापना हुई, जिसका उद्देश्य पारस्परिक प्रतिस्पर्धा दूर करना, बिक्री का नियमन एवं उद्योगों को सङ्गठित करना था। इसके प्रयत्नों से चीनी बाजार की दशा में सुधार हुआ। सरकार ने कुछ कानून बनाये, जिससे सब मिलें इस संघ की सदस्य बन जायें। जब मूल्य अनुचित रूप से बढ़ने लगे, तो सरकार ने इससे मान्यता हटा ली। फलत: अधिकांश मिलें इस संघ से हट गई और पारस्परिक प्रतिस्पर्धा फिर बढ़ गई। सन् १६४० में उद्योगपतियों की प्रार्थना पर सरकार ने संघ को फिर मान्यता दे दी, किन्तु निम्न शर्तों का पालन आवश्यक कर दिया—संघ केवल बिक्री एजेन्ट का कार्य करेगा, प्रत्येक मिल के लिए

* India 1960, Page 313.

और मद्रास म अनेक सहकारी चीनी मिल स्थापित होने की आशा है। सन् १९६० ६१ तक चीनी मिलो के विस्तार पर २१ करोड रुपया मशीनो के आधुनिकीकरण पर ८० करोड रुपया तथा नई चीनी मिलो पर २४ करोड रुपया व्यय होगा। केन्द्रीय सरकार प्रदेशीय सरकारो को गन्ने का उत्पादन बढाने व किस्म सुधारने के लिए ४० लाख रुपये का ऋण व ३० लाख रुपये का अनुदान देगी। भविष्य म मिठास के आधार पर ही गन्ने का श्रेणीकरण एव मूल्य निर्धारित किया जावेगा जिसमे किसान अच्छी कोटि का गन्ना पैदा कर। द्वितीय योजना काल म इस उद्योग के विस्तार के कारण २१ ००० अतिरिक्त व्यक्तियो को रोजगार मिल जावेगा। यह आशा की जाती है कि द्वितीय योजना की पूर्ति होने तक भारत चीनी के सम्बन्ध म स्वय तो आत्म निर्भर होगा ही साथ ही निर्यात भी बढा सकेगा और देशवासियो को सस्ती चीनी मिल सकेगी। सन् १९५० ५१ म गन्ने का उत्पादन ५ ६ मि० टन था जो ६० ६१ म ७ २ मि० टन हो जायगा। प्रस्तावित तृतीय योजना के अनुसार सन् १९६६ तक गन्ने का उत्पादन ६ २ मि० टन होने की आशा है तथा चीनी का उत्पादन लगभग ३ मि० टन हो जायगा।

चीनी उद्योग की विशेष समस्याए—

चीनी उद्योग के सामने निम्न समस्याए है जो इसकी प्रगति म बाधक है—

(१) प्रति एकड पैदावार मे कमी—उत्तरी भारत म प्रति एकड लगभग १४ १५ टन और दक्षिणी भारत म २० टन गन्ना उगाया जाता है जबकि जावा तथा हवाई द्वीपो म यह क्रमश ५६ और ६२ टन है। इसके अतिरिक्त ग्रामीण भाई देश के अधिकतर गन्ने का गुड बना लेते है। इससे चीनी उद्योग को पर्याप्त क्षति होती है।

(२) गन्ने की निम्न कोटि—भारतीय गन्ने की किस्म भी बहुत खराब है। गन्ने म चीनी की मात्रा कम होती है। सन् १९४७ ४८ म गन्ने से केवल ८ ८५% चीनी निकलती थी जबकि जावा फारमूसा और क्वीसलैड म क्रमश ११ ४६ १२ ०५ और १४ २२% निकलती है।

(३) गन्ने का अधिक मूल्य—भारत म सरकार गन्ने का मूल्य निश्चित करती है जो चीनी की कुल लागत का ६०% होता है अत मिल मालिको का कथन है कि उनको कुछ भी बचत नही होती। गन्ने का इतना अधिक मूल्य इसलिए है कि भारत म चीनी मिलो के पास अपने व बडे खेत नही है वरन् किसानो पर निर्भर रहना पडता है जो उसे छोटे छोटे अनार्थिक खेतो पर उगाते है। मूल्यो के सम्बन्ध म एक समस्या यह भी है कि गन्ने का मूल्य केवल तौल के आधार पर तय किया जाता है किस्म से उसका कोई सम्बन्ध नही होता। इसम मिलो को काफी हानि होती है।

(४) त्रुटिपूर्ण स्थानीयकरण—देश की अधिकाश मिल उत्तरी भारत म स्थित

चानी उद्य ग की विकास सभा के सुभाव पर भारत सरकार ने एक प्रतिनिधि मंडल ग्रास्ट्रेलिया व इंडोनेशिया भेजा था जिसकी रिपोर्ट सन् १६५६ मे प्रस्तुत हुई। इसमें चीनी उद्योग की उन्नति के लिये निम्न सुभाव दिये गये है—

(१) चीनी के मूल्य पर कन्ट्रोल न लगाया जाय क्योकि भारत तथा ग्रास्ट्रेलिया का अनुभव है कि इसके कारण उद्योग के विकास मे बाधा पड़ती है। (२) चीनी व गुड़ की बिक्री के लिये कोई केन्द्रीय सभा नियुक्त न की जाय। (३) चीनी के मूल्य तथा बटवारे पर जो नियन्त्रण है तथा सरकार जो २५ % चीनी को नियंत्रित मूल्य पर बेचने का अधिकार रखती है और चीनी को विदेशों में भेजकर उसका निश्चित मूल्य पर बेचती है उस नीति को वर्तमान मे कायम रखा जाय। (४) सरकार को चाहिए कि हर वर्ष गुड़ की न्यूनतम कीमत निश्चित करे जिससे गुड़ व चीनी के मूल्य तथा उत्पत्ति मे सन्तुलन रहे। यदि गुड़ का मूल्य बाजार मे निश्चित मूल्य से कम हो तो स्वयं उसे खरीदे तथा गुड़ के खरीदने के लिए गुड़ के मुख्य उत्पादन क्षेत्रों मे सहकारी समितियां स्थापित करे। (५) गन्ने का मूल्य निश्चित करने मे परामर्श देने के लिये सरकार को एक स्थायी सलाहकार समिति नियुक्त करनी चाहिये जिसमे गन्ना उगाने वालों व मिलों के बराबर बराबर प्रतिनिधि हो और जिसका सभापति एक जज हो। ( ) गन्ना उगाने वालों को गन्ने का मूल्य उसके गुण के अनुसार दिया जाय। (७) गन्ने की प्रति एकड़ उपज को बढ़ाने के लिए निम्न उपाय किये जाय— (अ) गन्ने का उन्नत बीज बोना तथा गन्ने को बीमारियों से बचाना (आ) ग्रास्ट्रेलिया तथा जावा से बढ़िया गन्ने का आयात करना और उसे भारत मे उत्पन्न करने का प्रयत्न करना। गन्ने के विभिन्न प्रकारों को अलग अलग मिट्टियो तथा जलवायु मे उगाकर रखना व किसानों को उगाने के लिये देना (इ) चीनी उत्पन्न करने के विषय मे एक अखिल भारतीय पत्रिका चालू करना (ई) एक से अधिक मिलों वाले क्षेत्रों में गन्ने के कीड़ों तथा रोगों को रोकने वाले बोर्ड स्थापित करना। (८) शीरे पर अनुभव करके देखना कि वह कहाँ तक पशुओं के उपभोग मे काम आ सकता है उसमे शक्ति उत्पादन की सम्भावनायें देखना व खोई से पट्टा बनाना। शीरे का उचित बटवारा करने के लिये उसे केन्द्रीय सरकार के आधीन लाना। (९) गन्ने के भाग को साफ करने के लिये अनुसंधान करना जिससे वह बहुत से उद्योगों के काम आ सके। (१०) ग्रास्ट्रेलिया की भांति गन्ना उगाने तथा चीनी बनाने वालों की संस्थायें स्थापित करना। (११) भारतीय ट्रेड कमिश्नरों तथा दूतावासों द्वारा विदेशों में गुड़ के बाजार तलाश करना। (१२) चीनी अनुसंधान का स्थापना करना व अनुसंधान करने वाले लोगों को विदेशों मे भेजना। (१३) फल वाली वस्तुओं तथा दूध वाले उद्योगों को कम मूल्य पर चीनी देना। (१४) वर्तमान मिलों को बढ़ाना न कि नई मिले स्थापित

करना। (१५) विदेशो से खनी के औजार तथा चीनी उत्पन्न करने वाली मशीनो का बिना किसी आयात कर लगाये मँगाना।

STANDARD QUESTIONS

1. Briefly trace the origion, progress, present position and problems of the Indian Sugar Industry
2. Discuss the principal problems of the Indian Sugar Industry and suggest remedies to solve them.

भारतीय कोयला उद्योग

(Indian Coal Industry)

प्रारम्भिक—

काला हीरा अर्थात् कोयला आधुनिक उद्योग का जन्मदाता है। यह सबसे अधिक महत्वपूर्ण औद्योगिक ईंधनों में से एक है। सारे ब्रिटिश कामनवेल्थ में भारत दूसरे नम्बर का एवं विश्व में आठवें नम्बर का उत्पादक है। कोयला निकालने के सम्बन्ध में सबसे पहला अधिकृत वर्णन सन् १७७४ का है जबकि वारेन हेस्टिंग्ज ने मेसर्स समनर एण्ड ह्वीटल को बंगाल में कोयले की खानों से कोयला निकालने की आज्ञा प्रदान की। यह प्रयत्न असफल रहा और इसके बाद सन् १८१४ तक अन्य कोई प्रयत्न न हुआ। इसी वर्ष रानीगंज के निकट कोयला निकालने का काम पुनः आरम्भ किया गया। सन् १८६० तक वार्षिक उत्पादन ३,००,००० टन हो गया। सन् १८५५ में कलकत्ते की ई० आई० रेल्वे ने इस क्षेत्र का उपभोग किया और इस प्रकार उद्योग का भविष्य सुरक्षित हो गया। सन् १८६८ के बाद कोयले के उत्पादन में प्रशंसनीय प्रगति हुई। निम्नलिखित आँकड़े इस बात के साक्षी हैं —

कोयले का उत्पादन*

वर्ष	उत्पादन (लाख टनों में)
१८६८	५
१८८०	१०
१८९०	[illegible]
१९००	[illegible]१
१९१०	१२०
१९[illegible]०	१८०
१९[illegible]०	२[illegible]८
१९४०	२५१
१९४६	२६०
१९५०	[illegible]२०
१९५५	[illegible]८[illegible]
१९५६	[illegible]९४
१९५७	४३५
१९५८	४५[illegible]
१९५९	[illegible]६४

* India 1960 Page 3?0

सन् १८७१ मे रेल्वे ने गिरडीह क्षेत्र में प्रवेश किया और शताब्दी के आरम्भ से इस क्षेत्र का उत्पादन ३० लाख टन हो गया। भरिया के क्षेत्र में भी विकास हुआ डाल्टन गज क्षेत्र, रीवा राज्य, मध्य प्रान्त, हैदराबाद, आसाम और विलोचिस्तान के क्षेत्र भी विकसित हुए १६००,०१ में आयात १,४२,४६७ टन० निर्यात ५,४२,०-२३ टन और उत्पादन ६१,१८,६६२ टन था, जिसका लगभग ६०% बगाल व बिहार से प्राप्त हुआ। सन् १६१४ तक कुल उत्पादन बढकर २६० लाख टन हो गया।

प्रथम महायुद्ध और उद्योग—

बढी हुई औद्योगिक कार्यवाहियों के दबाव म कोयले की माग उसकी पूर्ति से अधिक हो गई और इस अवधि भर उद्योग का यह प्रयत्न रहा कि यह बढती हुई माँग के साथ अपनी गति कायम रखे। उत्पादन तेजी से सन् १६१८ में २०० लाख टन हो गया। इसका ८५% उत्पादन रानीगज और भरिया क्षेत्र से प्राप्त हुआ। कोकिंग कोल की माँग एक दम बढ गयी थी, अतः बोकारो के कोयला क्षेत्र का अत्यधिक विकास किया गया। कोक के यन्त्र कुन्टी में और भरिया क्षेत्र की लोदना कोयला खान के पास लगाये गये। यही नही, कोयला-क्षेत्रों का विद्युतीकरण तेजी से किया गया और दो केन्द्रीय विद्युत स्टेशन बनाये गये।

लेकिन युद्ध काल का यह विकास सीमित था और मशीन एव यन्त्र मिलने की कठिनाई के कारण जारी न रह सका। वृद्धि का क्रम सन् १६१६ में अपने सर्वोच्च बिन्दु पर पहुच गया और इसके बाद उत्पादन में कमी आरम्भ हुई। आशावादी प्रबन्धको ने अपने लाभो को भी उद्योगो मे ही विनियोग कर दिया। युद्धोत्तर काल की अन्य घटना इडियन आयरन एण्ड कम्पनी द्वारा भट्टिया बनाना था, जिन्होंने सन् १६२२ से काम प्रारम्भ किया। माँग में कमी होने के साथ यह कठिनाई भी हुई कि श्रम सघर्ष हुये और निर्यात व्यापार में तेजी से कमी आई। सरकार की नीति के कारण स्थिति में सन् १६३६ तक कोई सुधार नही हो सका। आर्थिक मन्दी का तत्कालीन प्रभाव मूल्य गिराना था और वास्तव में इस गिरावट के कारण ही उत्पादन में अधिक कमी हुई। सन् १६३६ के बाद औद्योगिक कार्यो म तीव्रता से वृद्धि हुई, जिनका प्रभाव यह हुआ कि कोयले की माँग पुन. बढने लगी।

द्वितीय महायुद्ध के बाद—

द्वितीय महायुद्ध ने, जो सितम्बर सन् १६३६ में आरम्भ हुआ कोयला उद्योग को पिछले दो दशा में हुई गम्भीर निराशा से उभरने की सामर्थ्य प्रदान की। माँग बढने से मूल्यो में सुधार हुआ। कोयले की कमी घटती हुई यातायात सम्बन्धी कठिनाइयों और कोयले के गिरते हुये आयात के कारण और भी अधिक अनुभव होने लगी। फिर सैनिक योजनाओं में श्रमिकों को अधिक अच्छा काम मिलने लगा, अतः उत्पादन में बडी कमी आगई। अन्त में, सन् १६४४ के मध्य तक मूल्यो पर कडा नियन्त्रण रखना

आवश्यक हो गया। इस बात का भी प्रबन्ध किया गया कि आवश्यक उपभोक्ताओं को कोयला एक योजनाबद्ध क्रम से ही प्राप्त हो। सरकार ने उत्पादन बढ़ाने के लिये कोयला क्षेत्रों में बाहर श्रमिकों की भरती करके बोनस, ईनाम और अतिरिक्त लाभ-कर के संबंध में रियायतों के रूप में आर्थिक प्रलोभन देकर उत्पादन बढ़ाने का प्रयत्न भी किया। इन उपायों से उत्पादन में वृद्धि हुई। सन् १९५८ में लगभग ४.५२ करोड़ टन कोयले की उत्पत्ति हुई।

सन् १९५२ में भारत सरकार ने कोयला खान (संरक्षण व सुरक्षा) कानून पास किया जिसके द्वारा सरकार को निम्नलिखित अधिकार प्राप्त हो गये—

(१) कोयले की खानों की सुरक्षा व संरक्षण के लिये कार्यक्रम बनाना और उनको कार्यान्वित करना।

(२) कोयला परिषद् (Coal Board) को कोयला उद्योग की समस्याओं को सुलझाने का अधिकार देना।

(३) कोयला तथा कोक के उत्पादन पर कर लगाना

(४) कोयला उद्योग को कुशलतापूर्वक चलाने के लिए तथा उसे नियन्त्रित करने के लिए नियम बनाना।

सन् १९५४ में सरकार ने एक कोयला समिति नियुक्त की थी, जिसका उद्देश्य कोयले खान की स्थान लगान के विषय में सरकार को सलाह देना था। इस प्रकार कोयले के उत्पादन, वितरण, मूल्य निर्धारण तथा श्रमिकों के वेतन आदि पर सरकार का पूर्ण नियन्त्रण है।

पंचवर्षीय योजना में कोयला उद्योग—

पंच वर्षीय योजना में कोकिंग कोल के सुरक्षित रखने और नान कोकिंग कोल में भण्डार की विस्तृत जाँच करने की आवश्यकता पर बड़ा बल दिया गया है। उसमें कोयले के प्रादेशिक उत्पादन और वितरण की जिसमें कोयले की गतिविधि के पुनर्संगठन को भी शामिल किया गया है पर्श लिया गया है। इसमें कलारिक मूल्य, राख और नमी तथा कोकिंग विशेषताओं के अनुसार वैज्ञानिक आधार पर कोयले के वर्गीकरण पर पुनर्विचार करने का सुझाव दिया गया। उसमें यह भी सुझाव दिया गया है कि ईंधन अनुसंधान संस्था कोक के कार्बनीकरण एवं उत्पादन कोक आविस के डिजायन कोयले को धोने और मिश्रित करने तथा गंधक दूर करने के सम्बन्ध में अनुसंधान करें।

द्वितीय योजना के अन्त तक ६ करोड़ टन कोयले के उत्पादन का लक्ष्य रखा गया है। २.० करोड़ टन कोयले के अतिरिक्त उत्पादन में से १ करोड़ टन कोयला निजी क्षेत्र में पैदा होगा। सार्वजनिक क्षेत्र में कोयले के उत्पादन की देखभाल करने के लिए अक्टूबर सन् १९५६ में स्थापित राष्ट्रीय कोयला विकास निगम (प्राइवेट) लिमि

कोयला उत्पादक सक्रिय रूप से उन व्यावहारिक उपायों के सम्बन्ध में भी सोचने लगे हैं जिससे दूसरी योजना का लक्ष्य पूरा हो सके। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिये २ २ करोड़ टन कोयला प्रति वर्ष अधिक निकालना होगा। अतिरिक्त उत्पादन बढ़ाने के लिये विभिन्न कोयला क्षेत्रों में निम्न मात्रा में उत्पादन बढ़ाने की योजना है—

(लाख टनों में)

कोयला क्षेत्र का नाम	सरकारी क्षेत्र	निजी क्षेत्र	योग
रानीगंज	३६	२६ ८	६२ ८
झरिया		३५ ०	३५ ०
करनपुरा	४०	५ ६	४५ ६
बोकारो	१४		४ ०
कोरबा	४०		४० ०
कोरिया और रीवा	२०	५ ०	३[illegible] ०
सिंगरैनी		१० ७	१० ७
	१५०	८३ १	२३२ १

(३) **रेलों की व्यवस्था**—यह प्रश्न भी महत्वपूर्ण है कि अतिरिक्त वार्षिक उत्पादन में से १ ८ करोड़ टन कोयला इधर से उधर जाने की व्यवस्था रेलें कर भी सकेंगी या नहीं। २ ३ करोड़ टन कोयले में से शेष ५० लाख टन कोयले का कुछ भाग कोयला खानों पर प्रयुक्त होगा और कुछ भाग ट्रकों द्वारा ढोया जायगा। इस समय जो ३ ७ करोड़ टन कोयला खानों से निकाला जाता है उसमें से रेलें ३ २ करोड़ टन कोयला ही ढोती हैं। वर्तमान उत्पादन में से बचा ५० लाख टन और अतिरिक्त उत्पादन में १८० लाख टन कोयला रेलों को सन् १९६० तक अधिक ढोना होगा। इस तरह २३० लाख टन कोयला अधिक ढोने की सामर्थ्य बढ़ा लेना कोई खिलवाड़ नहीं है। रेल प्रशासन की एक कठिनाई यह भी है कि जब किसी उद्योग को देश के दुर्गम भाग में स्थापित करने की योजना बनाई जाती है तो रेल विभाग से यह सलाह नहीं ली जाती कि रेलें आवश्यक परिमाण में बिना कठिनाई के उस उद्योग के लिये कोयला आदि पहुँचा भी सकेंगी या नहीं।

(४) **कोयला उद्योग का युक्तियुक्त संगठन**—द्वितीय पंचवर्षीय योजना का लक्ष्य है कि कोयले का चिर प्रतीक्षित युक्तियुक्त संगठन करना, जिसकी आवश्यकता एक तो कोयले के प्रादेशिक वितरण की दृष्टि से भी है और दूसरे धातु शोधन के लिए श्रेष्ठ कोयले को सुरक्षित रखने की भी दृष्टि से है। कोयले के प्रादेशिक उत्पादन

में वृद्धि होने से रेलें निकटस्थ कोयला क्षेत्र में माल को निर्दिष्ट स्थान तक जल्दी पहुंचा सकेंगी, और रेलें कोल बनाने का बढ़िया कोयला बचा सकेंगी क्योंकि रेल बढ़िया कोयला या तो लम्बे सफर में भाप बनाने के लिये प्रयोग करती है अथवा दुर्गम प्रदेशों में जाने पर। जब कम दूर माल ढोना होगा तो वे योजनानुसार घटिया कोयला ही जलाने लगेंगी। इस प्रकार कोयला उत्पादन की द्वितीय योजना के अनुसार भले ही निर्दिष्ट लक्ष्यों की पूर्ति में एक या दो वर्षों का विलम्ब हो जाये, फिर भी इससे कोयला उद्योग का काफी सीमा तक युक्तियुक्त पुनर्गठन हो सकेगा।

(५) **कोयला उद्योग का यन्त्रीकरण**—भारत में प्रति व्यक्ति पाली उत्पादन २७ टन है, जब कि संयुक्त राज्य में ६ २९ टन, जर्मनी में ८ ६६ टन और अमेरिका में २१ ६८ टन है। इससे प्रगट होता है कि प्रति पाली उत्पादन भारत में बहुत कम है। कोयले के मूल्य का ७५ % श्रमिकों को, १५ से २०% करों को और केवल ५ १०% मालिकों को प्राप्त होता है। इसका कारण ढूंढने के लिये दूर जाने की आवश्यकता नहीं है। उद्योग इस बात की बड़ी आवश्यकता में है कि उत्पादन का यन्त्रीकरण के विस्तृत प्रयोग से विवेकीकरण किया जाय। सन् १९५० में कोयला समिति ने सुझाव दिया था कि भारत में कोयले के उत्पादन में वृद्धि करने के लिये मशीनों का प्रयोग करना परम आवश्यक है। यह भी सिफारिश की गई थी कि यन्त्रीकरण का काम एक अवधि पर फैला दिया जाय और एक कोयला खान से दूसरी कोयला खान में धीरे धीरे किया जाय जिससे परिवर्तन एवं सुधार सरल हो जाय। भारत सरकार ने सिफारिश को स्वीकार कर लिया है और कोल बोर्ड को यह पता लगाने का आदेश दिया है कि विद्यमान कोयला खानों में बिना अधिक बेकारी उत्पन्न किये विद्युतीकरण किस सीमा तक किया जा सकता है। साथ ही, एक ऐसी शर्त भी लगा दी गई जिससे मालिकों का यह अनिवार्य हो गया है कि जब नई खान खोलने की आज्ञा मिले, तो समस्त नये विकास कार्यक्रम कोयला खोदने और ले जाने में मशीनों का अधिक से अधिक प्रयोग करेंगे।

(६) **राष्ट्रीयकरण का प्रश्न**—राष्ट्रीयकरण के बारे में भी बहुत सा हाहल्ला मचाया गया है। हमें विश्वास है कि सरकार केवल राष्ट्रीयकरण की ही खातिर वर्तमान कोयला खानों का राष्ट्रीयकरण नहीं करेगा किन्तु जब सरकार यह देखे कि राष्ट्रीय हित की दृष्टि से कोक बनाने के कोयले के भण्डारों को सुरक्षित रखने के लिये क्षति पूर्ति करके कोयला खानों का अधिग्रहण आवश्यक है अथवा ५०० टन प्रति घन्टा घोने वाले विशाल कारखानों में जिसकी लागत एक करोड़ रुपये से अधिक होगी और जिसे स्थापित करना निजी पूंजीपतियों के वश की बात न होगी प्रयोग करने के लिये कोयले का उत्पादन बढ़ाना आवश्यक है अथवा जब सरकार बेचा जाने वाली

एसी भूमि खरीदे जिसमें बढ़िया कोयल की खानें हो और जिन्हे उसके मालिक प्रति योगितापूर्वक न खोद सकें या उन्हे खोदने में इतना खर्चा हो जो उनके साधनो से बाहर हो तो सरकार द्वारा खानें अपन अधिकार में लेन में किसी को कोई आपत्ति नही होनी चाहिए।

(७) श्रमिको की समस्या—खानो में काम करन वाले श्रमिको की दशा भी खराब है जिसक सुधार के लिए भारत सरकार प्रयत्नशील है। एक नये अधिनियम के अनुसार अब कोयला खानो में काम करन वाले श्रमिको से ४८ घ टे प्रति सप्ताह से अधिक काय नही लिया जा सकता। इसमें भूमि के ऊपर काय करन वालो के लिये ६ घटे प्रति दिन तथा भूमि के नीचे काय करन वालो के लिए ८ घटे प्रति दिन का काय निर्धारित किया गया है।

STANDARD QUESTINSO

1 *Briefly trace the origin progress present position and* problems of the Indian Coal Industry

2 D scuss the *principal* problems of the Indian coal Industry and suggest remedies to solve them

अध्याय १५

औद्योगिक अर्थ प्रबन्धन की समस्याएँ

(Problems of Industrial Finance)

प्रारम्भिक—

देश के जनसाधारण का जीवन स्तर ऊँचा करने के लिए औद्योगीकरण नितान्त आवश्यक है। औद्योगीकरण के बिना देश के आर्थिक कलेवर में सन्तुलन नही आ सकता। परन्तु औद्योगीकरण का मार्ग कोई पुष्पों की शैय्या नही है, इसमें अनेक कठिनाइयाँ हैं, जिनमें से एक महत्वपूर्ण कठिनाई उद्योगों के लिए पूँजी प्राप्त करने की है। नए-नए उद्योग स्थापित करने के लिए, पुराने उद्योगों का पुनर्सङ्गठन तथा पुनर्निर्माण करने के लिए तथा युद्ध एवं मन्दी जैसे आर्थिक सकटों से उद्योगों को निकाल कर उन्नत बनाने के लिए पूँजी की आवश्यकता होती है।

किसी भी व्यापार को, चाहे वह अल्प परिमाण पर हो अथवा वहुपरिमाण पर हो, प्रारम्भ करने एवं भविष्य में उसके विस्तार के लिए पूँजी की आवश्यकता होती है। पूँजी के बिना कोई व्यापार चल नही सकता। यह आधुनिक औद्योगिक तथा व्यापारिक सस्थाओं का जीवन है। पूँजी की ही कमी के कारण अनेक औद्योगिक सस्थाएँ असफल हो जाती हैं तथा व्यापार भी शिथिल हो जाता है। प्रत्येक औद्योगिक सस्था को मुख्यतः दो कामों के लिए पूँजी की आवश्यकता होती है—(१) स्थाई सम्पत्तियाँ, जैसे—भूमि, मशीन, यन्त्र आदि के क्रय के लिए, जिसे अस्थाई अथवा अचल पूँजी कहते हैं और (२) अस्थायी सम्पत्तियाँ, जैसे कच्चा माल खरीदने, उसे निर्मित करने, विज्ञापन आदि दैनिक खर्चों के लिए, जिसे कार्यशील अथवा चल पूँजी कहते हैं।

भारत में सर्व प्रथम तो पूँजी का अभाव है और जो पूँजी है भी उसे औद्योगिक विकास में लगाने के लिए कोई सङ्गठित संस्थायें नही हैं। हमारे देश में औद्योगिक बैंकों का विकास नही हुआ है और देश के व्यापारिक बैंक न तो इतने साधन रखते हैं कि उद्योगों की वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा कर सकें और न ही उन्हें इस कार्य में कोई रुचि है। यह समस्या केवल बड़े पैमाने के उद्योगों के सामने ही नही है वरन्

मध्यम तथा छोटे पैमाने के उद्योग भी इससे पीड़ित है। ग्रामीण क्षेत्रों में छोटे पैमाने के उत्पादकों को कच्चा माल खरीदने के लिए वस्तु के उत्पादन व्यय को पूरा करने के लिए तथा अपने जीवन निर्वाह के लिए धन की आवश्यकता होती है। इस कार्य के लिये उन्हें गाँव के महाजन का सहारा लेना पड़ता है जोकि बहुत ऊँची दर से ब्याज वसूल करता है। मध्यम आकार के उद्योगों को भी अपनी आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिए साहूकारों अथवा व्यापारिक बैंकों पर निर्भर रहना पड़ता है। उनकी दशा भी उतनी ही दयनीय है जितनी छोटे उत्पादकों की। बड़े पैमाने के उद्योगों की हालत भी पूर्णत सन्तोषजनक नहीं कही जा सकती।

औद्योगिक संस्थाओं के लिए पूंजी के श्रोत--

भारतवर्ष में उद्योगों को निम्न साधनों से आर्थिक सहायता प्राप्त होती है —

स्थायी पूंजी—

(१) अंश निर्गमन द्वारा।

(२) ऋण पत्र निर्गमन द्वारा।

कार्यशील पूंजी—

(३) जन निक्षेप अथवा जनता की धरोहर द्वारा।

(४) बैंक से ऋण लेकर।

(५) प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं से ऋण लेकर।

(६) विशिष्ट अर्थ संस्थाओं से ऋण लेकर।

(१) अंश निर्गमन द्वारा

अधिकांशत अंशों द्वारा ही पूंजी प्राप्त की जाती है। स्थायी पूंजी प्राप्त करने का यह अत्यन्त लोकप्रिय साधन है। स्थायी सम्पत्तियों के क्रय के लिए जो पूंजी लगाई जाती है वह स्थायी रूप से उद्योगों में फँस जाती है इसलिये उसे ऐसे साधनों से प्राप्त किया जाता है जो स्थायी रूप से उस उद्योग में लगाए रहे और वापिस निकालने पर आग्रह न करें। स्पष्टत ऐसी पूंजी अंश निर्गमन द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। अंशों के निर्गमन की दशा में उद्योगों को अपनी सम्पत्ति पर बिना किसी प्रकार का भार डाले स्थायी पूंजी प्राप्त हो जाती है, अस्तु यदि उद्योग आवश्यक समझें ऋण द्वारा आवश्यकता के समय अतिरिक्त अर्थ का भी प्रबन्ध कर सकते हैं। अंशों पर लाभांश भी उसी दशा में दिए जाते हैं जब पर्याप्त लाभ होता है अन्यथा लाभांश देना अनिवार्य नहीं होता। परन्तु इतने लाभ होने हुए भी पूंजी के इस स्रोत में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि अंश पूंजी एक सीमा से अधिक नहीं बढ़ाई जा सकती। इसी प्रकार

यदि अशो के अधिकारो में कुछ परिवर्त्तन करना हो, तो कम्पनी ऐसे अशधारियो की सम्मति के बिना जिनके अधिकार प्रभावित होते है, उनके अधिकारो में परिवर्त्तन नही कर सकती।

(२) ऋण-पत्र निर्गमन द्वारा

बढ़ते हुए व्यापार की पूँजी सम्बन्धी आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए कभी कभी औद्योगिक संस्थाओ को ऋण लेने की आवश्यकता पड जाती है। दीर्घकालीन ऋण की प्राप्ति अधिकांशतः बन्ध (Bonds) तथा ऋण पत्रो द्वारा की जाती है। ऋण-पत्र एक प्रकार का अनुबन्धात्मक प्रलेख होता है, जिसके द्वारा ऋण प्राप्त किया जाता है तथा जिसमें मूलधन का भुगतान होने तक किसी निश्चित सामयिक अवधि में प्रतिशत ब्याज देने की प्रतिज्ञा होती है। ऋण-पत्रो के निर्गमन द्वारा उन रूढिवादी व्यक्तियो से पर्याप्त पूँजी प्राप्त की जा सकती है, जो बिना अधिक जोखिम उठाए निश्चित आय चाहते है। अशो के निर्गमन की अपेक्षा यह साधन मितव्ययी भी है, क्योकि इस प्रकार का ऋण यदि अन्य किसी रीति से लिया जाय, तो अधिक ब्याज देना पडता है, किन्तु ऋण पत्रो पर निश्चित रूप से कम ब्याज चुकाना पडता है। इतना होते हुए भी ऋण पत्र भारत में अभी लोकप्रिय नही हुए है। सन् १९२७-२८ में भारत की कुल औद्योगिक पूँजी का ९०% भाग पूर्वाधिकार अशो में, ७५% साधारण अशो में और शेष ६% ऋण पत्रो के रूप में प्राप्त किया जाता है। हमारे देश में ऋण-पत्रो की अप्रियता के प्रमुख कारण निम्नलिखित है :—

भारत मे ऋण पत्र अप्रिय क्यो ?—

(१) **स्वतन्त्र बाजार का अभाव**—ऋण पत्रो के लिए हमारे देश में अन्य देशो की भाति स्वतन्त्र बाजार नही है। भारतीय विनियोजक तब तक अपना धन किसी उद्योग मे नही लगाते जब तक उन्हे लाभ का पूर्ण आश्वासन नही होता। वे प्रायः भूमि क्रय में अथवा कृषि कार्य मे रुपया लगाना अधिक उपयुक्त समझते है। यही कारण है कि निश्चित लाभ या ब्याज वाले ऋण पत्र भी उन्हे आकर्षित नही करते। फिर भारतीय ऋण पत्र अधिक ऊँचे अधिमान के होते है, इसलिए साधारण विनियोजक की पहुंच के बाहर है। बीमा कम्पनियाँ बीमा अधिनियम की धारा २७ के कारण औद्योगिक ऋण पत्रो का क्रय नही कर सकती। भारतीय बैंक भी इस विषय में स्टेट बैंक की नीति का अनुसरण करते है तथा विनियोग प्रन्यासो (Investment Trusts) का तो अभी उदय ही हुआ है, इसलिए वे औद्योगिक व्यवसायो में धन विनियोग करने में असमर्थ रहते हैं।

ऋण पत्रो पर तथा उनके हस्तान्तरण पर मुद्राक-कर भी अधिक देना पडता है, जिससे ऋण पत्रो का हस्तान्तरण स्वतन्त्र रूप से नही हो सकता। उदाहरणार्थ,

बम्बई में पृष्ठांकित होकर अथवा अन्य किसी प्रलेख द्वारा हस्तान्तरित होने वाले ऋण पत्रो पर ७ रु० ८ आ० प्रति हजार रुपया मुद्रांक कर (Stamp Duty) लिया जाता है। प्रत्येक हस्तान्तरण पर इतना ही और अतिरिक्त शुल्क लगता है। वाहक ऋण-पत्रो पर निगमन के समय ही १५ रु० प्रारम्भिक शुल्क लगता है। य कम्पनी के लिए अत्यन्त भार रूप ह। इसके साथ ही विनियोक्ताओं का भी प्रत्येक हस्तान्तरण पर *काफी व्यय देना पडता है, इसलिए भी जनता विनियोग के ऐसे खर्चीले साधन को* अपनाना नही चाहती। इसके अतिरिक्त ऋण पत्रो का कम सख्या म निगमन होना भी उनके स्वतन्त्र बाजार होन में बाधक है। अभी तक केवल जूट मिलो के ऋण पत्रो को छोडकर अन्य सभी कम्पनियो के ऋण पत्र जनता तक पहुँच ही नही पाये है, क्योकि जैसे ही उनका निर्गमन होता है वैसे ही कतिपय धनी लोग उन्हे खरीद लते ह। यहाँ यह कहना अनावश्यक न होगा कि टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी के ६० लाख रुपये के सम्पूर्ण ऋण पत्र मध्य भारत के राजप्रमुख न ही खरीद लिये थे। भारतीय ऋण पत्र अधिक मूल्य वाले होते है, जैसे—५००), १,०००), १०,०००) के इत्यादि, अतएव सब साधारण जनता की पहुंच के बाहर होते ह।

(२) **बैंकों की प्रवृत्ति**—ऋण पत्रो की लोकप्रियता में बैंको का व्यवहार भी अधिक बाधक हुआ है। ऋण पत्र भी निगमित करन वाले प्रमण्डल भारतीय बैंको की दृष्टि म गिर जाते ह और उन्हे वे फिर वैसी साख सुविधायें प्रदान नहीं करते जैसे अन्य दशाओ म करते है, क्योकि कम्पनी की सम्पत्ति पर ऋण पत्रो का पहला प्रवरण होता है, इसलिए बैंक द्वारा लिए हुए ऋण के लिए प्रतिभूति कम रहती है।

(३) **निर्गमन की अनाकर्षक शर्तें**—भारतीय ऋण पत्रो मे वे विशेषतायें नही होती, जिनसे जनता स्वय लालायित होकर उन्हे खरीदने के लिए दौड। भारतीय विनियोगको को उनकी विभिन्न रुचियो के अनुकूल विभिन्न विशेषता वाले ऋण पत्र उपलब्ध नही है। अन्य देशो में ऋण पत्र विभिन्न आकर्षक सुविधाओ वाले होते है, जैसे—वहा कुछ ऋण-पत्र प्रत्याभूतित होते है, कुछ के लिए भुगतान होने पर अधिक प्रव्याजि देने का प्रलोभन दिया जाता है, कुछ ऋण पत्रधारियो को एक या अधिक सचालक नियुक्त करने का अधिकार होता है तथा कुछ ऋण पत्र एस होते है जो साधारण अशो को रियायती दर पर खरीद सकते है, किन्तु भारत में जहां मुद्रा-मण्डी भी सुसगठित नही है वहाँ यह नितान्त आवश्यक है कि ऋण पत्रो के निर्गमन की शर्ते उदार एव आकर्षक हो।

(४) **राजकीय अर्थनीति मे उदारता का अभाव**—ऋण पत्रो की अप्रियता *का कारण यह भी है कि यहा सरकार की सार्वजनिक अर्थ एव प्रशुल्क नीति उदार* नही रही। भारत में विदेशी शासन की नीति यहाँ के उद्योग धन्धो को विदेशी स्पर्धा मे पर्याप्त और उचित सरक्षण प्रदान नही कर सकी। जब कभी कोई उद्योग प्रारम्भ हुआ,

भारतीय विनियोगक निश्चित लाभ अथवा सफलता के आश्वासन के अभाव म उसम पू जी लगान म हिचकते रहे । सरक्षण के प्रश्न के अतिरिक्त अन्य भी कई चीजें है जो उद्योगों म पू जी के प्रवाह को रोकता रही ह जसे—उ पादन करो का लगाना उपभोग की वस्तुओ के सम्बन्ध म अराष्ट्रीय आयात नीति का अनुसरण करना इत्यादि । ये बातें एसी है कि जिनसे यहा का औद्योगिक व्यापार प्रगतिशील नही होता और फिर न यहा के विनियोक्ता ऋण पत्रो म धन लगाना उचित ही समझते है ।

(५) अत्यधिक निगमन व्यय—ऋण-पत्रो के निगमन म व्यय भी बहुत पडता है । निगमन करते समय हा व्याज की दर भा निश्चित कर दी जाती है । अभी तक ५ से ६ प्रतिशत तक यह व्याज की दर प्रचलित है । भारत म इन पर भारी व्याज के अतिरिक्त जिसकी दर केवल प्रमण्डल की साख पर ही नहा वरन् निगमन के समय निगमन की मात्रा तथा अभिगोपन की ख्याति पर भी निभर करती है प्रारम्भिक वधानिक एव मुद्राक व्यय व अभिगोपन कमीशन भी देन पडते ह अत कभी-कभी तो ऋण पत्र निगमन म इतना अधिक व्यय हो जाता है कि कम्पनी उनका निगमन करना भी उचित नहा समझती ।

(६) सलाह देने वाली सस्थाओं का अभाव—भारतवष म एसी कोई मान्य सस्था नही है जहा विनियोगक ऋण पत्रो के विषय म आवश्यक जानकारी प्राप्त कर सक । बक अवश्य अपन ग्राहको को इस विषय म उचित सम्मति प्रदान करती हे पर दुर्भाग्य से भारत म आज भी एसे नगर हे जहाँ बक नही है । स्कन्ध विनिमय विपणि (Stock Exchanges) भी केवल बन्दरगाह के नहरो म ही हे अतएव दूर दूर तक फले हुए विनियोगको को इनके विश्वसनीय एव स्वीकृत सदस्यो से सम्पर्क स्थापित करन के बहुत थोड अवसर हे ।

(३) जन-निक्षेप

भारतीय कम्पनियो की अर्थ पूर्ति के लिए जन निक्षेप स्वीकार करना भी इस देश की औद्योगिक अर्थ व्यवस्था की एक अनोखी विशेपता रही है । जनता द्वारा कम्पनिया म निक्षेप इसलिए रख जाते थ कि बकिंग विकास की प्रारम्भिक स्थिति म जनता का विश्वास बको म इतना नही था जितना कि कम्पनियो म । अर्थ पूर्ति की यह पद्धति बम्बई और अहमदाबाद की सूती वस्त्र मिल कम्पनिया म अधिकता से पाई जाती है जिनकी कुल पूँजी का क्रमश ११% तथा ३६% जन निक्षेपा से आते थ ।*
बात यह है कि जिन लोगा न इन स्थाना म उद्योग प्रारम्भ किए वे महाजन आदि थ जिनम जनता का बडा विश्वास था इसलिए वे अपनी बचत की राशि उन्हे व्याज

* Report of the Central Banking Enquiry Committee 1931

पर सौंप देते थे। एक बड़ा आकर्षण तो यह है (जमा करने वालों को) प्रबंध अभिकर्तृत्व वेतन में भाग मिलने का था। यदि प्रबंध अभिकर्तागण अच्छी ख्याति के हुए तो वे केवल ब्याज पर ही निक्षेप प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकार प्राप्त की हुई पूँजी की लागत ऋणपत्रों पर प्राप्त की हुई पूँजी से कहीं अधिक मितव्ययी बैठती है और सबसे बड़ी बात तो यह है कि किसी प्रकार का प्रभाव इसमें उदय नहीं होता क्योंकि निक्षेपकों को अन्य अल्पकालीन ऋणदाताओं के समान अधिकार होते हैं। बम्बई राज्य के प्रमण्डल केवल अपनी कार्यशील पूँजी का भाग ही नहीं वरन् विस्तार एवं विकास योजना की अर्थ पूर्ति भी जन निक्षेपों के द्वारा करते हैं। निम्नलिखित आँकड़ों से स्पष्ट है कि अहमदाबाद का सूती वस्त्र व्यवसाय जन निक्षेपों पर काफी सीमा तक निर्भर है।

पूँजी का स्रोत	कुल पूँजी का प्रतिशत	
	बम्बई	अहमदाबाद
अंश पूँजी	(१२१४ ला० रु०) ४६०	३१% (३४० ला० रु०)
ऋण पत्र	(२३८ ला० रु०) १०%	१% (८ ला० रु०)
प्रबंध अभिकर्ताओं से	(५३२ रु०) २१%	२४% (२६४ ला० रु०)
जन निक्षेपों से	(२७३ रु०) ११%	३६% (४ ६ ला० रु०)
बैंकों से	(२२६ रु०) ६%	४% (४२ ला० रु०)

उपर्युक्त आँकड़ों से यह स्पष्ट है कि बम्बई का वस्त्र व्यवसाय जन निक्षेपों पर कम अनुपात में निर्भर रहता है। भारत के अन्य औद्योगिक केन्द्रों में यह पद्धति नहीं पाई जाती है।

जन निक्षेपों की ब्याज की दर कम्पनियों एवं प्रबंध अभिकर्ताओं की साख एवं स्थायित्व की दृष्टि से भिन्न भिन्न कम्पनियों में भिन्न भिन्न होता है। शुरू में निक्षेप ६ से १२ माह की अवधि के लिये रखे जाते थे किन्तु बाद में उनका नवकरण होता रहता था। साधारणतः ब्याज की दर ४½% से ६½% तक रहती है। जिन कम्पनियों की साख अच्छी होती है वे कम ब्याज पर भी निक्षेप आकर्षित करने में सफल हो जाते हैं किन्तु मंदी के समय निक्षेप कम हो जाते हैं। जन निक्षेप के द्वारा औद्योगिक संस्था की पूँजी का कलेवर लोचदार रहता है क्योंकि वह निक्षेप जन के कारण बंधक आदि से मुक्त रहती है। यदि जन निक्षेप लम्बी अवधि के लिए हों तो फिर कम्पनी को ऋण पत्र निर्गमन करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। यही नहीं यदि

कम्पनी को अधिक लाभ हो रहे हो, तो लाभाश न बढाते हुए लाभो का कुछ भाग सचित कोष में रखा जा सकता है, जिससे उसकी भावी विस्तार योजनाओं को बिना नवीन पूँजी के कार्यान्वित किया जा सकता है।

इतने लाभो के होते हुए भी निक्षेपों की सबसे बडी हानि यह है कि मन्दी अथवा आपत्ति के समय मे जनता भयभीत होकर उनको वापस माँग लेती है और ऐसी परिस्थिति में कम्पनी को बडी हानि उठानी पडती है तथा अर्थ सकट का सामना करना पडता है, अतएव इन्हे कभी-कभी 'अच्छे समय का साथी' कहा जाता है। यह आवश्यकता के समय के साथी '(Friends in need)' नही है और इसलिए इन पर पूर्णतः निभर नहीं रहा जा सकता। दूसरे सरलता एव न्यून ब्याज पर ऋण-प्राप्त किये जाने की सुविधा से पारिकाल्पनिक व्यापार को प्रोत्साहन मिलता है। इसी से औद्योगिक सस्थाये अनि व्यवसाय के प्रलोभन में फँस जाते है, जिससे कम्पनियो एव निक्षेपको तथा अशधारियो, सभी को हानि उठानी पडती है।

(४) बैंको से ऋण लेकर

सामान्यत. कम्पनी की प्रारम्भिक स्थायी पूँजी अश एव ऋण पत्रो के निर्गमन से ही प्राप्त करनी चाहिये। आदर्श व्यवस्था तो वह है, जिसमें न्यूनतम कार्यशील पूँजी भी इन्ही साधनो द्वारा प्राप्त की जाय। हाँ, न्यूनतम कार्यशील पूँजी के अतिरिक्त भावी पूँजी सम्बन्धी आवश्यकताओ को बैंक से ऋण लेकर पूरा किया जा सकता है। कम्पनी जिन बैंकों से आर्थिक सहायता प्राप्त करती है, ये प्रायः दो प्रकार के होते है—(क) व्यापारिक बैंक और (ख) औद्योगिक बैंक। भारत में जितने भी सयुक्त स्कन्ध बैंक हैं, ये सभी व्यापारिक कार्यो के लिए ही ऋण देते हैं, औद्योगिक कार्यों के लिये नही। भारत में अभी तक ऐसा कोई भी औद्योगिक बैंक नही है जो इस अर्थ की पूर्ति कर सके, अतः औद्योगिक कार्यो के हेतु औद्योगिक बैंक की स्थापना अति आवश्यक है। इस बात की सिफारिश औद्योगिक कमीशन तथा 'बैंक इन्क्वायरी कमेटी' ने भी की है।

व्यापारिक बैंक लम्बी अवधि के लिए उद्योगो को ऋण दे भी नही सकते, क्योंकि अल्पकालीन निक्षेपों से दीर्घकालीन ऋण प्रदान करना सुदृढ बैंकिंग सिद्धान्तो के विरुद्ध होता है, अतएव भारतीय बैंक कम्पनियो को केवल कार्यशील पूँजी अल्प-कालीन ऋणो द्वारा देते रहे है, किन्तु अल्पकालीन ऋण भी विचित्र शर्तों पर दिया जाता है। वे शर्तें निम्नलिखित है :—

बैंक ऋण की कठिन शर्तें —

(१) बैंक कम्पनी के व्यापार में लगे हुए स्टॉक का अधिकाश भाग रहन या बन्धक के रूप में रखकर ऋण दिया करते है। रहन तथा बन्धक (Pledge

and Hypothecation) में अन्तर है। जब किसी कम्पनी का स्टॉक रहन किया जाता है तो वह ऋण लेने वाली कम्पनी के गोदामों में ही एकत्रित रहता है। कम्पनी को अपने स्टॉक का विवरण निश्चित अवधि पर बैंक को भेजना पड़ता है। बन्धक रखने की दशा में स्टाक बैंक की सुरक्षा में रखना पड़ता है और जिन गोदामों में वह एकत्रित होता है, उन पर बैंक का नाम डाल दिया जाता है तथा कम्पनी का उससे कोई सरोकार नहीं रहता। स्पष्ट है कि बन्धक की शर्तें कितनी कठिन हैं, अतः कोई भी कम्पनी अपने स्टाक को रहन अथवा बन्धक के रूप में रखना पसन्द नहीं करती क्योंकि इससे कम्पनी की साख एवं प्रतिष्ठा पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

(२) *जब किसी कम्पनी के स्टाक को रहन करके कोई बैंक ऋण दिया* करती है तो वह ऋण लेने वाली कम्पनी से एक प्रतिज्ञा पत्र लिखवाती है, जिस पर कम्पनी तथा उसके प्रबन्ध अभिकर्त्ता के हस्ताक्षर होते हैं। अगर कम्पनी का स्टॉक बैंक के पास बन्धक के रूप में रखा जाता है तो प्रबन्धक अभिकर्त्ता की वैयक्तिक प्रतिभूति नहीं ली जाती है।

(३) ये ऋण प्रारम्भ में प्रायः १२ माह के लिए ही दिए जाते हैं, बाद में उनका नवकरण करना बैंक की इच्छा पर निर्भर करता है।

(४) ब्याज की दर ऋण लेने वाले प्रमण्डल की साख के अनुसार कम अथवा अधिक होती है। जो कम्पनी सुव्यवस्थित होती है, उससे तो इम्पीरियल बैंक आफ इण्डिया की दर पर ही ब्याज लिया जाता है, किन्तु यदि किसी कम्पनी की दशा अच्छी नहीं होती तो उससे ये बैंकें १% या २% अधिक ब्याज लिया करती हैं।

(५) अगर कोई रोकड़ ऋण (Cash Credit) लेता है तो ये बैंकें दिये हुए ऋण का लगभग आधा भाग ब्याज के रूप में देने के लिए विवश करती हैं जोकि अत्यन्त कठिन शर्त है।

(६) ये बैंकें बिना किसी प्रतिभूति के ऋण नहीं देती। यदि प्रतिभूति के रूप में रखा हुआ माल निर्मित माल है तो लगभग ३०% का अन्तर ऋण राशि एवं माल के मूल्य में रखते हैं किन्तु निर्मित माल न होने की दशा में यह अन्तर और भी अधिक हो जाता है।

अस्तु स्पष्ट है कि बैंकों से ऋण प्राप्त करने में भारतीय प्रमण्डलों को कितनी असुविधाओं एवं कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। निम्न रीति से बैंक उनकी सहायता कर सकती है —

बैंक सहायक कैसे हों ?—

(१) **जर्मन बैंक का आदर्श**—वर्तमान व्यापारिक बैंक जर्मनी के व्यापारी अधिकोषों की तरह उद्योगों की आर्थिक सहायता कर सकती हैं। जर्मनी में कम्पनी

तथा बैंक के बीच चल लेखा (Current A/c) द्वारा व्यापार होता है, जिसका सन्तुलन दैनिक न होकर सामयिक, विशेषत षटमासिक होता है, किन्तु इन चल लेखों में तथा भारतीय बैंको में पाये जाने वाले प्रचलित चल लेखों में काफी अन्तर है। वहा दोनों के बीच पहले से ही निश्चित हो जाता है कि—(अ) उद्योग अधिक से अधिक कितना ऋण बैंक से ले सकेगा, (ब) लिया हुआ ऋण कितनी अवधि के भीतर वापस करना होगा, (स) लिए हुए ऋण की प्रतिभूति क्या होगी, तथा (द) अन्य शर्तें क्या होगी। जो राशि बैंक से मिलती है वह कार्यशील पूँजी के रूप में ही प्रयोग की जानी चाहिए ऐसा अनिवार्य नहीं होता। उस ऋण राशि का उपयोग उद्योग के विकास के लिए भी किया जा सकता है। नवीन उद्योग को प्रारम्भ करने के लिए जिस अंश पूँजी की आवश्यकता होती है, उसका अधिकांश भाग भी उन्ही अधिकोषों द्वारा दिया जाता है। यदि कोई एक संस्था सम्पूर्ण भार को नहीं सभाल पाती तो इस प्रकार की अनेक संस्थाए मिलकर उत्तरदायित्व का अपने ऊपर ले लेती है। उनके इस प्रकार के सगठन को कन्सारट पद्धति (Consortium Model) कहते है। इस कार्य को करने के लिए बैंक अपना एक पृथक उद्योग विभाग रखती थी, जिसकी विनियोग पूँजी भी पृथक रखी जाती थी। इस विभाग के सचालन के लिए तांत्रिक सलाह देने के हेतु एवं औद्योगिक सम्पत्ति का मूल्याकन करने के लिये विशेषज्ञों की नियुक्ति की जाती थी।

उद्योगों के साथ घनिष्ट सम्बन्ध रखने के लिए बैंक अपने प्रबन्धक अथवा उनके अन्य प्रतिनिधि औद्योगिक प्रमण्डल की संचालन समिति में भेजती थी, जिससे उनके कार्यों का नियन्त्रण होता था तथा बैंक भी निश्चित हो जाती थी कि उनका ऋण राशि का अपव्यय नहीं हो रहा है।

(२) व्यापारिक बैंक कुछ ऐसी निश्चित राशि के अंशो का निगमन करें, जिसकी पूँजी में केवल उद्योगो को ही आर्थिक सहायता दी जाय।

(३) **उदार नीति का पालन हो**—यद्यपि प्रतिभूति की प्रकृति एवं उसकी यथेष्टता के निर्णय करने का अधिकार पूर्ण रूप से बैंको का ही है, फिर भी उन्हे कुछ उदार नीति का पालन करना चाहिए। यह जर्मन बैंको की नीति का रहस्य था, जिसे वे औद्योगिक कम्पनियो के लिये उपयोग में लाती थी। बैंको को चाहिए कि वे औद्योगिक प्रमण्डलों को आर्थिक सुविधाएँ वैयक्तिक साख पर भी दिया करें, जिससे उनको कार्यशील पूँजी मिलती रहे, क्योंकि वे तरल सम्पत्ति की प्रतिभूति नहीं दे सकते।

(४) जिन बैंको का औद्योगिक प्रमण्डलों से सम्बन्ध रहता है, वे अपनी प्रबन्ध व्यवस्था में ऐसे व्यक्ति रखें जो सामान्य औद्योगिक प्रबन्धन में पूर्ण ज्ञान रखने हों। इससे औद्योगिक संस्थाओं से व्यवहार रखने में सरलता रहेगी।

(५) जमन बका की भाति अपन ग्राहक प्रमण्ला मे निस्ट मम्बध स्थापित करन के लिए वे अपनी प्रबन्ध समिति का एक मदस्य उनकी पयवेक्षण समिति (Board of Supervisors) म अपन प्रतिनिधि के रूप म रख। अथ प्रबन्धन क विषय म अनुभव के कारग ये प्रतिनिधि प्रमण्डला क लिए तो हितकर सिद्ध हागे हा मम्बधित बक को भी प्रमण्ल की वास्तविक स्थिति का ज्ञान करान और इस प्रकार आशङ्काजनित हानि की सम्भावनाय कम करन म सहायक होगे।

(६) बक प्रमण्डला को उनक नवान पू जी प्राप्त किए जान वाल अश एव अभिगापन ऋण पत्रा के निगमन म जमन बक की भाति निगमन के कुल अथवा कुछ भाग को स्वय स्वीकार करके और बाद म सुअवसर उपस्थित होन पर उन्ह जनता को सौप करके सहायता कर सकती है। इसम अपनी हानि के भय को कम करन के लिए कई बक परस्पर सयुक्त रूप से काय का बीडा उठा सकती है। एसी बका म सामान्य बकिंग विभाग के अतिरिक्त एक विनियोग विभाग और हो जिसम उनके निजी अथ साधनों का कुछ सीमित भाग समय समय पर एसे कार्यों क लिए जान पर लगाया जाय। निश्चय ही इन कार्यों को करन म बडी विशाल पू जी एव औद्योगिक अनुभव की आवश्यकता होगी। प्राय बडी बडी बक भी इस काय को करन म हिचकती है। कनाडा आदि देशो म तो केवल यही काम करन वाला बक पृथक स्थापित हो गई है।

(७) प्रत्येक प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्र म बका की एक एक स्थानीय सलाह समिति होनी चाहिए। ये समितियाँ केवल अपनी सम्बन्धित कम्पनिया की अथ पूर्ति करन म सहायता प्रदान ही करती वरन् बका के अनुदार एव अव्यवहार बर्ताव क सशय का भी अपन ऋण लेन वाला के मस्तिष्क से निकाल देती है।

दूसरा सुझाव औद्योगिक अधिकोषो की स्थापना—

यह तो निश्चय है कि उदार नीति के उपरान्त भी व्यापारिक बक ही अकेल कम्पनिया की अथ पूर्ति नही कर सकता क्योंकि उनका औद्योगिक क्षेत्र का ज्ञान सीमित होता है तथा औद्योगिक सहायता क लिए एक बडी मात्रा म स्थाई पू जी की आवश्यकता होती है। व्यापारिक बका म इतनी सामथ्य नही होती कि व देश की औद्योगिक आवश्यकताओ को पूरा कर सक अतएव अल्पकालीन तथा दीघकालीन ऋणा की समस्याय भिन्न भिन्न होन से काय क्षमता की दृष्टि स यह उत्तम होगा कि पृथक रूप स औद्योगिक बको की स्थापना की जाय। आजकल भारत म इस प्रकार की केवल एक ही सस्था है जो गत २५ वर्षो म काम कर रही है और वह है कनाडा इण्डस्ट्रियल एण्ड बकिंग सिण्डीकेट लिमिटेड उनींगी। यह भी स्पष्ट है कि केवल एक अधिकोष से सम्पूर्ण देश की औद्योगिक अथ आवश्यकताय कैसे पूरी हो सकती है अत नवीन औद्योगिक अधिकोषो की आवश्यकता है जिनके पास दीघकालीन विनियोग क

लिए पर्याप्त साधन हो। इन अधिकोषो को केवल औद्योगिक अर्थ सुविधायें ही देनी चाहिए, जिससे व्यापारिक बैकिङ्ग क्षेत्र औद्योगिक बकिङ्ग क्षेत्र से भिन्न हो एव उनकी क्रियायें भी पृथक पृथक हो।

(५) प्रबन्ध अभिकर्त्ता प्रणाली

(Managing Agency System)

भारतवर्ष के प्रत्येक महत्वपूर्ण उद्योग म प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ का बहुत बडा भाग रहा है। भारतीय प्रशुल्क मण्डल ने सूती वस्त्र उद्योग के विषय में जो रिपोर्ट १६३१ मे प्रकाशित की थी, उसमे यह स्वीकार किया गया था कि "केवल उन बडे उद्योगो को छोड कर जिन्हे भारत में राज्य ने सङ्गठित किया अथवा जो उसकी देख-रेख मे स्थापित किए गये, लगभग प्रत्येक महत्वपूर्ण उद्योग इन्ही प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ के साहस के कारण जन्म पा सका है।" अब भी अधिकतर औद्योगिक सस्थायें, विशेषकर सीमित उत्तरदायित्व वाली पब्लिक कम्पनिया इन्ही के हाथ में हैं। उदाहरण के लिए, जमशेदपुर का लोह व इस्पात का उद्योग, बम्बई व अहमदाबाद का सूती वस्त्र उद्योग, बगाल व बिहार का जूट उद्योग देश के सबसे अधिक सङ्गठित उद्योगो मे से हैं, परन्तु इन उद्योगो में ऐसा शायद ही कोई मिल हो जो किसी प्रबन्ध अभिकर्त्ता के परोक्ष नियन्त्रण में नही है। प्रबन्ध अभिकर्त्ता देश के औद्योगिक क्षेत्र में यह स्थिति कमे प्राप्त कर सके, इस प्रश्न का उत्तर हमें उन परिस्थितियो में मिलेगा जो भारत की अपनी अनोखी विशेषता रही है।

प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ का उदय—

वास्तव मे प्रबन्ध अभिकर्त्ता पद्धति का उदय भारत के औद्योगिक विकास के साथ-साथ हुआ। यहाँ उद्योग के प्रारम्भिक प्रमुख विकासकर्त्ता अंग्रेज व्यवसायी थे, जो पहले यहा कुछ व्यापारिक सस्थाओ के प्रतिनिधियो की भाँति आये। पहिले तो इन्होने सामान्य व्यापार का काम किया, परन्तु बाद मे अन्य कामो की ओर भी आकर्षित हुए। इन्होने देखा कि भारत एक विशाल कृषि देश है, जहाँ भरपूर प्राकृतिक साधन है, जोकि विशाल आबादी, पर्याप्त श्रम की सुलभता होते हुए भी औद्योगिक दृष्टि से बिल्कुल पिछडा हुआ है, क्योकि जनता दूसरो को उद्योग में लगाने के लिए द्रव्य देने म सकोच करती है। पूँजी के अतिरिक्त और सब साधन यहाँ है, जिनका कि होना औद्योगिक उन्नति के लिए आवश्यक है।

अस्तु अपने लाभ के लिए उन्होने आवश्यक पूँजी स्वय प्रदान करने का निश्चय किया एव अपने मित्रो को भी इसके लिए तैयार किया। उद्योग स्थापित कर दिये गए, साझेदारी बन गई और उद्योग चलाने के लिए आवश्यक पूँजी दे

दी गई। हानि एवं अन्य आपत्तियों के समय में भी उन्होंने उद्योग को बचाने के लिए आर्थिक मदद दी, क्योंकि बाहरी जनता से तब ही पूंजी प्राप्त करने की आशा की जा सकती थी जबकि यह उद्योग स्पष्टतः सफल होता प्रतीत हो। जब यह दशा पहुँच जाती थी तो वे उसे कम्पनी में परिवर्तित कर देते और अपनी पूंजी का बड़ा भाग वापिस लेकर उसे फिर किन्हीं अन्य प्रयत्नों में लगा देते थे। कम्पनी के जन्मदाता तथा प्रमुख पूंजी प्रदान करने वालो एवं अनुभवी प्रबन्धकर्त्ता होने के रूप में उनका उस कम्पनी के नियन्त्रण में काफी हाथ रहता था। एक ही प्रबन्ध अभिकर्त्ता गृह के आधीन कई प्रमण्डल नियन्त्रित रहते थे। प्रबन्ध अभिकर्त्ता पद्धति बंगाल में शुरू हुई और फिर अन्य भागों में भी फैल गई। कुछ भारतीय पूंजीपतियों ने भी उनकी देखा देखी उनकी सफलता से प्रेरित हो इस प्रकार का कार्य करना प्रारम्भ किया और इसमें उन्हें विदेशियों से बड़ी सहायता मिली।

एक दूसरी बात जो इस पद्धति के जन्म का कारण बनी वह थी बैंकों की यह हठ कि प्रमण्डलों को तब ही ऋण दिया जाय (वह भी लम्बे समय के लिये नहीं, थोड़ी ही अवधि के लिये) जबकि उसके प्रबन्ध अभिकर्त्ता इस ऋण की गारन्टी दें। उनका यह आग्रह इस कारण था कि वे प्रमण्डलों की आन्तरिक स्थिति से तो परिचित होते नहीं थे, परन्तु प्रबन्ध अभिकर्त्ता सब कुछ जानते थे, अस्तु यह स्वाभाविक ही था कि बैंक उनकी गारन्टी की मांग करें। ऊंची आर्थिक स्थिति के प्रमण्डल भी बैंकों से तब ही ऋण प्राप्त कर सकते थे जबकि उनके प्रबन्ध अभिकर्त्ता गारन्टी देने को तैयार हों।

तीसरे, उस समय के भारतीय कम्पनी अधिनियम की दुर्बलताओं ने भी प्रबन्ध अभिकर्त्तत्व पद्धति को प्रोत्साहित किया। सन् १९१३ तक कम्पनियों के लिए संचालकों की नियुक्ति करना अनिवार्य न था, अतः जो भी व्यक्ति किसी कम्पनी के निर्माण में हित रखते थे, वे स्वयं उसके प्रबन्ध अभिकर्त्ता बन जाते थे। जब सन् १९१३ के अधिनियम ने पब्लिक कम्पनियों के लिए संचालकों की नियुक्ति अनिवार्य कर दी, फिर भी प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं के लिये कोई कठिनाई पैदा न हुई क्योंकि अपने व्यापारिक सहयोगियों एवं मित्रों में से ही वे कुछ लोगों को चुन कर संचालक नियुक्त कर देते थे और इस प्रकार नियन्त्रण की बागडोर वास्तव में उन्हीं के हाथ में रहती थी।

अस्तु इन परिस्थितियों में प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं का औद्योगिक संगठन में प्रमुख स्थान पा लेना स्वाभाविक ही था।

प्रबन्ध अभिकर्त्ता प्रथा के लाभ—

भारत के औद्योगीकरण के इतिहास में प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं का महत्वपूर्ण स्थान

रहा है, क्योकि इनकी विभिन्न सेवाओ द्वारा ही देश की औद्योगिक प्रगति सम्भव हो सकी। इस प्रणाली के प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं—

(१) प्रवर्तन एव निर्माण—जैसा हम ऊपर सकेत कर चुके है, प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ ने प्रारम्भिक अनुसन्धान करके एव असुविधाओ तथा असफलताओ का सामना करते हुए अनेक सफल उद्योगों की नीव डाली थी। इनकी सहायता के बिना चाय, जूट, कपास, कोयला आदि बडे बडे व्यवसाय न तो स्थापित ही किये जाते और न उनकी शीघ्र उन्नति ही होती। प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ का कम्पनियो से घनिष्ट सम्बन्ध होता है, अत वे सुदृढ कम्पनियो की ही स्थापना करते है। यही नही, कम्पनी की स्थापना के लिए समस्त वैधानिक कार्यवाही करते है और योग्य एव अनुभवी व्यक्तियो को सचालक पद के लिए चुनते हैं।

(२) आर्थिक सहायता—प्रबन्ध अभिकर्त्ता विभिन्न रीतियो से, जिनका उल्लेख हम कर चुके हैं, कम्पनी को आर्थिक सहायता पहुँचाते हैं। इनके व्यावसायिक जीवन और वाणिज्य जगत म ख्याति के बल पर जनता को नव निर्मित कम्पनिया स सम्पर्क स्थापित करने मे सुविधा रहती है।

(३) वैज्ञानीकरण एव सूचीकरण—इन सेवाओ के अतिरिक्त प्रबन्ध अभिकर्त्ता अपने अन्तगत कम्पनियो की व्यवस्था म एकसूत्रता लाते है, जिसस उनमें मितव्ययिता होती है और कार्यक्षमता बढती है। प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की व्यावसायिक सस्थायें होती है, जिनके विशिष्टीकरण के लिए वे अपन कार्यालय म अलग अलग विभाग रखते है, जिससे उनके अन्तगत जितनी कम्पनियाँ हैं उनको उनकी विशेष योग्यता का लाभ हो सके। व्यक्तिगत रूप में कम्पनिया के लिए यह सम्भव नहीं होता कि विशिष्ट योग्यता वाले अनुभवी व्यक्तियो की नियुक्ति कर सकें, किन्तु प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ के माध्यम स न्यूनतम व्यय पर उन्ह विशेषज्ञो की सेवा का लाभ प्राप्त हो जाता है। दूसरे, पूरक व्यवसायो की दशा में एक व्यवसाय का माल दूसरे व्यवसाय में सुविधा से खप जाता है। उदाहरण के लिए सूती वस्त्र, यातायात तथा कोयला ये तीन उद्योग एक दूसरे के पूरक होने के कारण कोयले की खपत वस्त्र मिल उद्योगो में हो सकती है एव वस्त्र व्यवसाय का यातायात की सुविधाय मिल जाती है तथा यातायात उद्योग का स्थाई ग्राहक मिल जाते है। यदि ये तीन उद्योग अलग अलग प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ के नियन्त्रण म है तो सम्भवत यह लाभ न होगा। तीसरे, प्रबन्ध अभिकर्त्ता अपना क्रय विक्रय विभाग भी रखते है, जिसस उनके प्रबन्ध में जो व्यवसाय है उनकी आवश्यकताओ का क्रय तथा विक्रय इसी विभाग के द्वारा सुगमता से हो जाता है।

(४) विशेषज्ञो द्वारा सहायता—प्रत्येक प्रबन्ध अभिकर्त्ता अपने यहा कुशल एव अनुभवी विशेषज्ञ रखता है। इस प्रकार थोडे से व्यय म ही सरलतापूर्वक इन विशेषज्ञो

का परामर्श प्राप्त हो जाता है जिससे समय समय पर व्यवसाय को अत्यन्त लाभ होता है।

(५) विनियोगों की सुरक्षा—प्रबन्ध अभिकर्त्ता अपनी ख्याति का बड़ा ध्यान रखते हैं और जहाँ तक बन पड़ता है इस पर कलंक नहीं लगने देते इसलिए जनता तथा विनियोगकर्ताओं का यह विश्वास हो जाता है कि प्रतिष्ठित प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं के प्रबन्ध में जो कम्पनियाँ हैं उनमें उनका धन सुरक्षित रहेगा।

(६) प्रतिभूतियों का अभिगोपन—अन्य देशों की भाँति हमारे देश में औद्योगिक प्रतिभूतियों का अभिगोपन करने के लिए विशेष संस्थाओं का अभाव है अतः परिस्थितिवश यह कार्य बिचारे प्रबन्ध अभिकर्त्ता को ही करना पड़ता है, इसलिए इनकी इन सेवाओं के परिणामस्वरूप कम्पनी के अंश ऋणपत्रादि शीघ्र बिक कर उन्हें पूँजी की प्राप्ति हो जाती है तथा जनता के निष्क्रिय धन का भी उद्योगों में सदुपयोग हो जाता है।

(७) प्रतिस्पर्धा का अन्त—एक ही प्रबन्ध अभिकर्त्ता के नियन्त्रण में रहने से कम्पनियों की पारस्परिक प्रतिस्पर्धा का उन्मूलन हो जाता है अतः उनमें सहयोग की भावना बढ़ती है जिससे प्रबन्ध एवं व्यवस्था में मितव्ययिता आती है।

प्रबन्ध अभिकर्त्ता पद्धति के दोष—

उपरोक्त गुणों के होते हुए भी प्रबन्ध अभिकर्त्ता पद्धति को दोष रहित नहीं कहा जा सकता। यही कारण है कि इसके दोषों का उन्मूलन करने के लिए समय समय पर कम्पनी अधिनियम में संशोधन किये गये एवं सन् १९५६ के कम्पनी अधिनियम में तो कायापलट ही कर दिया गया है। इस प्रणाली के प्रमुख दोष निम्नलिखित हैं —

(१) आर्थिक प्रभुत्व—प्रबन्ध अभिकर्त्ता पद्धति में प्रायः सभी उद्योगों के अन्तर्गत औद्योगिक प्रतिफल की अपेक्षा आर्थिक प्रभुत्व को ही महत्ता दिखाई देती है। इसका कारण यह है कि इन संस्थाओं में मुख्यतः पूँजीपति ही होते हैं जो तान्त्रिक योग्यता उतनी नहीं रखते जितनी की आर्थिक सहायता प्रदान कर सकते हैं। रोते हुए बच्चे को पुचकारने की भाँति ये लोग संकट की अवस्था में कम्पनी को केवल आर्थिक सहायता देकर उनमें पुनर्जीवन का संचार कर देते हैं परन्तु उस कम्पनी की सच्ची प्रगति के लिए जिस तान्त्रिक एवं व्यापारिक योग्यता की आवश्यकता होती है उसकी पूर्ति ये नहीं कर पाते। फलतः कम्पनी की व्यवस्था में अनेक दोष आ जाते हैं। इस आर्थिक प्रभुत्व का यह परिणाम होता है कि यदि किसी समय कम्पनी अर्थ संकट के दलदल में फँस जाती है और इन लोगों के पास भी पर्याप्त धन नहीं होता तो ऐसी कष्टपूर्ण परिस्थिति में प्रबन्ध अभिकर्त्ता अपने अधिकार दूसरे प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं को जिनके अच्छे आर्थिक साधन होते हैं सौंपकर स्वयं अलग हो जाते हैं। ऐसा करते समय वे अंशधारियों के हितों की लेशमात्र भी चिन्ता नहीं करते।

(२) अंशो की अधिक परिकल्पना—इस प्रणाली के अनुसार अनेक स्कन्ध विपणियो मे, विशेषकर बम्बई मे कम्पनियो के अशो मे अत्यधिक परिकल्पना (Speculation) पाई जाती है। ये लोग प्रायः कम्पनी या अशधारियो के हितो की ओर ध्यान न देते हुए सट्टेबाजी मे व्यस्त हो जाते हैं। अपने हित के लिए कम्पनी के धन की वलि चढा देते हैं, जिससे कभी-कभी कम्पनी को महान आर्थिक सङ्कट का सामना करना पडता है। आर्थिक स्थिति विगडने पर अशो का मूल्य दिन पर दिन गिरने लगता है। यही नही, ये लोग एक प्रकार के अशो को दूसरे प्रकार के अशों मे परिणित करके भी उनके मूल्यो को प्रभावित करते हैं। जिन अशो को वे स्वय खरीदना चाहते है उन पर लाभाश की दर कम कर देते हैं, जिससे उनका मूल्य गिर जाए तथा गिरे हुए मूल्य पर वे उन्हे खरीद लें। इसके विपरीत जिन अशो को ये वेचना चाहते ह उन पर लाभाश की दर बढा देते हे। इन दूषित कार्यवाहियो से विनियोक्ताओ को वडी हानि होती है।

(३) सचालकीय नियन्त्रण की शिथिलता—अभी तक सचालकों की नियुक्ति मे प्रवन्ध अभिकर्त्ताओं का बहुत बडा हाथ रहता है, अतः यद्यपि कम्पनी की व्यवस्था का समस्त भार सचालको पर ही होता है और उन्ही को प्रवन्ध नीति का निर्धारण करना चाहिए, किन्तु वास्तविक स्थिति यह है कि सचालकगण कठपुतली की भाति नाचते हे और इनको नचाने वाले ह परदे के पीछे कार्य करने वाले प्रबन्ध अभिकर्ता। नये अधिनियम मे इस सम्बन्ध मे काफी सुधार कर दिये गये हैं।

(४) अन्तर्विनियोग—प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं ने अपने नियन्त्रण के अन्तर्गत आधिक्य राशि को दूसरी कम्पनियो को ऋण देने मे भी लगाया। यदि दोनो ही कम्पनियों की आर्थिक स्थिति अच्छी होती तब तो इसमे कोई हानि नही थी, किन्तु विपरीत परिस्थिति मे यदि अच्छी स्थिति की कम्पनी का कोष एक दुर्वल कम्पनी को दे दिया जाय तो इससे अच्छी स्थिति वाली कम्पनी को हानि उठानी पडती है। नये अधिनियम के अन्तर्गत अन्तर्विनियोग पर रोक लगा दी गई है।

(५) अयोग्य व्यवस्था—प्रबन्ध अभिकर्त्ता पद्धति के अन्तगत कौटुम्बिक अनुशासन के कारण व्यावसायिक सगठन मे स्थिरता आ जाती है। व्यवसाय मे कार्य-कुशल व्यक्तियो का प्रवेश रुक जाता है। पिता के बाद पुत्र को, पुत्र के बाद प्रपौत्र को तथा इसी प्रकार अनेक प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं को पैत्रिक अधिकार मिलते ह। इससे यह आशका रहती है कि पुत्र अथवा प्रपौत्र उतने काय कुशल न हो जितने कि उनके पूर्वज थे।

(६) शोषण—प्रबन्ध अभिकर्त्ता विभिन्न ढङ्गो से कम्पनियो का शोपण करते रहते हैं। प्रथम तो, इन लोगो को कम्पनी की व्यवस्था सम्बन्धी समस्त आन्तरिक बातों

का ज्ञान रहता है, जोकि अंशधारियों को नहीं होता, अतः वे आन्तरिक व्यवस्था में ऐसा परिवर्तन करते है कि जिससे केवल इनको ही लाभ होता है, अन्य अंशधारियों को तो उसकी हवा भी नहीं लगती। अपने स्वार्थ को सिद्ध करने के लिए ही वे लाभांश की दर कम या अधिक करते रहते है। दूसरे, प्रबन्ध अभिकर्त्ता अपने पारिश्रमिक के लिए जो अनुभव करते है वे अनुचित एवं न्यायविरुद्ध होते है। ये निम्न प्रकार के विभिन्न रूपों में पारिश्रमिक लेते रहते है —व्यक्तिगत भत्ता, उत्पादन पर कमीशन, कच्चे माल के क्रय पर कमीशन, निर्मित माल के विक्रय पर कमीशन, लाभ पर कमीशन, अन्य विशेष कमीशन तथा कार्यालय भत्ता आदि। इस प्रकार कम्पनी के लाभ का एक बहुत बडा भाग जिसे 'शेर का भाग' (Lion's Share) कह सकते है प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं की जेब में जाता है एवं भूखन जाठन विचारे अंशधारियों को जाती है। तीसरे, कभी कभी ये लोग कम्पनी के धन को भी व्यक्तिगत कार्यों मे प्रयोग कर लेते है। चल लेख (Current A/c.) की चाल द्वारा ये लोग कम्पनी का धन पर्याप्त मात्रा में ऋण लेकर अपना काम चलाया करते है। चौथे, प्रबन्ध अभिकर्त्ता बहुधा कम्पनी के लाभ को लाभांश के रूप में वितरण न करके कम्पनी के कार्यों में लगा देते है और अन्य लोगों को दिखाने के लिए कम्पनी की कार्यशीलता बढ जाती है। कभी कभी भवन निर्माण और मशीनरी के क्रय में रुपया लगा देते है। यह विस्तार चाहे अनुचित भले ही हो, किन्तु ये कार्यक्षमता का आडम्बर करने के लिये ऐसी रचना करते रहते है।

(७) किन्हीं किन्हीं प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं ने अपने दिये हुए ऋण को ऋण-पत्रों में परिवर्तित कर लिया और इस प्रकार सम्पत्तियाँ उनके हाथ में पहुँच गई। बेचारे अंशधारियों की वह पूँजी जो उन्होंने कम्पनी में लगाई थी, उनके हाथ में चली गई।

(८) कम्पनियों की संख्या में लगातार वृद्धि से प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं की संख्या में भी बरसाती नदी के पानी की भांति वृद्धि होने लगी है। नये प्रबन्ध अभिकर्त्ता गृह पुरानों की भाँति अनुभवी, योग्य और साधन सम्पन्न भी नहीं है, जो सुन्दर सेवायें कर सकें, जैसी कि इस पद्धति के अन्तर्गत अब तक होती रही है।

प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं पर वैधानिक नियन्त्रण—

सन् १६१३ के कम्पनी अधिनियम में प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं की स्थिति के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार की व्यवस्था नहीं की गई थी। तत्पश्चात् इस प्रणाली का इतना पतन हुआ और प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं की शक्तियों का इतना दुरुपयोग किया गया कि सन् १६३६ के कम्पनी (संशोधन) अधिनियम में विशेष व्यवस्थाओं की आवश्यकता अनुभव की गई। सन् १६३६ के संशोधन ने आरम्भ में ही कुछ ऐसी व्यवस्थायें की है, जिससे अंशधारी अधिक सतर्क तथा सावधान रह सकें। इस सम्बन्ध में निम्न व्यवस्थायें की

गई —(अ) कम्पनी के प्रविवरण में प्रवन्ध अभिकर्त्ता के साथ किए गए समझौते की शर्तों का दिखाना अनिवार्य किया गया, प्रवन्ध अभिकर्त्ता के साझेदारों के नाम तथा उस हित की प्रकृति, जो कम्पनी के सवालकों को मैनेजिंग एजेन्सी में है, साफ-साफ दिखाना आवश्यक कर दिया गया और (आ) प्रवन्ध अभिकर्त्ता के लिए समुचित लेखों का रखना तथा विस्तृत चिट्ठे एवं लाभ-हानि खातों का प्रकाशन आवश्यक कर दिया गया। किन्तु फिर भी स्थिति में कोई सन्तोषजनक सुधार नहीं हुआ। प्रवन्ध अभिकर्त्ताओं ने शोषण का मार्ग निकाल लिया, अतः विवश होकर सरकार को सन् १६५१ में एक ऑर्डीनेन्स जारी करना पड़ा। ऑर्डीनेन्स के द्वारा भारतीय कम्पनी अधिनियम सन् १६१३ की धारा ८७ में सशोधन किया गया और यह व्यवस्था की गई कि प्रवन्ध अभिकर्त्ता द्वारा अपने अधिकारों को सौंपना उस समय तक वैध न होगा, जब तक कि कम्पनी तथा केन्द्रीय सरकार उसे स्वीकार न कर लें। सन् १६४६ से बैंकिंग कम्पनियों के लिए प्रवन्ध अभिकर्त्ताओं की नियुक्ति करना अवैध घोषित कर दिया गया हैं।

वर्त्तमान स्थिति—

कम्पनी अधिनियम सन् १६५६ के अनुसार 'प्रवन्ध अभिकर्त्ता से आशय उस व्यक्ति, फर्म या समामेलित सस्था से है, जो किसी कम्पनी के साथ हुए ठहराव या उसके पार्षद सीमानियम अथवा अन्तर्नियमों के अन्तर्गत् कम्पनी के सम्पूर्ण या अधिकाश कार्यों के प्रवन्ध करने का इस अधिनियम के आदेशों के आधीन अधिकारी है, अर्थात् अब प्रवन्ध अभिकर्त्ता सचालक सभा के प्रशासनिक नियन्त्रण तथा निरीक्षण के आधीन कार्य करता है। नए कम्पनी अधिनियम द्वारा इस पद्धति पर निम्न नियन्त्रण लगा दिए गए हैं :—

(१) नियुक्ति एवं अवधि—कोई भी कम्पनी, केन्द्रीय सरकार की अनुमति के बिना अपना कार्य प्रबन्ध चलाने के लिए प्रवन्ध अभिकर्त्ता की नियुक्ति अथवा पुर्नानियुक्ति नहीं कर सकती। १ अप्रैल सन् १६५६ को विद्यमान सभी प्रवन्ध अभिकर्त्ताओं के पद १५ अगस्त सन् १६६० तक अवश्य समाप्त हो जाएँगे, जब तक उनकी पुर्ननियुक्ति न हो जाय। १५ अगस्त सन् १६६० के बाद कोई व्यक्ति एक समय में १० से अधिक कम्पनियों का प्रवन्ध अभिकर्त्ता नहीं रह सकता। जिस अवधि के लिए प्रवन्ध अभिकर्त्ता नियुक्त किए जा सकते हैं, वह प्रथम नियुक्ति की दशा में १५ वर्ष से और बाद की नियुक्तियों के लिए १० वर्ष से अधिक नहीं हो सकती।

(२) पारिश्रमिक—मैनेजिंग एजेन्टों को निम्नलिखित दर से कमीशन दिया जाता है—

पहले १० लाख रुपये अथवा इसके प्रभाग पर	१० प्रतिशत
अगले १० लाख रुपये अथवा इसके प्रभाग पर	६ प्रतिशत

अगले १० लाख रुपये अथवा इसके अभाग पर	८ प्रतिशत्
अगले १० लाख रुपये अथवा इसके अभाग पर	७ प्रतिशत्
अगले १० लाख रुपये अथवा इसके अभाग पर	६ प्रतिशत्
अगले २५ लाख रुपये अथवा इसके अभाग पर	५½ प्रतिशत्
अगले २५ लाख रुपये अथवा इसके अभाग पर	५ प्रतिशत्
और १ करोड़ रुपये से ऊपर कितनी भी रकम पर	४ प्रतिशत्

अभिकर्त्ता को कोई भी कार्यालय भत्ता नहीं दिया जाएगा। हां, उसके द्वारा कम्पनी के निमित्त किए गए खर्चों का भुगतान अवश्य होगा।

(३) **कोषों का अन्तर्विनियोग**—कोई कम्पनी (जिसे यहाँ विनियोगिता कम्पनी कहा गया है), एक ग्रूप के अन्तर्गत किसी सम्मिलित संस्था के अंश या ऋण-पत्रों को नहीं खरीद सकती।

(४) **अन्य आदेश**—कोई प्रबन्ध अभिकर्त्ता अपने पद का तभी हस्तान्तरण कर सकता है जबकि कम्पनी की साधारण सभा तथा केन्द्रीय सरकार दोनों ही की अनुमति प्राप्त हो जाय। अब प्रबन्ध अभिकर्त्ता का पद पैतृक नहीं है। कोई भी प्रबन्ध अभिकर्त्ता *अपने द्वारा व्यवस्थित अन्य कम्पनियों को ऋण नहीं दे सकता। प्रबन्ध अभिकर्त्ता अब* दो (यदि कुल संचालक ५ से अधिक है) अथवा एक (यदि संचालकों की कुल संख्या ५ से कम है) संचालक से अधिक की नियुक्ति नहीं कर सकता। कोई भी प्रबन्ध अभिकर्त्ता अपनी प्रबन्धित कम्पनी के समान और उससे प्रत्यक्ष स्पर्धा करने वाला कोई अपना व्यापार नहीं कर सकेगा, जब तक कि वह प्रबन्धित कम्पनी विशेष प्रस्ताव द्वारा उसे ऐसा करने की आज्ञा न दे।

प्रबन्ध-अभिकर्त्तृत्व पद्धति के पक्ष में विचार—

अगस्त सन् १९५५ में लोक सभा में कम्पनी लॉ बिल पर बड़ी बहस हुई और अधिकांश वक्ताओं ने प्रबन्ध अभिकर्त्ता पद्धति की कड़ी आलोचना की थी। स्वयं कांग्रेस दल के आलोचकों ने इस पद्धति के उन्मूलन की माँग की और इस सम्बन्ध में एक निश्चित समय निर्धारित कराने का प्रयास किया। वे 'सेक्रेटरी एवं कोषाध्यक्ष' की नई व्यवस्था से भी सन्तुष्ट नहीं थे, क्योंकि उनके विचार में इसमें आर्थिक शक्ति का केन्द्रीयकरण नहीं रुक सकता। दूसरे शब्दों में, वे कम्पनियों के प्रबन्ध पर अधिक नियन्त्रण रखना चाहते थे, किन्तु सरकार ऐसा नहीं करना चाहती थी, क्योंकि इससे व्यक्तिगत उपक्रम को धक्का पहुँचता और पंच वर्षीय योजना की सफलता खटाई में पड़ जाती। तत्कालीन वित्तमन्त्री श्री देशमुख ने प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं के पक्ष में निम्न दलीलें प्रस्तुत कीं—

(१) द्वितीय पंच वर्षीय योजना में औद्योगिक विकास के लिए व्यक्तिगत उपक्रमों पर बहुत सीमा तक निर्भरता रखी गई है। अब बीच में ही प्रबन्ध

अभिकर्त्ता पद्धति को किसी उद्योग विशेष में रखने की घोषणा से व्यक्तिगत उपक्रम को बड़ा धक्का लगेगा और वह अपने दायित्व ठीक तरह से नहीं निभा सकेगा।

(२) स्वतन्त्रता के पूर्व जब प्रबन्ध अभिकर्त्ता पद्धति के विरोध में आवाज उठाई गई थी तो अधिकांश व्यापार विदेशियों के हाथ में था, किन्तु अब परिस्थिति बदल गई और व्यापार देशवासियों के हाथ में आ गया है। फिर अनेक दोष प्रबन्ध अभिकर्त्ता पद्धति के ऐसे हैं जोकि उन्हीं परिस्थितियों में, सचालक सभा या सेक्रेटरी एवं कोषाध्यक्ष अथवा अन्य प्रबन्ध व्यवस्था के अन्तर्गत भी उत्पन्न हो सकते हैं। यही नहीं, आज अनेक ऐसे प्रबन्ध अभिकर्त्ता भी है जो अपने ज्ञान और अनुभव से देश को लाभ पहुँचाना चाहते है।

(३) हमें प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं के कार्यों का लेखा-जोखा केवल समापित कम्पनियों की सख्या से ही नहीं लगाना चाहिए, वरन् नई रजिस्टर्ड कम्पनियो को भी विचार में लेना चाहिये। युद्धोत्तर काल में कम्पनियों की सख्या दुगुनी से अधिक हो गई है और प्राप्त पूँजी भी पहले से तिगुनी हो गई है, जोकि देश के हित में है।

(४) यह कहना असत्य है कि कम्पनियों के प्रवर्तन और अर्थ प्रबन्धन में प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं का अधिक भाग नहीं। १,७२० कम्पनियों की परीक्षा से यह पता लगा है कि लगभग १३·६% अश पूँजी एवं २६·६५% ऋण एवं अग्रिम प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं द्वारा प्राप्त हुआ था। यदि प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं को हटा दिया जाय तो इतने वित्त की व्यवस्था सरकार कहाँ तक करेगी?

(५) जहाँ तक आर्थिक सत्ता के कतिपय हाथों में केन्द्रीयकरण का प्रश्न है, यह दोष केवल प्रबन्ध अभिकर्त्ता पद्धति का ही हो, ऐसी बात नहीं। उदाहरण के लिये, अमेरिका में भी, जहाँ कि ऐसी पद्धति प्रचलित नहीं है, आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण की समस्या पाई जाती है। फिर थोडे ही (लगभग ३३) प्रबन्ध अभिकर्त्ता देश में ऐसे हैं जिनके पास १० या अधिक कम्पनियों का प्रबन्ध है।

(६) प्रबन्ध अभिकर्त्ता देश की व्यवसायिक वृद्धि के प्रतीक हैं। यदि केवल नियन्त्रण द्वारा इनका सहयोग देश के अधिक आर्थिक विकास में प्राप्त हो सकता है तो फिर इनके उन्मूलन की हिंसात्मक नीति अपनाने से क्या लाभ?

(७) प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं का पुरस्कार शुद्ध लाभ का १०% निर्धारित किया गया है, जोकि अधिक नहीं है। प्रबन्ध सचालकों का वेतन के अतिरिक्त शुद्ध लाभ का ५% मिलता है और सेक्रेटरी एवं कोषाध्यक्ष का ७½% निश्चित किया गया है। इनकी तुलना में प्रबन्ध अभिकर्त्ता का १०% पुरस्कार अधिक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि प्रबन्ध अभिकर्त्ता विभिन्न प्रकार का अनुभव रखते हैं और वित्त की व्यवस्था भी

करते है, जबकि सचालक और सेक्रेटरी एव कोषाध्यक्ष इतनी चहुँमुखी योग्यता नही रखते और न ही उनको वित्त व्यवस्था का भार उठाना पडता है। अभी तक प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ को मिलने वाला पुरस्कार औसतन शुद्ध लाभ का २७% था, अत: पुरस्कार में इतनी बडी कमी करना वास्तव मे भारी सफलता है, जोकि समाज के समाजवादी ढाचे के अनुकूल है।

(८) यदि किसी विशेष उद्योग या व्यापार में प्रबन्ध अभिकर्त्ता रखना उचित न समझा जाय तो भी अन्य क्षेत्रो में, जहा प्रवर्तन एव अर्थ प्रबन्धन की आवश्यकता है, उस पद्धति का लाभ क्यो न उठाया जाय, जोकि भूतकाल में उपयोगी थी और भविष्य मे उपयोगी होगी।

प्रबन्ध-अभिकर्त्ता पद्धति का भविष्य—

कम्पनी अधिनियम सन् १९५६ का उद्देश्य प्रबन्ध अभिकर्त्ता पद्धति को निम्न लिखित ढग से धीरे धीरे खत्म करना है —

(१) १५ अगस्त सन् १९६० तक तो इस पद्धति में कोई परिवर्तन नही होगा, किन्तु तत्पश्चात् इसका महत्व कम होने लगेगा। कोई भी प्रबन्ध अभिकर्त्ता १० से अधिक कम्पनियों का प्रबन्ध नही कर सकेगा। १ अप्रैल सन् १९५६ के बाद किसी भी समय केन्द्रीय सरकार यह सूचित करने का अधिकार रखती है कि एक विशेष उद्योग या व्यापार में सलग्न सभी कम्पनियाँ कोई प्रबन्ध अभिकर्त्ता नही रख सकेंगी। इस सूचना का प्रभाव यह होगा कि जिन कम्पनियो में सूचना की तिथि पर प्रबन्ध अभिकर्त्ता नही थे वे भविष्य में प्रबन्ध अभिकर्त्ता नही रख सकेंगे और जिन कम्पनियो में प्रबन्ध अभिकर्त्ता हैं उनका कार्यकाल निर्दिष्ट तिथि से तीन वर्ष की अवधि समाप्त होने पर या १५ अगस्त सन् १९६० मे, जो भी तिथि बाद में पडे, समाप्त हो जायगा।

(२) वे कम्पनियाँ जो उपरोक्त नियम में नही आती, तब तक प्रबन्ध अभिकर्त्ता नियुक्त नही कर सकेंगी जब तक केन्द्रीय सरकार से विशेष स्वीकृति प्राप्त न हो जाय और केन्द्रीय सरकार ऐसी स्वीकृति निम्न बातो का सतोष प्राप्त होने पर ही देगी :—

(अ) कि कम्पनी को प्रबन्ध अभिकर्त्ता नियुक्त करने की अनुमति देने मे जन-हित को नुकसान नही पहुँचेगा।

(आ) कि प्रस्तावित प्रबन्ध अभिकर्त्ता एक उपयुक्त एव योग्य व्यक्ति है।

(इ) कि उसके ठहराव की शर्तें उचित है, और

(ई) कि प्रबन्ध अभिकर्त्ता ने उन तीन शर्तों को पूरा कर दिया है जो केन्द्रीय सरकार ने उसके लिए निश्चित की हो।

इस प्रकार सन् १९६० के पश्चात् प्रबन्ध अभिकर्त्ता पद्धति का भविष्य बडा अनिश्चित है और बहुत कुछ इस बात पर निभर करेगा कि इन पाच वर्षो की अवधि क भीतर प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ का आचरण कसा रहता है। यदि उनका आचरण समाजवादी ढाचे के अनुसार रहता है यदि उन पर लगाये प्रतिबन्धो के फलस्वरूप इस पद्धति के सब मुख्य दोष दूर हो जाते है और आर्थिक शक्ति का केन्द्रीयकरण नही होता तो उनके बने रहने की सम्भावनायें बढ जायेंगी यद्यपि सिद्धान्तत प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ का उन्मूलन उचित है किन्तु व्यावहारिक दृष्टिकोण से उनके उन्मूलन की समय-सीमा निश्चित कर देना बुद्धिमानी नही होगी।

मनेजिंग एजन्सी पद्धति की उपयोगिता पर अनुसन्धान परिषद का मत—

भारतीय उद्योग एव वाणिज्य मण्डल के आग्रह पर राष्ट्रीय आर्थिक अनुसन्धान परिषद न मैनेजिंग एजन्सी पद्धति के विभिन्न पहलुओ एव उसकी उपयोगिता का अध्ययन करके सम्मति प्रकट की है कि देश के आर्थिक विकास म मैनेजिंग एजन्सी पद्धति महत्वपूर्ण भाग अदा कर रही है इसलिये इस पद्धति को समाप्त करन के लिये कोई वास्तविक कारण नही दिखाई देता है।

परिषद् का कहना है कि देश की बदलती हुई परिस्थितियो को दृष्टि मे रखते हुए इस पद्धति में समय समय पर आवश्यक परिवतन परिवद्धन एव सुधार किए जा सकते हे। कुछ बेईमान व्यक्तियो द्वारा इस पद्धति का दुरुपयोग करके अनुचित लाभ उठाना इस बात का प्रमाण नही है कि यह पद्धति ठोस नही है इसलिए इसे समाप्त कर दिया जाय।

परिषद् के महासचालक डा० पी० एस० लोकनाथन न परिषद् द्वारा किए गए शोध के परिणाम को पत्र प्रतिनिधियों को बताया और कहा—यह पद्धति निजी क्षेत्र को विशेषत दो दिशाओ म सक्रिय योगदान दे रही है।

(१) यह अपन आय स्रोतो तथा बचत से प्रबन्धकृत कम्पनियो की पूंजी की व्यवस्था करती है और

(२) अपन प्रबन्ध में कम्पनियो के उद्योगो का बहुमुखी विस्तार कर रही है।

शोध में कहा गया है कि भारतीय पूंजी बाजार में जो कमी है वह मैनेजिंग एजन्ट औद्योगिक वित्तीय योगदान कर पूरा करत हे क्योकि भारतीय अर्थ व्यवस्था की प्रगति के साथ साथ वित्तीय सस्थाओं का विकास नहीं हुआ है। उस कमी को मैनेजिंग एजन्ट पूरा कर रहे हे। जबकि औद्योगिक दृष्टि से विकसित देशो के साथ भारत में पूंजी विनियोजन ट्रस्ट नही हे, जो अल्प बचत की प्राप्त राशि को उद्योगो में लगाय, कम्पनी कानून में सरकार को यह अधिकार मिल जान से औद्योगिक क्षेत्र में एक

अनिश्चितता फैल गई है कि सरकार किसी भी उद्योग एवं व्यवस्था में मैनेजिंग एजेन्सी पर रोक लगा सकती है। सरकार एक नीति बनाकर उसे दूर कर सकती है। शोध में सरकार द्वारा मैनेजिंग एजेन्सियों के पारिश्रमिक की दर घटा देने पर सहमति एवं उनके कार्य काल के विषय में विमति प्रकट की गई है। मैनेजिंग एजेन्सी पद्धति पर सबसे बड़ा आरोप अधिकार एवं सत्ता के केन्द्रीयकरण का है। परन्तु अध्ययन से पता चलता है कि यूरोप के देशों में यह पद्धति बहुत अधिक प्रचलित है और वहाँ इस प्रकार का केन्द्रीयकरण नहीं हुआ। भारत में एकाधिकार की ओर प्रवृत्ति नहीं है, क्योंकि बहुत से उद्योग धन्धे इस पद्धति के दायरे के बाहर स्थापित हो रहे हैं।

(६) विशिष्ट अर्थ-संस्थायें

विशिष्ट अर्थ संस्थाओं का विस्तृत परिचय अगले अध्यायों में दिया गया है।

STANDARD QUESTIONS

1. Describe the existing system of Industrial Finance in India. Offer your own suggestions for improving it and say what is at present being done in this connection
2. Write critical notes on (a) Issue of Shares, (b) Public Deposits and (c) Issue of debentures as sources of industrial finance.
3. Discuss carefully the reasons for the unpopularity of debentures in India
4. Discuss the defects of the Indian Commercial Banks in providing finance to Indian industries. How can they be made more useful ?
5. Discuss the services of the Managing Agents in providing finance to Indian industries Are there any defects in this system ?
6. What provisions have been made in the Indian Companies Act, 1956, to remedy the defects of the Managing Agency System ?
7. Write an essay on the present position and future of the Managing Agency system.

अध्याय १६

औद्योगिक अर्थ प्रबन्धन के लिए विशिष्ट संस्थायें (I)

(Special Institutions for the financing of Industries)

औद्योगिक अर्थ-निगम

औद्योगिक अर्थ निगम की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि—

प्रथम महायुद्ध के बाद भारत सरकार का ध्यान देश में उद्योगो की उन्नति की ओर गया और तब से पूँजी की कमी बहुत खटकने लगी। पिछली ३०-३५ वर्षों से (और विशेषत सन् १९१८ के बाद) जब औद्योगिक कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में देश के उद्योगों की आर्थिक सहायता प्रदान करने की आवश्यकता पर विशेष जोर दिया तो इस कठिनाई को हल करने के लिये गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाने लगा। औद्योगिक कमीशन का भी यही मत था कि उद्योगो को आर्थिक सहायता देने के लिये विशेष संस्थाओं का आवश्यकता है। सन् १९३१ में केन्द्रीय महाजनी जाच समिति ने भी देश में बढते हुए औद्योगीकरण के लिए जिससे भविष्य में देश का विकास होने की आशा है पूँजी की आवश्यकता पर अधिक जोर दिया। इन उद्योगो में लगने वाली आवश्यक पूंजी को अवधि की दृष्टि से तीन भागो में बाटा जा सकता है—(अ) दीर्घकालीन, (आ) अल्पकालीन और (इ) मध्यकालीन, अत इस कमी को पूरा करने के लिये जल्दी ही आवश्यक कदम उठाने की सिफारिश की गई किन्तु खेद की बात है कि इन सिफारिशों का कोई भी सन्तोषजनक परिणाम नही निकला। इसी प्रकार वैदेशिक पूँजी कमेटी (External Capital Committee) ने सन् १९२४ में देश की औद्योगिक वित्त समस्याओं को हल करने के लिए विशिष्ट संस्थाओं की स्थापना की सिफारिश की थी किन्तु कई राजनैतिक व आर्थिक कारणों से उक्त प्रस्तावों को उस समय कार्यान्वित नही किया जा सका।

विदेशों में उद्योगो की आर्थिक सहायता करने के लिये कई विशिष्ट संस्थायें है। उदाहरणार्थ, जर्मनी में औद्योगिक संस्थाओं की अर्थ पूर्ति के लिए औद्योगिक बैंक है। योरुप के अन्य देशो में भी (जैसे—बेल्जियम फ्रांस इटली आदि में) इस प्रकार की संस्थाओं ने उन देशों के उद्योगों को आर्थिक सहायता पहुँचाकर उन्नति के पथ पर अग्रसरित किया है। जापान की आर्थिक स्थिति भी हमारे देश के समान ही थी। वहा की

जनता भी गरीब थी, अत. वहाँ पूँजी की कमी रहा करती थी, किन्तु सन् १६०२ में औद्योगिक बैंक स्थापित की गई, जो आज तक उस देश के उद्योगों को आर्थिक सहायता पहुँचा रही है। सन् १६२६ ३० में, जबकि सारे ससार मे मन्दी का प्रभाव था, यदि इन सस्थाओ ने जापान के उद्योगो को आर्थिक सहायता न दी होती तो ये छोटे छोटे सभी उद्योग उस समय समाप्त हो जाते।

अमेरिका के बड़े-बड़े प्रमण्डलो को आर्थिक सहायता देकर उनकी उन्नति करने का श्रेय उस देश के अधिकोषो को है। सन् १६३४ के पश्चात् इन सस्थाओ के कार्य म और भी अधिक उन्नति पाई जाती है। ये सस्थायें न केवल सक्रिय पूँजी की ही सहायता करती है अपितु अग्रिम राशि देकर उनकी अन्य आर्थिक कठिनाइयो को भी दूर करती है।

इङ्गलैंड में भी वहाँ के अधिकोषो ने अपनी पुरानी परिपाटी 'व्यापारिक दृष्टि-कोण' त्याग कर अपना सकुचित कार्य क्षेत्र व्यापक बना कर उद्योगो की प्रत्यक्ष सहायता करने का श्रेय प्राप्त किया है। आज हम देखते है कि वहाँ के लोहे तथा फौलाद सूत तथा वस्त्र इत्यादि के उद्योगो को काफी आर्थिक सहायता पहुँचाई जा रही है। सन् १६३० में 'बेंकर्स इण्डस्ट्रियल डेवलपमेन्ट कम्पनी' की स्थापना उद्योगो को आर्थिक सहायता प्रदान करने के उद्देश्य से ही की गई थी। इसी प्रकार 'फाइनेंस कॉरपोरेशन फॉर इण्डस्ट्रीज लिमिटेड' एव 'इण्डस्ट्रियल फाइनेन्स कॉरपोरेशन लिमिटेड' नामक दो सस्थाओ की स्थापना भी लघुमाप तथा दीर्घमाप उद्योगों की आर्थिक सहायता पहुँचाने के उद्देश्य से की गई है।

आस्ट्रेलिया में भी इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए वहाँ के 'कॉमनवेल्थ बैंक' ने औद्योगिक अर्थ प्रबन्ध का एक स्वतन्त्र विभाग बैंक के आधीन ही खोल दिया है। इस विभाग का मुख्य उद्देश्य उस देश के उद्योगो की सहायता के लिए दीर्घकालीन ऋण देना है।

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि विदेशो में उद्योगों की आर्थिक सहायता के हेतु नई नई सस्थायें स्थापित की गई है, किन्तु हमारे देश में ऐसे प्रयत्नो की कमी रही है। भूतपूर्व प्रस्तावों से प्रेरित होकर व वर्तमान परिस्थितियों से विवश हो, माननीय आर० के० शणमुखम चेट्टी ने भारतीय ससद में औद्योगिक अर्थ-प्रमन्डल की स्थापना के लिए एक बिल प्रस्तुत किया। २७ मार्च सन् १६४८ को गवर्नर जनरल से इस बिल पर स्वीकृति मिली तथा १ जुलाई सन् १६४८ से इस कॉरपोरेशन का कार्य प्रारम्भ हुआ।

औद्योगिक अर्थ-निगम के उद्देश्य तथा अधिकार—

कॉरपोरेशन का मुख्य उद्देश्य उद्योगों की दीर्घ एव मध्यकालीन आर्थिक सहायता प्रदान करना है। हमारे देश के अधिकोष भी इस प्रकार की सहायता प्रदान

करते है, किन्तु इसका तात्पर्य यह नही कि प्रमन्डल अधिकोषो से प्रतियोगिता करना चाहता है अथवा उनको इस कार्य से विचलित करना चाहता है। प्रमन्डल का उद्देश्य *आर्थिक क्षेत्र में अधिकोषो की सहायता करना है, जिससे ये दोनो सस्थायें मिलकर देश* में पूँजी की कमी को दूर कर उद्योगो की उन्नति में सहायक हो। अधिकोषो का मुख्य कार्य तो उद्योग को अल्पकालीन सहायता और प्रमन्डल का कार्य लम्बी अवधि के लिए या मध्यम समय के लिए आर्थिक सहायता देना है। विकास का अर्थ केवल नवीन उद्योगशालायें खोलना नही है। नई उद्योगशालाओ के स्थापन के साथ साथ आज भारत में चालू उद्योगो के युक्तिसगत विवेकीकरण की आवश्यकता भी है। औद्योगिक सस्थाओं की प्राप्त पूँजी का लगभग सारा भाग मशीन, भूमि व अन्य औजारो के खरीदने मे ही चला जाता है और समय पर कार्यशील पूँजी की बडी भारी कमी पड जाती है जिसका परिणाम उद्योग की सफलता के लिए घातक सिद्ध हो सकता है, इसलिए कॉरपोरेशन का प्रधान उद्देश्य चालू व नवीन सावजनिक कम्पनियो को मध्यकालीन व दीर्घकालीन आर्थिक सहायता प्रदान करना है, किन्तु वे उद्योग जो बुनियादी उद्योगो की श्रेणी में है अथवा जिनका राष्ट्रीयकरण हो चुका है, इस साख सहायता के भागीदार नही बन सकते। इस सम्बन्ध में यह भी ध्यान रखना चाहिए कि *प्रमन्डल केवल उन्ही उद्योगो को आर्थिक सहायता देगा,* जो सावजनिक अथवा लोक सीमित होगे अथवा जो सहकारिता के सिद्धान्तानुसार काय कर रहे है। यह आर्थिक सहायता केवल उन क्षेत्रो तक सीमित रहेगी जिनमें प्रमण्डल सन्नियम लागू होता है, अतएव स्पष्ट है कि अलोक सीमित प्रमण्डल तथा साझेदारी सस्थाएँ प्रमण्डल द्वारा दी जाने वाली आर्थिक सहायता का लाभ न उठा सकेंगी। प्रमण्डल ने अपन द्वितीय तथा तृतीय वार्षिक वृत्त लेख में सूचित किया है कि जनता प्रमण्डल क उपयुक्त कार्य क्षेत्र को भली प्रकार नहीं समझ सकी है, अत. अनेक प्रार्थना पत्रो को विना विचारे ही वापस करना पडता है।

औद्योगिक अर्थ निगम के कार्य (Functions of I. F. C)—

(१) किसी भी सीमित प्रमन्डल को एव सहकारी समितियो को वस्तुओ का उत्पादन अथवा क्रिया कलाप (Processing) करता है, खान, बिजली अथवा अन्य किसी शक्ति का उत्पादन एव वितरण करता है। अधिक से अधिक २५ वर्ष की अवधि के लिए निगम ऋण दे सकता है।

(२) औद्योगिक कम्पनी के अश तथा ऋण पत्रों का अभिगोपन करना, किन्तु अभिगोपन समझौते के अनुसार निगम को चाहिए कि ७ वर्ष की अवधि में उन अशो अथवा ऋण पत्रों को जनता को बेच दे।

(३) अर्थ निगम औद्योगिक कम्पनियों के ऋण पत्रो के ब्याज तथा मूल

राशि के भुगतान की गारन्टी दे सकता है यदि ऋण पत्र खुले बाजार म बेचे गये हो और उनकी अवधि २५ वष से अधिक न हो। इस काय के लिए अथ निगम कमीशन लेन का भी अधिकारी है।

(४) यदि किसी उद्योग को विदेशी मुद्रा म ऋण लेन की आवश्यकता हो तो अथ निगम केन्द्राय सरकार की अनुमति के बाद पुनसङ्गठन और विकास की अन्तराष्ट्रीय बक (I B R D) से अथवा अन्य विदेशी श्रोता से ऋण ले सकता है और इस प्रकार सुविधा के लिए अथ निगम के पास जो भी सम्पत्ति जमानत के लिए हो उसे वह देशी लेनदारो के पास रहन रख सकता है।

(५) अथ निगम को ऋण लेन वाले उद्योग की सचालक सभा म अपना प्रतिनिधि मनोनीत करन का तथा ऋण की शर्तों को भङ्ग करन पर उद्योग को अपन नियत्रण म लेन का अधिकार है।

(६) अथ निगम ऋण लेन वाल उद्योग को तान्त्रिक सलाह देन के लिये तान्त्रिक सलाहकार समिति नियुक्त कर सकता है।

(७) अथ निगम का सचित कोष (Reserve Fuud) जब तक दत्त पूजी के बराबर न हो जाय एव लाभ पूर्ति के लिए केन्द्रीय सरकार से प्राप्त राशि का भुगतान न हो जाय तब तक यह २½% से अधिक लाभांश नहीं दे सकता परन्तु किसी भी वष ५% स अधिक लाभाश नही दे सकता और यह लाभ दन के बाद जो राशि बचेगी उस पर केन्द्रीय सरकार का भाग होगा।

(८) अथ निगम को अन्य कम्पनियो की भाँति आय कर तथा अतिरिक्त कर (Super tax) भी देना होगा किन्तु केन्द्रीय सरकार से गारन्टी लाभ को पूरा करन के लिए जो राशि मिलेगी वह कर मुक्त होगी।

(९) केन्द्रीय सरकार की पूव अनुमति के बिना अथ निगम को अपना समापन करन का अधिकार नहा है।

(१०) अपन उद्देश्यो की पूर्ति के लिए निगम अन्य काय भी कर सकता है।

(११) अथ निगम किसी एक उद्योग को अपना दत्त पूजी के १०% या ५० लाख रुपये (जो राशि कम हो) स अधिक ऋण नहा द सकता और न किसी उद्योग के अश को ही खरीद सकता है।

ऋण देने की शर्तें—

अपन उद्देश्यानुसार अथ निगम किसी सीमित पब्लिक कम्पनी तथा सहकारी समिति को निम्न शर्तों पर ऋण दे सकता है—

(१) ऋण मुख्यत स्थायी एव अचल सम्पत्ति खरीदन के लिये अचल सम्पत्ति जसे—भू गृहादि यन्त्र औजार आदि, की प्रथम रहन (First Mortgage) पर

दिया जाता है। यह कम्पनी कार्यशील पूँजी के लिए कच्चे पक्के माल के आधीन ऋण न देगी, *क्योंकि यह काम व्यापारिक बैंकों का है। अर्थ निगम उनके साथ प्रतियोगिता* नहीं करना चाहता।

(२) दिये हुए ऋण का समुचित प्रबन्ध एवं व्यय हो रहा है या नहीं इस बात को निश्चित करने के लिये ऋण लेने वाली कम्पनी के सचालकों से उनकी व्यक्तिगत स्थिति में वैयक्तिक तथा सामूहिक जमानत ली जाती है, जिससे उद्योग का प्रबन्ध समुचित रीति से हो सके।

(३) अर्थ निगम को उद्योग की सचालक सभा में दो सचालकों की नियुक्ति करने का अधिकार है, जिससे वे सचालक उद्योग के प्रबन्ध का निरीक्षण करते हैं तथा यह भी देखते हैं कि उसका प्रबन्ध अर्थ निगम के हित में हो रहा है या नहीं।

(४) औद्योगिक कम्पनी को उन्नतिशील वर्षों में होने वाला लाभ लाभांश देने में ही न बाँटा जाय, इसलिए जब तक ऋण का भुगतान न हो तब तक वह उद्योग ६% से अधिक लाभांश न दे सकेगा। हाँ, दोनों की सहमति से इस दर में परिवर्तन सम्भव है।

(५) ऋण भुगतान की अवधि साधारणत: १२ वर्ष है, परन्तु अभी तक जो अधिकतम अवधि दी गई है वह १५ वर्ष है। इस शर्त के अतिरिक्त ऋण भुगतान की अवधि ऋण लेने वाली कम्पनी के व्यापारिक स्वरूप और उसके भविष्य के अनुसार निश्चित की जाती है।

(६) ऋण का भुगतान सामान्यत समान प्रभागों (Equal Instalment) में होना चाहिये, परन्तु ये प्रभाग कितने होंगे, यह दोनों की सहमति से निश्चित होता है।

(७) अर्थ निगम के पास रहन रखी हुई सम्पत्ति का आग, साम्प्रदायिक कलह, विद्रोह आदि की सुरक्षा के लिए किसी अच्छे बीमा प्रमण्डल से बीमा कराना अनिवार्य है।

(८) जब उद्योग को ऋण दे दिया जाता है तो उसका उपयोग जिस कार्य के लिये ऋण लिया गया है उसी कार्य के लिये हो रहा है अथवा नहीं, यह देखने के लिये अर्थ निगम आवश्यक कदम उठाता है।

निगम का प्रबन्ध—

निगम का प्रबन्ध एक सचालक समिति द्वारा होता है, जिसकी सहायता के *लिये एक शासकीय समिति (Executive Committee)* और एक जनरल मैनेजर भी होता है। सचालक समिति में कुल १२ सदस्य हैं, जो निम्नलिखित पद्धति से निर्वाचित अथवा मनोनीत होते हैं :—

(अ) केन्द्रीय सरकार द्वारा मनोनीत— ३
(आ) रिजर्व बैंक द्वारा मनोनीत— २
(इ) अनुसूचित अधिकोषों द्वारा निर्वाचित— २
(ई) सरकारी अधिकोषों द्वारा निर्वाचित— २
(उ) उपर्युक्त अधिकारियों के अलावा अंशधारियों द्वारा निर्वाचित— २
(ऊ) प्रबन्ध संचालक, जिसकी नियुक्ति केन्द्रीय सरकार ने की है— १

प्रबन्ध अथवा शासकीय समिति में ५ सदस्य हैं, जिनमें से प्रबन्ध संचालक तथा निर्वाचित संचालकों के निर्वाचित २ तथा मनोनीत संचालकों द्वारा निर्वाचित २ संचालकगण उद्योग, व्यापार तथा जनहित को सामने रखते हुए व्यापारिक सिद्धान्तों का पालन करेंगे, ऐसी उनसे आशा की जाती है। यदि संचालक समिति उचित समझे तो विभिन्न बातों के विचारार्थ सलाहकार समितियाँ नियुक्त कर सकती है। कॉरपोरेशन की सामान्य नीति का संचालन केन्द्रीय सरकार करेगी। केन्द्रीय सरकार को अन्य अंशधारियों के अंशों को खरीदने का भी अधिकार है। ऐसे क्रय पर वह १०% से अधिक प्रव्याजि न देगी। केन्द्रीय सरकार को कॉरपोरेशन के ऋणों का, विनियोग का, प्रत्याभूतित (Guaranteed) ऋणों का तथा अभिगोपन के अनुबन्धों का परीक्षण करने का भी अधिकार है। इस प्रकार प्रमण्डल की कार्य प्रणाली पर केन्द्रीय सरकार का पूर्ण नियन्त्रण है।

पूँजी का कलेवर—

कॉरपोरेशन की अधिकृत पूँजी १० करोड़ रुपये है जो ५,००० रु० के २०,००० अंशों में विभाजित है। अंशों की मूल राशि तथा २½ लाभांश की प्रत्याभूति केन्द्रीय सरकार ने दी है। इनमें से केवल १०,००० अंशों का ही निर्गमन किया गया है, शेष आवश्यकता के समय निर्गमित किये जायेंगे। इन अंशों का क्रय करने का अधिकार केवल केन्द्रीय सरकार, रिजर्व बैंक, अनुसूचित बैंक, बीमा कम्पनी, पूँजी लगाने वाले ट्रस्ट तथा इसी प्रकार की वित्त संस्थाओं को है, अतएव यह स्पष्ट है कि कॉर्पोरेशन के शेयर खरीदने व पूँजी में योग देने का अधिकार किसी व्यक्ति विशेष को नहीं है।

लाभ वितरण—

प्रमण्डल के नियमों में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि कॉरपोरेशन एक बचत कोष रखेगा। सन्देहास्पद ऋण, सम्पत्ति का मूल्य ह्रास तथा इस प्रकार के अन्य व्यापारिक घाटों के लिए निश्चित करने के बाद यदि कुछ लाभ शेष बचे तो उसे कॉरपोरेशन अंशधारियों में बाँट देगा, किन्तु इस भाग की दर उस समय तक सरकारी गारन्टी से अधिक नहीं हो सकती, जब तक कि उस बचत कोष का धन कॉरपोरेशन की प्राप्त पूँजी के बराबर न हो जाय।

निगम द्वारा किए गये कामों का ब्यौरा—

औद्योगिक अर्थ निगम ने ३० जून सन् १६५६ को ११ वर्ष पूर्ण किए और इन ११ वर्षों में निगम ने अनेक प्रकार की औद्योगिक संस्थाओं को ऋण दिए है। निगम के पास इन ११ वर्षों में जितने आवेदन पत्र आए एव जिन्ह ऋण स्वीकृत किये गए तथा जिन आवेदन-पत्रों को अस्वीकार किया गया, उसका ब्यौरा इस प्रकार है .—

तालिका I

(हजार रुपयों में)

क्रमांक	विवरण	संख्या	३० जून सन् १६५७ तक	संख्या	३० जून सन् १६५८ तक	संख्या	३० जून सन् १६५६ तक
१.	प्राप्त आवेदन-पत्र	६७	२१,३६,२५	४८	१४,८८,५०	२६	११,१६,५७
२	स्वीकृत आवेदन पत्र	५१	११,६०,७५	२२	७,७८,५०	१६	३,७६,००
३.	भुगतान किए गए ऋण	—	६,७७,५०	—	८,३३,३५	—	७,४७,७१
४.	अस्वीकृत प्रार्थना पत्र	१४	४,८७,५०	१	१०,००	३	३१,५०
५.	वापस लिए हुए अथवा लॅप्स्ड(lapsed) प्रार्थना पत्र	१०	७,७३,१०	१०	२,११,५०	२२	६,७६,५०
६.	वर्ष के अन्त में विचाराधीन प्रार्थना पत्र	२६	११,३७,००	४१	१४,६८,४०	२३	११,७०,६७

इस वर्ष ऋण सम्बन्धी प्रार्थना पत्र गत वर्ष की तुलना में कुछ कम रकम के लिए प्राप्त हुए। प्रार्थना-पत्रों की संख्या भी कम थी। इसी प्रकार स्वीकृत कुल रकम भी पहले की अपेक्षा कुछ कम है। इन कमियो का प्रमुख कारण विदशी विनिमय सम्बन्धी कठिनाइयाँ है जिसके परिणामस्वरूप औद्योगिक संस्थायें पूँजीगत सामान आयात नही कर पा रही हैं।

औद्योगिक अर्थ निगम (सशोधन) अधिनियम सन् १६५७ के अन्तर्गत् निगम को स्थगित चुकारों (Deferred Payments) की गारन्टी करने का भी अधिकार मिल गया है। औद्योगिक संस्थाओं द्वारा विदशों से पूँजीकृत माल (Capital Goods) आयात करने के सम्बन्ध में जो स्थगित भुगतान थे, उनकी गारन्टी अर्थ निगम ने दी। इसका संक्षिप्त ब्यौरा इस प्रकार है :—

तालिका II

क्रमाक	विवरण	संख्या	२१ जून सन् १९५७ से ३० जून सन् १९५८ तक रु०	संख्या	३० जून सन् १९५९ तक रु०
१.	स्थगित भुगतान के हेतु गारन्टी के लिए प्राप्त प्राथना पत्र	६	५,२४,००,०००	११	१६,५०,८०,५००
२	स्वीकृत प्रार्थना पत्र ..	२	३,९६,००,०००	२	३५,००,०००
३.	अस्वीकृत " " ..	—	—	—	—
४.	वापस ले लिए गए प्रार्थना पत्र ..	—	—	५	५,१४,१७,७००
५.	विचाराधीन प्रार्थना-पत्र ..	३	१,२८,००,०००	७	१२,२९,६२ ८००

गत वर्षो म अर्थ निगम द्वारा ऋण के हेतु कुल ३०० प्रार्थना पत्र स्वीकार किए गए, जिनमे से १८५ उन नई औद्योगिक सस्थाओ से सम्बन्ध रखते है जिनका उत्पादन काय १५ अगस्त सन् १९४७ के बाद शुरू हुआ। इन सस्थाओ को कुल मिलाकर ४४,२२,५०,००० रुपए की आर्थिक सहायता ऋणस्वरूप दी गई। शेष ११५ सस्थाय पुरानी थी, जिन्हे नवकरण, आधुनिकीकरण तथा कार्य विस्तार के हेतु २२,४६,५०,००० रु० की पूँजी दी गई।

जो प्रार्थना पत्र अस्वीकृत किये गये उनकी अस्वीकृति के कारणो को मोटे तौर पर निम्न प्रकार वर्णित किया जा सकता है :—

(१) प्रार्थी द्वारा योजना का त्याग देना या स्थगित करना,

(२) प्रार्थी द्वारा योजना में सशोधन करना,

(३) प्रार्थी की आर्थिक स्थिति में सुधार,

(४) अन्य श्रोतो से ऋण उपलब्ध हो जाना,

(५) निगम की शर्तों को पूरी न कर पाना।

औद्योगिक अर्थ निगम द्वारा गत ११ वर्षों में भारत के जिन विभिन्न उद्योगो को ऋण स्वीकार किए गए, उनका सक्षिप्त ब्यौरा इस प्रकार है :—

तालिका III

क्रमांक	उद्योग का प्रकार	३० जून सन् १९५८ तक स्वीकृत ऋण रु०	३० जून, १९५९ को समाप्त होने वाले वर्ष के लिए रु०	योग रु०
१.	वस्त्र मशीनरी	८३,००,०००	—	८३,००,०००
२.	मेकेनीकल इन्जीनियरिंग	२,०८,००,०००	२०,००,०००	२,२८,००,०००
३	एलेक्ट्रीकल इन्जीनियरिंग	१,७५,७०,०००	६,००,०००	१,८१,७०,०००
४.	सूती वस्त्र	८ ७२,७५,०००	६५,००,०००	९,३७,७५,०००
५.	ऊनी वस्त्र	३५,००,०००	—	३५,००,०००
६.	रेयन	१,१०,००,०००	—	१,१०,००,०००
७	रासायनिक	८,५३,२५,०००	—	८,५३,२५,०००
८.	सीमेन्ट	५,०७,०० ०००	१,१०,००,०००	६,१७ ००,०००
९.	सेरेमिक एण्ड ग्लास	१,९१,७५,०००	—	१,९१,७५,०००
१०.	तेल मिल	११,००,०००	—	११,००,०००
११.	विद्युत शक्ति	८२,७५,०००	—	८२,७५,०००
१२.	मेटेलर्जीकल उद्योग	४५ ५०,०००	—	४५,५०,०००
१३.	लौह व स्पात	२,२७,५०,०००	३३,००,०००	२,६०,५०,०००
१४.	अल्यूमीनियम	५०,००,०००	—	५०,००,०००
१५.	शक्कर या चीनी	१९,१७,००,०००	१,४५,०० ०००	२०,६२,००,०००
१६	खनिज	३७,००,०००	—	३७,०० ,०००
१७	कागज	५ ७१,५०,०००	—	५,७१,५०,०००
१८.	ऑटोमोबाइल व ट्रेक्टर	१,६४,५०,०००	—	१,६४,५०,०००
१९	प्लाईवुड	३०,००,०००	—	३०,००,०००
२०.	अवर्गित	१,१६,८०,०००	—	१,१६,८०,०००
	योग	६२,९०,००,०००	३,७९,००,०००	६६,६९,००,०००

गत वर्ष अन्तरिम ऋण (Interim Loan) के प्रदान करने में भी निगम ने बड़ी नर्मी दिखलाई। ऐसे ऋणों की मात्रा ४,२४,६५,००० रु० थी।

औद्योगिक अर्थनिगम संशोधन अधिनियम सन् १९५३—

औद्योगिक अर्थनिगम का कार्य क्षेत्र तथा आर्थिक साधन बढ़ाने के लिए उपयुक्त

अधिनियम बनाया गया, जिससे दीर्घकालीन ऋण देने में वह अधिक उपयोगी हो सके। इस संशोधित अधिनियम के अन्तर्गत निगम को निम्नलिखित अधिकार मिल गए हैं —

(१) औद्योगिक संस्थाओं की परिभाषा के अन्तर्गत जहाजी कम्पनियों का भी समावेश होगा, जिन्हे अर्थनिगम ऋण दे सकेगा।

(२) प्रत्येक उद्योग प्रमण्डल को अर्थनिगम १ करोड रुपया अधिकतम ऋण दे सकेगा।

(३) सरकार अथवा अन्तर्राष्ट्रीय बैंक द्वारा भारतीय उद्योगो को जो ऋण दिए गए है, उनका निरीक्षण सरकार एव अन्तर्राष्ट्रीय बैंक के प्रतिनिधि के नाते अर्थ-निगम स्वय करेगा।

(४) अन्तर्राष्ट्रीय बैंक से अर्थनिगम जो ऋण लेगा, उसकी जमानत भारत सरकार देगी तथा इस प्रकार के विनिमय व्यवहारो मे निगम को जो हानि होगी उसकी क्षति पूर्ति केन्द्रीय सरकार करेगी।

(५) केन्द्रीय सरकार की जमानत पर अर्थनिगम किसी एक उद्योग प्रमण्डल को एक करोड रुपये से अधिक ऋण दे सकेगा, परन्तु ऐसी जमानत के लिए अर्थनिगम द्वारा ऋण की स्वीकृति की सिफारिश आवश्यक है।

(६) अर्थनिगम अपनी राशि रिजर्व बैंक की सलाह से किसी भी सूचीबद्ध बैंक अथवा प्रान्तीय सहकारी बैंक के पास निक्षेप (Deposit) मे रख सकेगा। इस संशोधन से यह आवश्यक नही है कि वह अपनी राशि का विनियोग सरकारी प्रतिभूतियो मे ही करे। इससे अर्थनिगम को ब्याज की हानि नही होगी।

(७) अर्थनिगम अपनी कार्यशील पूँजी के लिए १८ माह से अधिकतम अवधि के लिए ३ करोड रुपय का ऋण ले सकेगा। इससे निगम को स्वीकार करते ही बन्ध अथवा ऋण पत्रों के निगमन की आवश्यकता नही रहेगी। जब तक अर्थनिगम का संचित कोष ५० लाख रुपये तक नही हो जाता, तब तक रिजर्व बैंक एव केन्द्रीय सरकार को मिलने वाले लाभांश इसी मे जमा होगे।

(८) किसी ऋण लेने वाले उद्योग का नियन्त्रण अर्थनिगम ले सकेगा। इस सम्बन्ध में ३०A से ३० E तक नई धारायें जोड दी गई है। इससे नियन्त्रित उद्योग में वह अपने संचालकों की नियुक्ति करेगा, जिसके बाद पूर्व संचालक अपना पद छोड देंगे। दूसरे, मैनेजिंग एजेन्टस का उद्योग प्रमण्डल के साथ जो अनुबन्ध होगा उसका बिना किसी क्षति पूर्ति के अन्त हो जायगा। तीसरे, अंशधारियों के मनोनीत संचालकों की नियुक्ति निरस्त होगी और बिना अर्थनिगम की अनुमति के अंशधारियों द्वारा स्वीकृत कोई भी प्रस्ताव कार्यान्वित नही हो सकेगा। चौथे, अर्थनिगम की अनुमति के बिना किसी उद्योग प्रमण्डल का समापन भी नहीं हो सकेगा।

(९) अर्थनिगम की संचालक सभा पर केन्द्रीय सरकार के मनोनीत ४ सचा-

लक होंगे तथा उप प्रबन्ध-सचालक (Deputy Managing Director) सचालक सभा में बैठ सकेगा, किन्तु उसे मत देने का अधिकार न होगा। इसी प्रकार प्रबन्ध-सचालक को किसी भी समय निकाला जा सकता है। हाँ, ऐसी परिस्थिति में प्रबन्ध सचालक को स्पष्टीकरण करने के लिए समुचित अवसर दिया जायगा, किन्तु दो-तिहाई बहुमत से सचालक सभा चाहे तो उसे कर सकती है।

प्रमण्डल की कठिनाइयाँ—

गत वर्षों में कॉरपोरेशन ने करोडो रुपयो के ऋण औद्योगिक सस्थाओ को प्रदान किये, किन्तु फिर भी प्रमण्डल पूर्णरूपेण सहायता नही पहुँचा सका। कॉरपोरेशन का तो अनुभव यह है कि भारतीय औद्योगिक कलेवर की नाडी कमजोर है। प्रमण्डल के मार्ग में मुख्य बाधायें निम्न हैं :—

(१) **योजना का अभाव**—अनेक उदाहरणो में ऐसी योजनाये कॉर्पोरेशन के के पास भेजी गई, जिसमे तान्त्रिक पहलुओ व वित्त समस्याओ पर पूर्ण विचार नही किया गया था। कुछ में तो यह भी नही बताया गया कि भूमि, इमारत, मशीनरी आदि अन्य विभागो पर अलग अलग कुल कितनी राशि व्यय होगी। ऐसे भी उदाहरण है, जहाँ मशीन आदि इसलिए खरीद ली गई है, क्योकि वे सस्ते दामो में उपलब्ध है। ऐसी अधूरी कागजी योजनाओ में वास्तविक योजना के मूल तत्वो का अभाव होना स्वाभाविक ही है। माँग और पूर्ति की समस्याओ पर तो अधिकाँश सस्थायें पर्याप्त रूप से सोचने में असमर्थ रही है, अत. ऐसी दशा में कारपोरेशन के लिए अन्धाधुन्ध ऋण देना क्योकर सम्भव हो सकता है ?

(२) **अपर्याप्त साधन**—अनेक उदाहरण ऐसे है, जिनमें पूँजी आवश्यकता से बहुत कम है। ऐसी सस्थाओ को ऋण देकर उनका अहित करना है।

(३) कुछ उदाहरणो में यद्यपि प्राप्त पूँजी पर्याप्त थी, किन्तु सस्था की अधिकाँश सम्पत्ति गिरवी रखी जा चुकी थी। ऐसे भी उदाहरण है, जहाँ सस्था के सारे अश प्रवतको को उनसे ली गई सम्पत्ति के बदले में दे दिए गए हैं और ऐसी सम्पत्ति बहुत अधिक मूल्य पर प्राप्त की गई है।

(४) ऐसे भी प्रमण्डल है जो ऋण स्वीकृत हो जाने पर भी वैधानिक कार्य-वाही पूरी नही करते और न इस दिशा मे प्रयत्न ही करते है।

अतः औद्योगिक अर्थ प्रमण्डलो को चाहिए कि वे उक्त कठिनाइयो को दूर करने में तथा अधिकाधिक सहायता प्रदान करने में औद्योगिक अर्थ प्रमण्डल को सहयोग दें, तभी विकास सम्भव है।

कॉरपोरेशन के कार्य-क्रम की आलोचना—

(१) अर्थ प्रमण्डल का आरम्भ इतना अच्छा नही रहा, जिससे प्रेरित होकर

इसकी अत्यधिक प्रशंसा की जाय। अन्य देशों की अपेक्षा भारतीय प्रमण्डल ने देश की बहुत थोड़ी सेवा की है।

(२) प्रमण्डल द्वारा दिए गये ऋणों पर ब्याज की दरें सभी संस्थाओं के लिये समान रही हैं। यह बात असंगत प्रतीत होती है, क्योंकि प्रत्येक औद्योगिक संस्था की आर्थिक स्थिति भिन्न होती है, अतएव प्रत्येक संस्था की दृढ़ता तथा भविष्य को ध्यान में रखकर ब्याज की दर निश्चित करनी चाहिये।

(३) ऋण के आवेदन पत्रों पर विचार करते समय कॉरपोरेशन इस बात से अधिक प्रभावित हुआ है कि किस प्रमण्डल के अंशों का मूल्य बाजार में अधिक है और किसका नहीं। यह पद्धति दोषपूर्ण है, क्योंकि 'अंश की कीमत' के अतिरिक्त भी ऐसे अन्य महत्वपूर्ण विषय हैं (जैसे, कम्पनी के पिछले वर्षों का प्रभाव, वर्तमान आय शक्ति, प्रबन्ध सुचारुता इत्यादि) जिनका ध्यान रखना आवश्यक है।

(४) अधिकांश ऋणों की अवधि, जो प्रमण्डल ने औद्योगिक संस्थाओं को दिए हैं, केवल १२ वर्ष की है। यह अवधि बहुत कम है। नियमानुसार अवधि २५ वर्ष हो सकती है, किन्तु इस नियम का अभी तक उपयोग नहीं उठाया गया है।

(५) प्रमण्डल ने अभी तक अंश अथवा ऋण पत्रों के अभिगोपन तथा प्रत्याभूति का कार्य नहीं किया है।

(६) प्रमण्डल की ओर से अभी तक कोई आर्थिक अनुसन्धान विभाग नहीं खोला गया है, जिसकी बड़ी आवश्यकता है।

(७) अंश खरीदने का अधिकार केवल वित्त सम्बन्धी संस्थाओं व केन्द्रीय सरकार को ही है, अतः प्रमण्डल जन साधारण की संस्था नहीं कही जा सकती।

(८) प्रमण्डल द्वारा ऋण केवल सार्वजनिक तथा सहकारी संस्थाओं को ही मिल सकता है, अतः अलोक प्रमण्डल (Private Companies) तथा साझेदारी की संस्थायें इस लाभ से वंचित हैं।

"आलोचना की कई बातों में तथ्य ही नहीं मार्गदर्शन की रेखा भी मिलती है, किन्तु सारी बातें न सही हैं और न सारपूर्ण ही हैं। यदि कॉरपोरेशन अपने अंशों को सभी व्यक्तियों तथा संस्थाओं के लिए केवल अपने नाम के आगे एक जनवादी बिल्ला लगाने के लिए ही उपलब्ध करदे तो लाभ के विपरीत हानि और अनर्थ अधिक होगा। जहाँ तक कॉरपोरेशन के प्रारम्भ का प्रश्न है, वह अन्य देशों की अपेक्षा कुछ कम आशामय लगता है, किन्तु हमें अपने देश की स्थिति और आर्थिक साधनों का भी आलोचना करते समय ध्यान रखना चाहिये। कॉरपोरेशन की स्थापना का मुख्य उद्देश्य ही सार्वजनिक उद्देश्यों को विकसित करना है, अतः साझेदारी व्यापार व निजी उद्योगों की माँग वाली उक्ति भी समझ में नहीं आती।"

हर्ष का विषय है कि कॉरपोरेशन अपने कार्यक्रम सम्बन्धी कतिपय कठिनाइयो को दूर करने का प्रयत्न कर रहा है। ऋण की स्वीकृति और वितरण के बीच जो लबा व्यवधान पड जाता था उसे कम करने के लिए और साथ ही ऋण लेने वाली कम्पनियो पर कानूनी व्ययो का भार कम करने के हेतु कॉर्पोरेशन ने प्रयोग के तौर पर अपनी दो शाखाओं पर कानूनी अधिकारी नियुक्त किये है, जो कॉर्पोरेशन के पास बन्धक रखी जाने वाली जायदाद के स्वत्वाधिकार की जांच किया करेंगे और ऋण सम्बन्धी प्रलेख तैयार करेगे। यदि यह प्रयोग सफल रहा तो प्रत्येक शाखा पर एक-एक कानूनी अधिकारी नियुक्त कर दिये जायेंगे। अपने ग्राहको की अधिक सुविधा के लिये कॉर्पोरेशन ने अन्तरिम ऋण (Interim Loans) देने की शर्तें उदार कर दी है, विशेषत. उन दशाओं में जबकि ऋण सम्बन्धी कानूनी कार्यवाही करनी रह गई है और अतिम निर्णय हो चुका है।

औद्योगिक अर्थ प्रमण्डल का भविष्य—

जिस समय औद्योगिक वित्त निगम स्थापित किया था उस समय केवल वही एक वृहत सरकारी वित्त सस्था थी, लेकिन अब अन्य सस्थाओ का भी विकास हो गया है, जैसे—औद्योगिक साख एव वित्त निगम, राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम, राज्य वित्त निगम, अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम। इसके विपरीत पच वर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत औद्योगिक ऋण लेने वालो की सख्या एव आवश्यकता में भी बहुत वृद्धि हो गई है, अतः निगम के लिए सेवा के अवसर विस्तृत हो गए हैं, किन्तु इस सम्बन्ध में निगम के चेयरमैन की यह चेतावनी उल्लेखनीय है कि यदि निगम पिछले वर्षों की भाँति ही अपने विनियोग का क्षेत्र बढाता गया तो बहुत शीघ्र उसके अपने मौद्रिक प्रसाधन लोप हो जायेंगे और उसे अनुचित शर्तों पर ऋण लेने के लिए विवश होना पडेगा, जिसके फलस्वरूप व्यय काट कर शायद ही कुछ लाभ बचे, अतः इस सम्बन्ध में उचित ध्यान देना आवश्यक है।

निगम के कार्यों की जांच के लिए सन् १९५३-५४ में सरकार ने जो कमेटी नियुक्त की थी, उसने निम्न सुझाव दिये थे:—

(१) जिन उद्योगो में पूर्ण क्षमता पहुँच गई है, उनको ऋण नही देना चाहिए।

(२) ऋण स्वीकृत करते समय जिन सिद्धान्तो का पालन वाछनीय समझा जाय उनके बारे में सरकार निगम को निर्देश दिया करे।

(३) सरकार निगम को स्पष्ट सकेत कर दे कि वह किन क्षेत्रो को पिछडा हुआ माने। इससे निगम इन क्षेत्रो को प्राथमिकता दे सकेगा।

(४) कॉर्पोरेशन इक्विटी केपीटल मे विनियोग न करे, जब तक कि उसका सचित कोष ५ करोड रुपया न हो जाय।

इन सिफारिशों को सरकार ने स्वीकार कर लिया है।

जबकि ऋण मांगने वाला उद्योगपति अपने उद्योग की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर प्रार्थना पत्र देता है, निगम को सरकारी आदेशों का पालन करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में ऋण प्रार्थियों और निगम में समन्वय नहीं हो पाता। इसके लिए हमारा सुझाव है कि निगम के अधिकारी ऋण प्रार्थियों और व्यापारिक मण्डलों के प्रतिनिधियों के समक्ष विचार विमर्श (Personal discussion) करें। यदि ऐसा किया जाय तो एक दूसरे की कठिनाइयों को अधिक समझ सकेंगे।

प्रान्तीय अर्थ निगम (State Finance Corporations)—

अखिल भारतीय औद्योगिक अर्थ प्रमण्डल का क्षेत्र सीमित है, अतः औद्योगिक क्षेत्र के लिए प्रान्तीय अर्थ प्रमण्डलों की आवश्यकता है, जो साझेदारी संस्थाओं, अलोक प्रमण्डलों तथा व्यक्तियों को भी ऋण प्रदान करें। साथ ही, यह भी आवश्यक है कि प्रान्तीय अर्थ प्रमण्डल तथा औद्योगिक अर्थ प्रमण्डल परस्पर सहयोग से कार्य करें, जिससे वे एक दूसरे के पूरक हों, क्योंकि मध्यम एवं लघु उद्योगों को आर्थिक सहायता देने का कार्य क्षेत्र विस्तृत होने से औद्योगिक अर्थ निगम को यह क्षेत्र अपनाने में कठिनाइयाँ भी होंगी। इसी हेतु संसद ने २८ दिसम्बर सन् १९५१ को 'प्रान्तीय आर्थिक अर्थ प्रमण्डल अधिनियम' पास किया, जो सम्पूर्ण भारत में लागू होता है।

इस विधान के अनुसार प्रत्येक प्रान्तीय सरकार अपने प्रान्त में प्रान्तीय अर्थ प्रमण्डल स्थापित कर सकती है। इस अधिनियम की अधिकांश धारायें औद्योगिक अर्थ प्रमण्डल अधिनियम सन् १९४८ से मिलती जुलती हैं। केवल तीन बातों में भिन्नता है—(१) 'औद्योगिक संस्थाओं' की परिभाषा इस प्रकार विस्तृत की गई है कि प्राइवेट लिमिटेड कम्पनियों, साझेदारियों एवं यहाँ तक कि एकाकी स्वामित्व वाली संस्थायें भी इसके क्षेत्र में आ जाती हैं। (२) जन साधारण और अनुसूचित बैंक भी राज्य निगमों की अंश पूँजी में भाग ले सकते हैं। (३) ऋण की अवधि केवल २० वर्ष रखी गई है।

सन् १९५१ का अधिनियम पास होने से अब तक कुल १३ अर्थ निगम बन चुके हैं। इनका कार्य कुछ अधिक संतोषजनक नहीं रहा है और वे लघु एवं मध्यम उद्योगों की विशेष सहायता नहीं कर पाये हैं। इस असफलता के लिए कुछ तो अधिनियम की दुर्बलतायें उत्तरदायी थीं और कुछ सीमा तक लघु उद्योगों का स्वभाव एवं संगठन भी बाधक हुआ। ये उद्योग भली प्रकार संगठित नहीं थे, अतः वे निगम से सहायता माँगने में समर्थ नहीं हुये। फलतः सन् १९५६ में सन् १९५१ के राज्य वित्त निगम अधिनियम में संशोधन किए गए, जिनके उद्देश्य निम्न थे :—

(१) अधिनियम के कार्यान्वित करने में जो कतिपय कठिनाइयाँ गत कुछ वर्षों में अनुभव हुईं उन्हें दूर करना।

(२) दो या दो से अधिक राज्यों को पारस्परिक समझौते द्वारा एक संयुक्त वित्त निगम की स्थापना करने के लिए अनुमति देना।

(३) एक राज्य के विद्यमान वित्त निगम का क्षेत्र दूसरे राज्य पर एक पारस्परिक ठहराव के अन्तर्गत विस्तृत करना।

(४) राज्य वित्त निगम को केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार या अखिल भारतीय वित्त निगम की ओर से एजन्सी कार्य लेने की अनुमति देना।

(५) रिजर्व बैंक से लघुकालीन ऋण लेने की अनुमति देना।

(६) लघु एवं कुटीर उद्योगों को जिनके पास यथेष्ठ सम्पत्ति नहीं है किसी राज्य सरकार या अनुसूचित बैंक या सहकारी बैंक की प्रत्याभूति देने पर आर्थिक सहायता देने की अनुमति प्रदान करना।

(७) निगमों को अपने अधिकार में की गई औद्योगिक संस्थाओं के कुशल प्रबन्ध संचालन के लिए अधिकार प्रदान करना।

(८) रिजर्व बैंक को केन्द्रीय सरकार की आज्ञा पर राज्य वित्त निगमों की कार्य प्रणाली को जाँचने की अनुमति प्रदान करना।

यह अनुभव किया गया है कि लघु उद्योगों के विकास से रोजगार में विशेष वृद्धि होगी और आय में असमानता घटेगी अतः इनकी उन्नति पर सरकार बड़ा ध्यान दे रही है। लघु उद्योगों की उन्नति के लिए वित्तीय सहायता बड़ी आवश्यक है जो केवल राज्यों के वित्त निगम ही दे सकते हैं। राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम इनको अधिक सहायता नहीं दे सकता क्योंकि लघु उद्योग सारे देश में बिखरे हुए हैं।

प्रबन्ध—

प्रत्येक प्रान्तीय संस्था के प्रबन्ध के लिए १० सदस्यों की एक सभा होगी जिसके सदस्यों की नियुक्ति इस प्रकार की जायगी —

(क) प्रान्तीय सरकार द्वारा मनोनीत संचालक	३
(ख) रिजर्व बैंक	१
(ग) औद्योगिक अर्थ निगम	१
(घ) प्रान्तीय सरकार द्वारा नियुक्त प्रबन्ध संचालक	१
(ङ) अनुसूचित बैंकों, सहकारी बैंकों, अन्य आर्थिक व्यवसायों तथा अंशधारियों में से प्रत्येक का अलग अलग प्रतिनिधि संचालक	४
कुल	१०

राज्य वित्त निगमों के कार्य—

राज्य वित्त निगम को निम्न के लिये अधिकार दिये गये हैं

(१) औद्योगिक संस्थाओं को ऋण देना या उनके ऋण पत्र खरीदना, जो कि २० वर्ष में वापस लिये जा सकते हैं।

(२) औद्योगिक संस्थाओं द्वारा खुले बाजार में (२० वर्ष की अवधि में चुकता किये जाने वाले) ऋण निर्गमनों की प्रत्याभूति देना।

(३) औद्योगिक संस्थाओं के अंशों, ऋण पत्रों, बॉन्ड आदि का अभिगोपन करना, बशर्ते जो अंश आदि निगम को लेने पड़ें उन्हें ७ वर्ष के अन्दर बाजार में बेच दिया जाय।

पहले दो प्रकार की अर्थ सहायता निगम औद्योगिक संस्थाओं को तभी देगा जबकि उसके लिए पर्याप्त प्रतिभूति दी जाय, जोकि सहकारी या अन्य प्रतिभूतियों, स्वर्ण, चल या अचल सम्पत्ति के रूप में हो सकती है। हाँ, जब किसी राज्य सरकार या अनुसूचित बैंक या सहकारी बैंक ने प्रत्याभूति दी हो तो बिना पर्याप्त प्रतिभूति लिये ही निगम उक्त सुविधाएँ दे सकता है। एक औद्योगिक संस्था को निगम की दत्त पूँजी के १०% से या १० लाख रु० से, जो भी कम हो, अधिक सहायता नहीं दी जा सकती। यही नहीं, चूँकि निगम का मुख्य उद्देश्य औद्योगिक संस्थाओं को पूँजी प्राप्त करने में सहायता देना है, न कि एक सूत्रधारी कम्पनी या विनियोग प्रन्यास का कार्य करना, अतः निगम प्रत्यक्ष रूप से किसी कम्पनी के शेयर या स्टॉक नहीं खरीद सकता।

राज्य वित्त निगमों के अब तक किए गए कार्यों की आलोचना—

यद्यपि कई राज्यों में अभी वित्त निगम भली प्रकार स्थापित नहीं हो पाये हैं, तथापि कुछ वित्त निगमों के कार्यों से यह प्रकट होता है कि यदि उनकी संरचना एवं कार्य प्रणाली में कुछ परिवर्तन कर दिये जायें तो वे अधिक उपयुक्त बन सकते हैं। निगमों की प्रमुख कठिनाइयाँ निम्नलिखित हैं :—

(१) इन निगमों की रचना ऐसी है कि उद्योगों को अपने विस्तार के लिये अतिरिक्त स्थायी सम्पत्तियों (मशीनों, इमारतों आदि के रूप में) खरीदने के हेतु पूँजी की सहायता मिल सकती है, किन्तु अधिकांश लघु उद्योगों को कार्यशील पूँजी चाहिये, जिसे देने में राज्य निगम संकोच करते हैं।

(२) अधिकांश लघु उद्योगों का संगठन छोटे पैमाने पर हुआ है। उनकी वित्तीय आवश्यकताएँ निगम के कार्य क्षेत्र से परे रह जाती हैं, क्योंकि राज्य निगम एक न्यूनतम राशि से कम आर्थिक सहायता नहीं देते।

(३) लघु उद्योगों द्वारा उचित रूप से हिसाब किताब नहीं रखा जाता। ये उद्योग प्रायः एकल स्वामित्व या साझेदारी के आधार पर संगठित किये गये हैं। अतः इन पर हिसाब किताब सम्बन्धी कोई वैधानिक प्रतिबन्ध भी नहीं है। जब निगम किसी

उद्योग को सहायता स्वीकृत करता है तो वह यह आशा करता है कि उचित हिसाब-किताब रखा जायगा। छोटे छोटे उद्योग इसके लिये अपने को असमर्थ पाते हैं।

( ) लघु उद्योगों के पास प्रतिभूति के रूप में देने के लिए पर्याप्त स्थायी सम्पत्ति (B ock assets) नहीं है। भूमि और भवन प्राय. किराये का होता है, मशीनें भी कम होती है। यही नहीं, स्थायी सम्पत्ति का ५० % मर्जिन भी निगम छोड़ता है। फलस्वरूप उद्योग निगम को पर्याप्त प्रतिभूति नहीं दे पाते।

(५) अधिकांश राज्य वित्त निगमों ने कर मुक्त २½% न्यूनतम लाभांश की गारन्टी के आधार पर पूंजी प्राप्त की है, जिसके कारण वे स्वय उद्योगों से ६% या ७% ब्याज लेने के लिये विवश हो जाते हैं, किन्तु यही अन्त नहीं है। उद्योगों को ऋण लेने में कुछ व्यय करना पड़ता है, जिसको मिलाकर कुल ब्याज लगभग ९-१०% पड़ जाता है।

STANDARD QUESTIONS

1. How far do you think the establishment of the Industrial Finance Corporation has been able to remove the drawbacks of Indian industrial finance and has helped in the growth of large scale industries in the Indian Union ? Examine critically in the light of its working for the last year.

2. Review the working of State Finance Corporations during the few years and offer suggestions for their better working

अध्याय १७

औद्योगिक अर्थ प्रबन्धन के लिये विशिष्ट संस्थायें (II)

(Special Institution for the financing of Industries)

अन्य विशिष्ट अर्थ सस्थायें

(१) राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम •

हमारे देश म बहुत दिना स राष्टाय औद्यागिक विकास निगम (National Industrial Development Corporation) की चर्चा चल रही थी। सौभाग्य का विषय है कि २० अक्टूबर सन् १९५४ को इस सस्था की स्थापना देहली में हो गई है। यह एक विशुद्ध राजकीय सस्था है, अत यह पूर्ण रूप से सरकारी स्वामित्व एव नियन्त्रण म रहेगी, किन्तु औद्योगिक विकास तथा आधारभूत उद्योगो की स्थापना के हेतु आवश्यक तात्रिक अनुभव प्राप्त करन के लिये वह व्यक्तिगत उपक्रमियो (Private Enterprise) का सहयोग भी प्राप्त करेगी। यह सहकारिता इसी दृष्टि से प्राप्त की जा रही है, क्योंकि देश को औद्योगिक विकास की तीव्र आवश्यकता है तथा उपभोक्ता उद्योगों (Consumer Industries) में व्यक्तिगत उपक्रमो ने बहुत कुछ काय किया है एव भविष्य में भी वे देश की आवश्यकता को पूरा करन म काफी सहायक हो सकते है।

पूँजी—

'राष्ट्रीय औद्योगिक विकास' निगम की पूँजी एक करोड रुपया है, किन्तु प्रारम्भिक अवस्था में केवल १० लाख रुपये की दत्त पूँजी होगी, जो सरकार देगी। इस निगम का रजिस्ट्रेशन भारतीय कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत किया गया है। इस निगम को जो अतिरिक्त राशि की आवश्यकता होगी वह केन्द्रीय सरकार निम्न रीति से प्रदान करेगी —

(१) औद्योगिक योजनाओ के अध्ययन, अनुसधान एव औद्योगिक निर्माण के लिए तथा ऐसी ही अन्य औद्योगिक योजनाओ की पूर्ति के लिए देश में आवश्यक तान्त्रिक एव शास्त्रीय कर्मचारियो का दल तैयार करन

के लिए वार्षिक अनुदान द्वारा। अनुदान की इस राशि का आयोजन वार्षिक बजट में किया जायगा।

(२) औद्योगिक विकास निगम की प्रस्तावित औद्योगिक योजनाओं की पूर्ति के लिये आवश्यकता के समय देकर।

प्रबन्ध—

औद्योगिक विकास निगम का प्रबन्ध एक सचालक सभा द्वारा होगा, जिसमें २० सदस्य है। वाणिज्य एव उद्योग मन्त्री इसके सभापति है। इन सचालको को केन्द्रीय सरकार ने मनोनीत किया है। औद्योगिक अनुभव तथा तान्त्रिक एव इन्जीनियरी कार्यक्षमता की दृष्टि से सचालक सभा मे १० उद्योगपति, ५ अधिकारी तथा ४ इन्जीनियर हैं।

उद्देश्य—

(१) राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम का प्रमुख उद्देश्य देश की औद्योगिक उन्नति के लिए आवश्यक मशीनरी एव यत्र प्रदान करना तथा आधारभूत उद्योगों का प्रवतन एव उनकी स्थापना करना।

(२) देश के औद्योगिक विकास में सहायक वतमान व्यक्तिगत उद्योगो को तान्त्रिक एव इन्जीनियरिंग सेवाओं की सुविधा देना तथा यदि आवश्यक हो तो पूँजी देना।

(३) व्यक्तिगत उपक्रमियो को सरकार द्वारा स्वीकृत औद्योगिक योजनाओ की पूर्ति के लिए आवश्यक तान्त्रिक, इन्जीनियरिंग, आर्थिक अथवा अन्य सुविधायें प्रदान करना।

(४) प्रस्तावित औद्योगिक योजनाओं की पूर्ति के लिए आवश्यक अध्ययन करना, उनको तान्त्रिक, इन्जीनियरिंग तथा अन्य सुविधायें प्रदान करना तथा उनकी पूर्ति के लिए धन देना।

इस प्रकार राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम का उद्देश्य लाभार्जन न होते हुए देश के सुदृढ औद्योगिक कलेवर के निर्माण में सरकार के एजेन्ट के रूप में कार्य करना है, ताकि जल्दी से देश का औद्योगिक विकास हो सके।

इस उद्देश्य से निगम के बोर्ड ने २३ अक्टूबर सन् १९५४ को हुई अपनी पहली मीटिंग में उद्योगो की अस्थायी सूची तैयार की, जिसके अध्ययन से निगम को इस बात का पता लग जाय कि नया औद्योगिक विकास किस सीमा तक आवश्यक है और विद्यमान उद्योगों को किस सीमा तक बढाना चाहिए ? चुने गये उद्योग इस प्रकार है :—

(१) कुछ उद्योगो के लिए (जसे जूट कपास वस्त्र चीनी कागज सीमेंट, रासायनिक छपाई खान निर्माण एव यान्त्रिक ग्रावागमन ग्रादि उद्योग) मशीनरी ग्रौर साज सज्जा (Machinery and Equipment) का निर्माण।
(२) लौह मिश्रण ग्रौर मगनीज फरोक्राम।
(३) अल्यूमिनियम।
(४) ताबा जस्ता ग्रौर ग्रलोह धातुय।
(५) डीजल इजन ग्रौर जनरेटर।
(६) भारी रासायनिक द्रव्य।
(७) खाद ग्रौर उवरक।
(८) कोयले ग्रौर कोलतार का सामान।
(९) मथानाल, फोरमेलडिहाइड।
(१०) काजल।
(११) कागज ग्रखबारी कागज ग्रादि बनाने के लिये लकडी की लुगदी।
(१२) कृत्रिम दवाय विटामिन ग्रौर हारमोन।
(१३) एक्सर ग्रौर डाक्टरी ग्रौजार ग्रादि।
(१४) हाइबोड ग्रौर इन्सूलेशन बाड ग्रादि।

लेकिन यह स्पष्ट है कि मशीनरी ग्रौर साज सज्जा के निर्माण पर काफी जोर दिया गया है क्योकि ग्रगले कुछ वर्षों म ग्रौद्योगिक विकास के विशाल कायक्रम पूरे करने पड गे। स्थूल मशीनरी एव उद्य ग की स्थापना के ग्रलावा निगम कुछ विद्यमान उद्योगो को उनसे विशाल पैमाने पर उनके विकास के हेतु भी सहायता करेगा। उदाहरण के लिए भारत सरकार देश म ३० नये चीनी मिल स्थापित करके चीनी का उत्पादन १२ लाख टन से बढाकर १८ लाख टन करने का विचार कर रही है ग्रत नये चीनी कारखानो की स्थापना के लिए उदारतापूवक लाइसे स दिये जा रहे है। सूती वस्त्र उद्योग की क्षमता म भी १०० बुनाई मिलो के बराबर वृद्धि करना ग्रावश्यक है। सीमट का उत्पादन भी सन् १९६१ तक ४ ५ मिलियन टन से १० मिलियन टन तक बढना चाहिए ग्रत निगम इन क्षत्रो में ग्रतिरिक्त इकाइयां स्थापित करना चाहता है।

कुछ उद्योगो म जहा प्राइवेट ग्रौर पब्लिक प्रयत्नो द्वारा कुछ उन्नति दिखाई गई है जैसे कि ग्रल्मूनियम ग्रौर फर्टिलाइजर उद्योगो म, निगम कोई हस्तक्षप नही करेगा। वह केवल तब ही सामने ग्रावेगा जब ग्रधिक सहायता या काय की ग्रावश्यकता हो। फरोमैगनीज उद्योग म भी यदि प्राइवेट प्रयत्नो द्वारा प्रस्तावित ग्रौर सर

कार द्वारा स्वीकृत योजनायें पूरी हो जाती हैं तो निगम कोई हस्तक्षेप नहीं करेगा। हाँ, सेव्य पदार्थों के उपयोग और कच्चे माल के निकास में काफी टैक्नीकल छानबीन और सहायता की आवश्यकता है, अतः निगम ने अपने उद्योगों की सूची में रेयोन, कागज, मजबूती कागज आदि के उत्पादन में काम आने वाले कोयला, कोलतार, लकड़ी की लुगदी आदि शामिल कर लिये हैं। इस काम के लिए एक जर्मन विशेषज्ञ भी आमन्त्रित किया गया है।

निगम के बोर्ड ने अनुभव किया है कि देश के शीघ्र औद्योगीकरण के लिए सबसे पहली बात उद्योगों को ठोस टैक्नीकल सहायता प्रदान करना है, अतः उसने परामर्शदाता इन्जीनियरों की एक संस्था स्थापित करने पर जोर दिया है। योग्य कार्यकर्त्ताओं का देश में मिलना कठिन होने के कारण उसने यह सुझाव दिया कि प्रारम्भिक अवस्था में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त किसी फर्म को भारत में अपना कार्यालय खोलने के लिये आमन्त्रित किया जाय और यदि आवश्यक हो तो उसे कुछ फीस भी दी जाय। इस फर्म की सेवायें प्राइवेट उद्योगों के लिए भी सुलभ की जावेंगी। इसके अतिरिक्त बोर्ड ने यह भी निश्चय किया है कि व्यापक अनुभव वाले ३ या ४ इन्जीनियर भी रखे जावें, जो निगम को उसके सामने आने वाली टैक्नीकल समस्याओं के हल करने और निगम द्वारा कार्यान्वित की जाने वाली विशिष्ट-योजनाओं की रूप-रेखा तैयार करने के लिए उपयुक्त सलाह देंगे। इन प्रारम्भिक निर्णयों से यह प्रगट होता है कि निगम का दृष्टिकोण बड़ा व्यावहारिक है और वह अपने कार्यों को वास्तविक रूप में हल करना चाहता है।

(२) औद्योगिक ऋण एवं अर्थ निगम

(Industrial Credit and Finance Corporation)

यह एक विशुद्ध गैर सरकारी संस्था है, जिसकी स्थापना जनवरी सन् १९५५ में २५ करोड़ रुपये की अधिकृत पूँजी से हुई है। इसका मुख्य उद्देश्य नये उद्योगों के प्रवर्तन को प्रोत्साहित करना, विद्यमान उद्योगों का विस्तार तथा आधुनिकीकरण करना एवं टेक्निकल तथा प्रबन्ध सम्बन्धी सहायता देना है, जिससे राष्ट्रीय उत्पादन 'दिन दूनी रात चौगुनी' उन्नति करे और रोजगार के अवसरों की वृद्धि हो।

उद्देश्य—

औद्योगिक ऋण एवं अर्थ निगम का प्रमुख उद्देश्य व्यक्तिगत क्षेत्रों के औद्योगिक उपक्रमों को सहायता प्रदान करना है। यह सहायता निम्न रीति से दी जावेगी :—

(१) ऐसे उपक्रमों के निर्माण, विस्तार एवं आधुनिकीकरण में आर्थिक सहायता देना।

(२) एसे उपक्रमो में देशी एव विदेशी व्यक्तिगत पूँजी के विनियोग को प्रोत्साहन देना ।

(३) विनियोग विपणि का विस्तृत करना एव औद्योगिक विनियोगो के व्यक्तिगत स्वामित्व को प्रोत्साहित करना ।

(४) व्यक्तिगत उपक्रमियो को मध्यकालीन एव दीर्घकालीन आर्थिक सुविधाय देना अथवा उनके निर्गमित साधारण अशो को खरीद कर आर्थिक सुविधाय देना ।

(५) नई कम्पनिया क अशा एव प्रतिभूतियो का अभिगोपन करना ।

(६) व्यक्तिगत उपक्रमा के लिए व्यक्तिगत विनियोग श्रोतो से प्राप्त ऋणो की जमानत देना ।

(७) चक्रिन विनियाग द्वारा पुन विनियोग के लिए व्यक्तिगत उपक्रमो को राशि प्रदान करना ।

(८) व्यक्तिगत उपक्रमा को प्रबन्ध सम्बन्धी तान्त्रिक एव शासकीय सलाह देना एव उनके उद्योगा को इस हेतु आवश्यक विशेषज्ञ प्रदान करना ।

प्रबन्ध--

इस निगम का प्रबन्धक सचालक सभा द्वारा होगा, जिसमे ११ सदस्य तथा १ जनरल मैनजर होगा । इन सचालको में ७ भारतीय, २ ब्रिटिश, १ अमरीकी तथा १ सचालक वाणिज्य एव उद्योग म त्रालय की ओर से है । इसके जनरल मैनजर बैंक आफ इङ्गलड के प्रमुख कोषाध्यक्ष पी० एस० बील है तथा चेयरमैन श्री रामास्वामी मुदालियर है ।

निगम न प्रारम्भ म १००) वाले ५,००,००० पूर्णत शोधित साधारण अश निर्गमित किये है, जो निम्न प्रकार से लिये गये है :—

(१) कई भारतीय बैंक तथा बीमा कम्पनियाँ और कुछ सचालक तथा उनके मित्र	२,००,०००
(२) अमरीका के कुछ नागरिक और निगम	५०,०००
(३) ब्रिटिश ईस्टर्न एक्सचेन्ज बैंक और ब्रिटेन तथा कामनवेल्थ के कुछ अन्य देशो की बीमा कम्पनियाँ तथा अन्य ब्रिटिश कम्पनियाँ	१,००,०००
(४) शेष आम जनता को प्रस्तुत	१,५०,०००

भारत सरकार न कम्पनी को ७½ करोड रुपए की राशि देना स्वीकार कर लिया है, जिस पर कोई व्याज न होगा । यह राशि कम्पनी को धन मिलने की तिथि से १५ वर्ष बीत जान के बाद स शुरू होने वाली १५ वार्षिक किश्तो में चुकाई

जावेगी । सरकार को एक सचालक नामांकित करने का अधिकार है । विश्व बैंक ने कम्पनी को समय समय पर विभिन्न मुद्राओं में १ करोड डालर की राशि उधार देना स्वीकार कर लिया है । इस प्रकार निगम को १७½ करोड रुपये की कार्यशील पूँजी मिल गई है । यह भी आशा है कि इस निगम के माध्यम से विदेशी पूँजी को ऋणों के रूप में आने में मदद मिलेगी और कुछ ही समय में निगम के पास ५० करोड रुपये हो जावेंगे ।

निगम के अशधारी दूर-दूर तक फैले हुए है और इसके कार्यों तथा पूँजी नियोजन के अन्तर्गत छोटे-बडे सब तरह के उद्योग धन्धे आ जायेंगे । निगम दीर्घकालीन और मध्यकालीन ऋण देगा, अश पूँजी मे भाग लेगा और प्रतिभूतियो के नये निर्गमन का आगोपन करेगा । निगम का प्रारम्भिक धन और वह धन जो इसको विश्व बैंक से मिलता है, यदि विवेक से काम में लाया जाय तो वह देश में व्यक्तिगत पूँजी बाजार के साधनो को और भी बढा सकता है तथा भविष्य में उपलब्ध सरकारी तथा अर्द्ध सरकारी सुविधाओ को प्रोत्साहित कर सकता है ।

निगम के कार्य और उनकी आलोचना—

सन् १६५६ के अन्त में कम्पनी ने २४ योजनाओ के सम्बन्ध में सहायता देना स्वीकार किया था और शेष विचाराधीन थी । बाद मे कुछ और योजनायें स्वीकृत की गई । इस प्रकार कुल २८ योजनाओं के लिए ८ करोड से अधिक रुपया स्वीकृत किया जा चुका है । निगम के लिए यह कोई बडी सफलता नही कही जा सकती । यह भी दोष बताया जाता है कि निगम का कार्य बहुत धीमा है और अपनी ऋण एव विनियोग नीति मे वह अत्यधिक कृपणता से काम ले रहा है ।

इस सम्बन्ध में कम्पनी की द्वितीय वार्षिक व्यापक सभा में जोकि २२ अप्रैल सन् १६५७ को बम्बई में हुई, अध्यक्ष पद से अपने भाषण मे श्री रामास्वामी मुदालियर ने पर्याप्त प्रकाश डाला है । उन्होने बताया है कि निगम के विरुद्ध आक्षेपो की जांच कराई गई है और वे सही नही लगे । उन्होने बताया कि कम्पनी को प्रारम्भ हुए अभी थोडा समय हुआ है, अत: सगठित होने व अनुभव प्राप्त करने में कुछ समय लगना अनिवार्य है । ऐसा ही कारोबार करने वाली भारत और विदेशो की अन्य कम्पनियो का भी रिकार्ड उनकी प्रारम्भिक अवस्थाओ में बहुत कुछ इस निगम के ही समान था । फिर निगम का कार्य क्षेत्र पर्याप्त विस्तृत है । वह कुछ ऐसे कार्यों को भी कर रहा है, जो कि अन्य कम्पनियो ने भारत में नही किये । निगम कोई पूर्णतः ऋण देने वाली कम्पनी मात्र नही है, जिसका सम्बन्ध केवल उस प्रतिभूति से हो जोकि बदले में उसे दी जा रही है । इसने अशो के अभिगोपन का कार्य भी किया और वस्तुत: कई कम्पनियो की अश पूँजी में भाग लिया है । इस सबके लिए यह स्वाभाविक है कि कम्पनी द्वारा प्रस्तुत किए गये आवेदन पत्रों की निकट से जांच की जाय ।

(१) जहां उचित शर्तों पर यथष्ठ प्राइवेट पूंजी सुलभ नहीं है वहां पनभुग तान के सम्बध म सरकारी गारन्टी की अपक्षा बिना और प्राइवेट विनियोगकी के सहयोग म उत्पादक प्राइवेट उपक्रमों में विनियोग करना।

(२) विनियोग के सुग्रवसरो प्राइवेट पूँजी (देशी एव विदेशी) एव अनुभवी प्रब धको को परस्पर समन्वित करन के लिए क्लियरिंग हाउस का काम करना।

(३) प्राइवेट पूंजी के उत्पादक विनियोग को प्रोत्साहित करना।

कारपोरेशन अन्तर्राष्ट्रीय बक क साथ मिल कर काम करेगा यद्यपि उनका एक पृथक वैधानिक अस्तित्व है और उसके कोप भी बक स बिल्कुल पृथक है। जो सरकार बक की सदस्य है वे ही निगम की सदस्य बन सकती है। बक के वे एक्जक्यूटिव डाइरेक्टर जो कम स कम एक सरकार का प्रतिनिधित्व करते है, निगम के डाइरेक्टर का भी काम करेंगे। बैंक का प्रसीडे ट इस बोड का चेयरमैन होगा। निगम का प्रसीडे ट बोड आफ डाइरेक्टस द्वारा चेयरमन की सिफारिश पर नियुक्त किया जाता है और निगम का अपना स्टाफ है।

विनियोग सम्बन्धी प्रस्ताव की स्वीकृति के लिए योग्यता गुण—

निगम विनियोग सम्बन्धी उन्ही प्रस्तावो पर विचार करेगा जिनका उद्देश्य *किसी उत्पादक प्राइवेट उपक्रम (Productive Private Enterprise) की* स्थापना विस्तार या सुधार करना है। निगम से वित्तीय सहायता पान वाले उपक्रम किसी सदस्य दश में ही स्थापित होन चाहिए। प्रारम्भिक वर्षों म कारपोरेशन कवल अविकसित देशो के बारे म ही अपना ध्यान केद्रित करेगा। निगम यह आशा करता है कि प्राइवेट विनियाग भी आवश्यक पूँजी का कम से कम आधा होगा। वस्तुत निगम वित्तीय सहायता के लिए तभी हाथ बढायेगा जबकि प्राइवेट विनियोग यथा सम्भव पूँजी दे चुके हो और नए पूजी समुचित शर्तों पर प्राप्त करना असम्भव हो। प्रारम्भिक वर्षों म निगम एसे ही विनियोग प्रस्तावा पर विचार करेगा जिनम उपक्रम का नया विनियोग कम से कम ५ लाख अमेरिकन डालर है और निगम स कम स कम १ ०० ००० डालर की सहायता मांगी गई है। सहायता की अधिकतम मात्रा तो अभी निर्धारित नही की गई किन्तु सामान्य नीति यह होगी कि कुछ इन गिन उपक्रमो *म बडी राशियां लगान की अपेक्षा पर्याप्त सख्या म समुचित मात्रा क विनियोग* किये जाय।

यो तो कार्पोरेशन म औद्योगिक कृषि वित्तीय व्यापारिक एव अन्य प्राइवेट उपक्रम सभी सहायता ले सकते है बशर्ते उनका काय उत्पादन म सम्बध रखता है तथापि *प्रारम्भिक वर्षों म कार्पोरेशन उन्ही उपक्रमो को चुनेगा जो कि औद्योगिक* प्रकृति क हो। वह गृह निर्माण अस्पताल स्कूल आदि सामाजिक उपक्रमो या साव

जनिक उपयोगिता क उपक्रमो में विनियोग नही करेगा। निगम किसी ऐसे वित्त प्रबन्ध में भी भाग न लेगा जोकि पुर्नप्रवन्धन (re financing) के लिए हैं।

निगम केवल प्राइवेट उपक्रमो को सहायता देगा, सरकारी उपक्रमो को नही। किसी उपक्रम में सरकारी कोष लगे रहने से ही वह निगम की सहायता से वचित नही होगा, बशर्ते उसका स्वभाव एक प्राइवेट उपक्रम जैसा हो।

विभिन्न विचार-योग्य प्रस्तावो पर अतिम निर्णय देते समय कॉरपोरेशन निम्न बातो का ध्यान रखेगा —

(१) निगम की सहायता से अन्य विनियोगको द्वारा प्राइवेट पूँजी का विनियोग कितना बढ जायगा ?

(२) निगम व उसके सहयोगियो को विनियोग से लाभ की क्या सम्भावनायें हैं ?

(३) निगम क विनियोग करने से उत्पादन को कितना प्रोत्साहन मिलेगा।

वित्तीय रूप के प्रबन्ध एव ढग—

कॉरपोरेशन को यह अधिकार है कि वह किसी भी रूप में विनियोग कर, किन्तु केवल एक अपवाद यह रखा गया है कि वह पूँजी अशो में विनियोग नही कर सकता, अत. निगम के विनियोग ऋण के समान होगे, किन्तु साधारण ऋणो की भाति नही होगे। कॉर्पोरेशन अपना विनियोग निरन्तर बदलता रहना चाहता है, अत. प्रत्येक दशा में उसका प्रमुख उद्देश्य विनियोग के सम्बन्ध मे ऐसा अधिकार प्राप्त करना होगा कि ऋण को अशो में बदला जा सके। कॉर्पोरेशन स्वय इस अधिकार का प्रयोग नही करेगा, किन्तु जिसे वह अपने ऋण बेच देगा वह ऐसा कर सकेगा। इस प्रकार निगम अपने सफल विनियोगो को लाभ पर बेच सकेगा। कॉरपोरेशन यह भी चाहगा कि स्थायी ब्याज के अलावा उसे लाभो में भी कुछ भाग दिया जाय, जिसस उपयुक्त क्रेता मिलने तक वह लाभ ग्रहण कर सके।

ब्याज की दर प्रत्येक दशा में विशिष्ट परिस्थितियो एव जोखम के अनुसार निश्चित की जावेगी। निगम द्वारा दिये गये ऋणो की अवधि प्राय: ५ से १२ वर्ष तक हुआ करेगी। किश्तो मे भी विनियोग के भुगतान की व्यवस्था की जा सकती है। निगम ऋण जमानत पर या बिना जमानत के दे सकता है। यदि वह जमानत लेगा तो उसका क्या रूप होगा, यह प्रार्थी की हैसियत एव विनियोग की शर्तो पर निर्भर है।

वित्तीय सहायता की रकम इकट्ठी दी जा सकती है या किश्तो मे। इस रकम का प्रयोग प्रार्थी उपक्रम अपने सामान्य व्यापारिक कार्यों में कर सकता है, किसी विशिष्ट सेवा या माल के भुगतान में उसका प्रयोग किया जाय, ऐसा कोई प्रतिबन्ध

नहो है। साधारणत ऋण का अमरीकी डालरा म मूल्याकन किया जायगा किन्तु उप युक्त दशा म वह अन्य करसी म भी किया जा सकता है।

निगम तब ही विनियोग करेगा जब उसे यह सन्तोष हो जाय कि प्रार्थी उपक्रम का प्रबधक वग योग्य एव अनुभवी है। किन्हा आवश्यक दशाओ म निगम उपयुक्त प्रबन्धक खोजन म सहायता दे सकता है किन्तु वह स्वय प्रबन्ध का उत्तरदायित्व ग्रहण नही कर सकता। निगम सामान्यत अपन प्राइवेट सहयोगियो से ही प्रबन्धक उपलब्ध करन की अपेक्षा रखता है। हा इतना वह अवश्य चाहेगा कि प्रबन्ध म कोई बडा परिवतन करन से पूव उसकी राय ले ली जायगी। वह बोड आफ डा रेक्टस म अपन प्रतिनिधि भी रख सकता है।

निगम इस बात का सन्तोष प्राप्त करना चाहेगा कि उपक्रमा को वास्तव म उस ऋण की आवश्यकता है और प्रबधको न एक उपयुक्त कायक्रम भी तयार कर लिया है। वह सस्था द्वारा पू जीगत सामान और सेवाओ के खरीदन का ढग भी जाच सकता है जिससे उसके विनियोग सुरक्षित रहे। यह भी आवश्यक है कि उपक्रम के हिसाब किताब का सरकारी अकेक्षको से निरीक्षण कराया जाय तथा वे निगम के प्रतिनिधियो के लिये खुले रहे। निगम को वार्षिक खाते प्रगति विवरण एव अन्य सूचनाए भजी जाय। निगम के प्रतिनिधियो को सहायता लेन वाले के उपक्रम प्लाण्ट *कारखान आदि को देखन का भी अधिकार होगा।*

कापारेशन सरकार की गारटी नहा मागेगा। हा यदि देश की सरकार को आपत्ति है तो कार्पोरेशन विनियोग नही करेगा। सम्बन्धित देश की सरकार को आपत्ति करन के लिये उचित अवसर प्रदान किया जाय। यदि किसी सदस्य देश की सरकार न विदेशी विनिमय पर प्रतिबन्ध लगा रखा हो तो एक साधारण विनियोगक के रूप म निगम अपन विनियोग एव तत्सम्बन्धी लाभ के ट्रासफर के लिये सरकार के साथ उचित समझौता करेगा। इन सब मामला म निगम कोई विशेष अधिकार नही चाहेगा।

(५) पुनःअर्थ प्रबन्धन निगम

(Refinance Corporation)

इस निगम की स्थापना का सुझाव बडा महत्वपूर्ण है। यद्यपि दीघकालीन साख की आवश्यकताओ को पूरा करन के लिए कई सस्थाय इस देश म है तथापि एसी कोई सस्था नही है जोकि केवल मध्यकालीन साख दन के लिए हो अत एसी सस्था की आवश्यकता है। अधिकाश बका न अपन मुवक्किलो को जो ऋण दे रखे है व कागज पर तो अल्पकालीन ऋण है परन्तु व्यवहार म उन्हे मध्यकालीन ऋण कह सकत है क्योंकि उन्हे समय पर नया करा लिया जाता है किन्तु यह एक अस्थाई युक्ति

है और फिर द्रव्य बाजार की आजकल जैसी गिरी दशा है उसे देखते हुए तो बैंकों को बड़ी कठिनाइयाँ है।

निगम अपना कार्य १२·५ करोड रुपये की साधारण अंश पूँजी से प्रारम्भ करेगा। रिजर्व बैंक इनमें ५ करोड, स्टेट बैंक २·५ करोड, लाइफ कॉर्पोरेशन २ ५ करोड तथा अन्य बैंक २·५ करोड लगायेंगे। भारत सरकार इस २६ करोड रु० ३० वर्ष के लिये ब्याज पर देगी। निगम ३ से ७ वर्ष तक के लिये ऋण दिया करेगा। ये ऋण मध्यम पैमाने की औद्योगिक इकाइयों को दिये जायेंगे और किसी भी एक संस्था को ५० लाख रु० से अधिक ऋण नहीं मिलेगा। निगम के कुल ३८·५ करोड रु० के कोष में से प्रत्येक भाग लेने वाले बैंक को एक कोटा निश्चित कर दिया जायगा। इस कोटे की न्यूनतम एवं अधिकतम सीमायें क्रमशः एक करोड एवं ५ करोड रुपया होगी। यदि कॉर्पोरेशन ५% ब्याज लेता है तो बैंक औद्योगिक संस्थाओं को दिये ऋणों पर ६·५% ब्याज से अधिक नहीं ले सकेंगे। उधार लेने वाले बैंक निगम को डिसकाउन्ट करने के लिये प्रस्तुत किये गये ऋणों पर पूर्ण जोखिम उठायेंगे।

निगम के मार्ग में निम्न कठिनाइयाँ आने की संभावना है :—

(१) यदि बैंक अपने मुवक्किलों को मध्यकालीन ऋण दिलाते हैं तो उनका सारा जोखिम अपने ऊपर लेना होगा। वास्तव में मध्यकालीन ऋण का क्षेत्र उनके लिये नवीन है और उनका अनुभव इस बारे में बहुत सीमित है, अतः स्वाभाविक है कि वे कुछ हिचकिचायें। हमारी सम्मति में सरकार को चाहिये कि इस जोखिम का कुछ अंश अपने ऊपर ले।

(२) बैंकों का १·५% का मार्जिन जो ब्याज के रूप में छोड़ा गया है, वह *जोखिम को देखते हुए कम है।*

(३) बैंकों के पास अभी इस क्षेत्र में सफल प्रयोग के हेतु कोई सन्तोषजनक आधार नहीं है। आवश्यक तो यह था कि पहले जनता से दीर्घकालीन निक्षेपों का विकास किया जाय। यदि भारतीय बैंक ३ से ६ वर्ष तक परिपक्वता वाले बॉन्ड सफलतापूर्वक निर्गमित कर सकें तो उद्योगों को मध्यकालीन साख देने का आधार स्थापित हो जायगा।

(४) मध्यकालीन ऋण देने की किसी भी योजना की सफलता सरकार की *प्रशुल्क एवं आर्थिक नीतियों पर निर्भर है, जो इस प्रकार की होनी चाहिए कि औद्यो*गिक संस्थाओं को विस्तार के लिये उधार लेने की प्रेरणा मिले तथा शीघ्र चुकाने में सुविधा हो।

(६) मध्यम वित्त निगम की स्थापना

जून सन् १९५८ में मध्यम वित्त निगम की स्थापना हो गई है। प्रधान

कार्यालय बम्बई है। यह निगम पच वर्षीय योजना में सम्मिलित निजी क्षेत्र के मध्यम कारखानो को आर्थिक सहायता देगा।

निगम की पूजी ३१ करोड रुपया होगी जिसमे से ४ करोड रुपया पद्रह बको से प्राप्त होगा। इन बको के प्रतिनिधि निगम के सचालक मण्डल म होगे।

बको के नाम ये है स्टट बक सैंटल बक पजाब नशनल बक इलाहाबाद बक बक आफ इण्डिया हैदराबाद बक बक आफ बडौदा नशनल बक आफ इण्डिया यूनाइटड कार्मशियल बक चारटड बक यूनाइटड बक आफ इण्डिया तथा देना बक।

इन बको के प्रतिनिधि विशेष प्रशिक्षण के लिए अमरीका भज जायगे।

शेष २६ करोड रुपया भारत सरकार से निगम को ऋण के रूप म मिलगा। निगम को यह ऋण अमरीका स भारत को प्राप्त होन वाले १४० करोड रुपये म से दिया जायगा जिसके बारे म आजकल अमरीकी अधिकारियो के साथ बातचीत चल रही है।

शेष ११४ करोड रुपया विभिन्न योजनाओ पर खच किया जायगा।

आशा है कि भारतीय रिजव बक के एक वरिष्ठ अधिकारी श्री ई० रामसुब्रह्मण्यम मध्यम वित्त निगम के अध्यक्ष बनाये जायगे।

बड उद्योगों को औद्योगिक निगम से सहायता मिलती है।

STANDARD QUESTIONS

1 Describe the functions of (a) National Industrial Develop ment Corporation and (b) National Small Industries Corporation

2 Attempt a lucid note on the International Finance Corpo ration

3 What do you know about Refinance Corporation ?

4 What is Industrial Credit and Investment Corporation of India ? What part is it expected to play in the provision of Industrial Finance in India ?

5 Describe briefly the principal factors which inhabit private investment in industries at the present time in India

6 What do you mean by Investment Trusts ? Describe its classifications

अध्याय १८

भारत में जन-संख्या के वितरण की समस्या

(Problem of Distribution of Population in India)

'जन-सख्या के घनत्व' से आशय—

'जनसख्या के घनत्व' मे हमारा आशय यह है कि किसी दश अथवा किसी देश के राज्य म एक वर्ग मील म कितने व्यक्ति रहते हे। यदि हमको किसी देश की जन सख्या का घनत्व मालूम करना हो तो यह पता लगाना चाहिये कि उसका क्षेत्रफल कितना है और वहाँ की जन सख्या कितनी है। फिर जन सख्या को क्षेत्रफल से भाग *देना चाहिए और जो भजनफल निकले वही उस जन सख्या का घनत्व होगा।*

भारत मे जन सख्या का घनत्व—

हमारे देश मे जन सख्या का घनत्व प्रति वर्ग मील ३१२ है। यह समस्त देश का औसत घनत्व है; किन्तु देश के विभिन्न भागो की झाँकी करने से पता लगता है कि भारत के विभिन्न राज्यो मे जन सख्या का घनत्व अलग अलग है—दिल्ली में ३,०१७, केरल में १,०१५, बङ्गाल में ८४१, बिहार मे ५७२, उत्तर प्रदेश में ५६२, पजाब मे ३३८, राजस्थान में ११६, अडमान व निकोबार द्वीपो में ११० इत्यादि। जन सख्या के घनत्व की इस प्रादेशिक विभिन्नता के प्रमुख कारण निम्नलिखित हे :—

भारत मे जन-सख्या के घनत्व मे प्रादेशिक विभिन्नता के कारण—

(१) प्राकृतिक रचना—*जन सख्या का घनत्व किसी देश की प्राकृतिक* रचना पर निर्भर करता है। जो स्थान पहाड़ी अथवा पठारी हैं अथवा जहाँ की मिट्टी उपजाऊ नही है वहा घनत्व कम होता है और उपजाऊ मैदानी क्षेत्रों में प्रायः जन-सख्या का घनत्व अधिक होता है। पजाब, उत्तरप्रदेश एव बङ्गाल राज्यो मे भूमि की उर्वरता के कारण ही जन सख्या का घनत्व अधिक है एव राजस्थान के मरुस्थल और दक्षिण के पठारी प्रदेशो में घनत्व कम है।

(२) जलवायु—भूमि की रचना के साथ साथ सुन्दर जलवायु का होना भी आवश्यक है। जलवायु पर लोगों का स्वास्थ्य ही नहीं वरन् फसलो का उत्पादन भी निर्भर करता है। यही कारण है कि जहाँ वर्षा अधिक होती है वहाँ उत्पादन अधिक

हो सकता है यदि भूमि भी उपजाऊ हो। ऐसे प्रदेश अधिक व्यक्तियों के लिए जीवन निर्वाह का साधन प्रस्तुत कर सकते हैं। यही कारण है कि भारत के दक्षिणी-पूर्वी भागों में अपेक्षाकृत जन संख्या अधिक है।

(३) चावल की उपज के क्षेत्र—बङ्गाल तथा बिहार में भी जन संख्या का घनत्व अधिक है क्योंकि —

(अ) अन्य अनाजों की अपेक्षा चावल की उतनी मात्रा में अधिक आदमियों की उदरपूर्ति हो जाती है।

(आ) चावल में भोजन के अधिक पौष्टिक तत्त्व होते हैं।

(इ) चावल का प्रति एकड़ पैदावार भी अधिक होती है।

(ई) चावल की फसल तयार भी बहुत शीघ्र हो जाती है।

(४) सिंचाई—जन संख्या का घनत्व सिंचाई के साधनों पर निर्भर करता है। जिन स्थानों में मनुष्य ने कठिन परिश्रम करके सिंचाई के लिए नहरें बना ली हैं वहां भी घनत्व अधिक है जैसे—पंजाब तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश में।

(५) औद्योगिक उन्नति—ऐसे प्रदेश जहाँ उद्योग धन्धों की प्रगति के लिए समस्त नैसर्गिक साधन उपलब्ध हों तथा आर्थिक दृष्टिकोण से भी जो भाग समृद्धिशाली है वहाँ भी जन संख्या का घनत्व अधिक देखा जाता है जैसे—बिहार, उड़ीसा इत्यादि।

(६) सुरक्षा—जिन प्रदेशों में मनुष्य को अपने जान व माल का भय नहीं होता वहाँ भी घनत्व अधिक होता है जैसे—मध्य प्रदेश। इसके विपरीत पर्वतीय तथा सीमावर्ती क्षेत्रों में जान व माल का भय होने के कारण जन संख्या का बहुत कम घनत्व है।

(७) विभाजन के परिणामस्वरूप आवास—भारत के बटवारे के बाद हमारे देश में अनेक व्यक्ति पाकिस्तान से आये और वे ऐसे प्रदेश में बस गये जहाँ कि जलवायु उनके अनुकूल थी अतः उन प्रदेशों में जन संख्या का घनत्व बढ़ गया जैसे—दिल्ली राज्य में।

(८) प्रवासी प्रवृत्ति का अभाव—भारतवर्ष में प्रवासी प्रवृत्ति का अभाव भी अधिक घनत्व के लिए उत्तरदायी है। अन्य क्षेत्रों में प्रवास करने की अपेक्षा लोग अपने ही क्षेत्र में रहना अधिक पसन्द करते हैं। फलतः उन्हें निम्न जीवन स्तर अपनाना पड़ता है। भाषा, धर्म एवं संस्कृति की विषमता भी प्रवासी प्रवृत्ति में बाधक है।

(९) सिंचाई के साधन का अभाव—जिन प्रदेशों में वर्षा का अभाव है ... के साधन उपलब्ध हैं वहां भी प्रायः जन संख्या का घनत्व देखा जाता

है। उदाहरणार्थ उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भाग राजस्थान के उत्तरी और पश्चिमी भाग और दक्षिणी पंजाब में यद्यपि अपेक्षाकृत कम वर्षा होती है परन्तु सिंचाई की उपलब्ध सुविधाओं के अनुसार इन भागों में अच्छी जन संख्या है।

(१०) नदियों के डेल्टे—नदियों के डेल्टा में भी अनेक सुविधायें होने के कारण जन संख्या के घनत्व में वृद्धि हो जाती है जैसे—महानदी कृष्णा गोदावरी तथा कावेरी नदियों के डेल्टों में अच्छी आबादी है।

(११) विशेष वस्तुओं के उत्पादन केन्द्र—कुछ प्रदेशों में किंचित महत्व पूर्ण व्यापारिक वस्तुओं का उत्पादन होता है जिससे आकर्षित होकर लोग वहां बस जाते हैं। जैसे आसाम में चाय के हरे भरे बगीचों ने अनेक व्यक्तियों को आकर्षित कर लिया है। इसी प्रकार बंगाल में जूट के उत्पादन और काली मिट्टी के क्षेत्र में रुई के उत्पादन के कारण उन क्षेत्रों में जन संख्या का अधिक घनत्व है।

(१२) खनिज पदार्थों के क्षेत्र—जिन भागों में खनिज पदार्थ पाये जाते हैं वहां अन्य कठिनाइयों के होते हुए भी लोग जाकर बस गये हैं। उदाहरणार्थ छोटा नागपुर का पठार खनिज सम्पदा की दृष्टि से अत्यन्त धनी है अतः वहां अनेक लोग आकर बस गये हैं। इसी प्रकार राजस्थान में जैसलमेर के निकटवर्ती क्षेत्र में पेट्रोलियम की खोज हो रही है। यदि वहां पट्रोल मिल जायगा तो जन संख्या के घनत्व में अवश्य वृद्धि हो जायगी।

(१३) यातायात के साधनों की सुविधा—*जिन भागों में यातायात के साधनों का जाल बिछा हुआ है वहां भी प्रायः जन संख्या का केन्द्रीयकरण देखा जाता है। जैसे गंगा एवं सतलज के मैदान में तटीय मैदान एवं डेल्टा क्षेत्रों में थल एवं* जल की सुविधा होने के कारण वहाँ घनी आबादी पाई जाती है। इसके विपरीत पर्वतीय एवं पठारी क्षेत्रों में मरुस्थली भागों एवं घने वनों में यातायात के साधनों की अपर्याप्तता अथवा अभाव के कारण जन संख्या की मात्रा बहुत ही कम है।

(१४) अनुकूल स्थिति—जिन नगरों अथवा क्षेत्रों की भौगोलिक स्थिति अनुकूल होती है वहां भी जन संख्या का आधिक्य हो जाता है। उदाहरणार्थ दिल्ली कानपुर आगरा इलाहाबाद आदि नगरों की अनुकूल स्थिति होने के कारण ही वहां जन संख्या का अधिक घनत्व है।

(१५) अन्य कारण—प्रायः ऐसा भी देखा जाता है कि जो स्थान सुरक्षा की दृष्टि से अधिक श्रेष्ठ होते हैं वहां भी जन संख्या का केन्द्रीयकरण हो जाता है। भारत और पाकिस्तान की सीमा काश्मीर व आजाद काश्मीर की सीमा तथा गोआ में सुरक्षा की मात्रा कम होने से आबादी भी कम है। इसी प्रकार घने जंगलों में जंगली पशुओं के भय से वहाँ मनुष्य नहीं रहते। चम्बल के खण्डहरों में चोर व डाकुओं के भय के कारण लोग रहना पसन्द नहीं करते।

जन सख्या का घनत्व और आर्थिक समृद्धि —

जन सख्या का घनत्व और आर्थिक समृद्धि आवश्यक रूप से सम्बन्धित बात हो ऐसी बात नही है। उदाहरण के लिए भारत और सयुक्त अरबगण राज्य (मिस्र) अपनी जन सख्या के घनत्वो में बहुत अन्तर होते हुए भी दोनो ही आर्थिक रूप से पिछड़े हुए है। मिस्र में जन सख्या का घनत्व केवल ३५ है, जबकि भारत मे ३१२ है। इसी प्रकार ग्रेट ब्रिटेन और अमरिका की जन सख्या के घनत्व में भी भारी अन्तर है (क्रमश ७१० एव ४२)। इतना अन्तर होते हुए भी दोनो देशो मे लोगो का जीवन स्तर लगभग समान है। यह उल्लेखनीय है कि ये दोनो ही देश भारत की तुलना मे (जिसको जन सख्या का घनत्व ३१२ है) अधिक समृद्धिशाली है। अत हम यह निष्कर्ष निकाल सकते है कि किसी देश की जन सख्या और उसकी आर्थिक समृद्धि मे कोई सम्बन्ध स्थापित नही किया जा सकता। वास्तव मे दो देशो की आर्थिक समृद्धि के विषय मे किसी निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए हम वहा के लोगो के भौतिक प्रसाधनो और कार्य कुशलता पर भी ध्यान देना होगा।

भारत मे जन सख्या के वितरण की विशेषतायें—

(१) प्रादेशिक विभिन्नता—यद्यपि हमारे देश मे जन सख्या का घनत्व प्रति वर्ग मील ३१२ है किन्तु देश के विभिन्न राज्यो मे जन सख्या का घनत्व अलग अलग है जैसे—दिल्ली मे ३०१७ केरल में १०१५, बगाल में ८४१, बिहार में ४७२ उत्तर प्रदेश में ४६२, पजाब में ३३८, राजस्थान मे ११६, अडमान निकोबार द्वीपो में ११०, इत्यादि। देश के विभिन्न भागो में विभिन्न भौगोलिक एव आर्थिक सुविधाओ के कारण ही यह प्रादेशिक विभिन्नता पाई जाती है।

(२) निरन्तर वृद्धिशील—जन सख्या के अनुसार विश्व मे चीन के बाद भारत का दूसरा नम्बर है। निम्न तालिका मे भारत की जन सख्या की वृद्धि की गति का अनुमान लगाया जा सकता है —

वर्ष	जन सख्या (दस लाख मे)	दशाब्दी का वृद्धि (दस लाख में)	वृद्धि का प्रतिशत
१८८१	२३५ ५	—	—
१६०१	२३५ ६	० ४	+ ०·२
१६११	२४६ ०	१३ ५	+ ५ ६
१६२१	२४८ १	० ६	— ० ६
१६३१	२७५ ५	२७ ४	+१० ४
१६४१	३१२ ८	३७ ३	+१२ ७
१६५१	३५६ ८	४४ २	+१३ २

उपरोक्त तालिका से यह विदित होता है कि सन् १६०१ से १६२१ तक भारतीय जन सख्या में मद गति से वृद्धि हुई, किन्तु उसके बाद वृद्धि की गति तेज रही है। सन् १६५१ की जन गणना के अनुसार देश की कुल जन-सख्या (पाकिस्तान को छोड कर) ३५·६६ करोड थी। सन् १६५८ के मध्य में भारत की जन-सख्या अनुमानत ३६·७५ करोड थी और सन् १६६१ में यह बढ कर लगभग ४१ करोड हो जायगी। योजना आयोग ने प्रथम दो पच वर्षीय योजनाओ की अवधि और बाद की अवधियो के लिये जन सख्या में वृद्धि की निम्न दरा का अनुमान किया है —

सन् १६५०-६० के लिये वृद्धि की गति १२·५% प्रति दशाब्दी।
सन् १६६१-७० के लिय वृद्धि की गति १३ ३% प्रति दशाब्दी।
सन् १६७१-८० के लिये वृद्धि की गति १४ ०% प्रति दशाब्दी।

जन गणना कमिश्नर न यह भय प्रगट किया है कि उक्त तथ्यों को ध्यान म रखते हुए हमारी जन सख्या सन् १६५१ म ३६ करोड से बढ कर सन् १६६१ में ४१ करोड, सन् १६७१ में ४७ करोड और सन् १६८१ में ५२ करोड हो जायगी।

(३) *जन-सख्या का ग्रामीण एव नगरीय आधार पर विभाजन*—देश की ३५ ६६ करोड की कुल जन सख्या म से ६ १६ करोड अथवा १७·३% व्यक्ति नगरो और कस्बो में रहते है, जबकि शेष २६ ५० करोड अथवा ८२·७% व्यक्ति गाँवो म निवास करते हैं। सन् १६४१-१६५१ के दशक में शहरी जन सख्या म ३ ४% की वृद्धि हुई तथा ग्रामीण जन सख्या म ३ ४% की कमी हुई है। नगरीय जन सख्या की वृद्धि के प्रमुख कारण निम्नलिखित हे —

(अ) गाव मे व्यक्ति अधिक हे तथा भूमि कम है। इसके अतिरिक्त सहायक उद्योग धन्धो की भी कमी है, अत. पेट की खातिर गावो स नगरो की ओर प्रवास बढ रहा है।

(आ) आर्थिक नियोजन के परिणामस्वरूप भी नगरो मे औद्योगीकरण का अधिक विकास हुआ है, जिससे नगरो की ओर लोगो का आकर्षण बढ गया है।

(इ) ग्रामीण जीवन की अपेक्षा अनेक सुख सुविधाओ की दृष्टि से भी नागरिक जीवन सुविधाजनक होता है, अत. प्राय सभी लोगो में नागरिक जीवन के प्रति रुचि होती है।

(ई) जमींदारी उन्मूलन के पश्चात् जमींदार कुटुम्बो का गाव से नगरो की ओर प्रवास बढ रहा है।

(उ) देश के बँटवारे के बाद व्यवस्थापितो ने अधिकतर नगरों में ही रहना पसन्द किया है, क्योकि वहाँ उनको जीवनोपार्जन की अधिक सुविधायें थी।

(४) स्त्री-पुरुष का अनुपात—सन् १९५१ में १००० पुरुषों के पीछे ९४७ स्त्रियां थी। प्रति हजार पुरुषों के पीछे स्त्रियों का अनुपात सबसे कम उत्तर पश्चिम भारत में (८८३) और सबसे अधिक दक्षिण भारत में (९९६) था। भारत के १० बड़े नगरों में प्रति हजार पुरुषों के पीछे सन् १९५१ में स्त्रियों की संख्या इस प्रकार था— वृहत्तर कलकत्ता ६०२ वृहत्तर बम्बई ५९६ मद्रास ९२१ दिल्ली ७५० हैदराबाद ९८८ अहमदाबाद ७६४ बंगलौर ८८३ कानपुर ६९९ पूना ८३३ और लखनऊ ७८३। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की कम संख्या होने के अनेक कारण हैं। भारतवर्ष में जन्म से ही लड़कों की अपेक्षा लड़कियों के प्रति उदासीनता का व्यवहार किया जाता है। बाल विवाह एवं पर्दा प्रथा के कारण भी उन्हें अनेक आपत्तियों का सामना करना पड़ता है। प्रसव के पूर्व एवं बाद की उपेक्षा अथवा दैनिक जीवन में अपर्याप्त या अनुचित आहार भारतीय स्त्रियों के निम्न स्वास्थ्य स्तर के लिए उत्तरदायी है। सौभाग्य का विषय है कि गत कुछ समय से शिक्षा प्रसार के साथ साथ स्त्रियों के प्रति उपेक्षापूर्ण व्यवहार कम होता जा रहा है। बाल विवाह एवं पर्दा प्रथा का भी धीरे धीरे लोप हो रहा है और महिला डाक्टरों एवं प्रसूति गृहों की भी संख्या बढ़ रही है।

(५) आयु के आधार पर जन संख्या—यदि आयु के आधार पर भारतीय जन संख्या का अध्ययन करें तो हमें निम्न आंकड़े उपलब्ध होते हैं —

शिशु व बच्चे	३८ ३%
युवा स्त्री पुरुष	३३ ०%
प्रौढ़ स्त्री पुरुष	२० ४%
वृद्ध स्त्री पुरुष	८ ३%

इन आंकड़ों के विश्लेषण से हम निम्न निष्कर्ष निकाल सकते हैं —

(अ) भारत में शिशुओं तथा बच्चों की जन संख्या अधिक है यद्यपि यह अभी सक्रिय नहीं है किन्तु वास्तव में देश की प्रगति का भावी भार इन्हीं के कंधों पर आना है।

(आ) भारत में वृद्ध स्त्री पुरुषों की संख्या बहुत थोड़ी है अर्थात् वृद्ध होने से पहले ही प्रायः लोग मर जाते हैं। इससे देश की बड़ी हानि होती है, क्योंकि एक तो अनुभवी वृद्ध व्यक्तियों के उचित पथ प्रदर्शन का लाभ नहीं मिल पाता। दूसरे उनके अभाव में उत्पादनशीलता भी घटती है।

(इ) हमारी औसत आयु भी अन्य देशों की अपेक्षा बहुत कम है।

(ई) देश में युवा एवं प्रौढ़ों की जन संख्या (३३ ० + २० ४) = ५३ ४% है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि देश के ३६ ३७ करोड़ व्यक्तियों में से

केवल १८ करोड व्यक्ति ही काम करने वाले हैं, अतः जितने व्यक्ति उत्पादन में सलग्न हैं उनके अतिरिक्त लगभग उतने ही व्यक्तियो का पोषण भी उन्ही को करना पडता है।

(ऊ) भारत में बचो का अनुपात ३८% और वृद्धों का केवल ८% यह सकेत करता है कि देश में जन्म एव मृत्यु दर दोनो ही अधिक है।

(६) भाषाओ के आधार पर विभाजन—सन् १९५१ की जन गणना के अनुसार देश में कुल ८४५ भाषायें अथवा बोलियाँ बोली जाती हैं, जिनमे ७२० भारतीय भाषायें या बोलियाँ (इनमें से प्रत्येक के भाषियो की सख्या १ लाख से कम है) तथा ६३ गैर भारतीय भाषायें हैं। ९१ प्रतिशत जनता सविधान में उल्लिखित १४ भाषाओं में से किसी न किसी एक भाषा को बोलती हैं। दिल्ली, पजाब तथा हिमाचल प्रदेश को छोडकर शेष भारत में हिन्दी बोलने वालो की सख्या १० ८८ करोड थी। हिन्दी, उर्दू, हिन्दुस्तानी तथा पजाबी बोलने वालो की सख्या १४ ९९ करोड थी।

(७) व्यावसायिक आधार पर विभाजन—सन् १९५०-५१ में ३५·९३ करोड जन सख्या में से देश में १४·३२ करोड व्यक्तिया के रोजगार में सलग्न होने का अनुमान लगाया गया है—१०·३६ करोड व्यक्ति कृषि सम्बन्धी कार्यों में, १·५३ करोड व्यक्ति खनिज तथा हस्तशिल्प उद्योगो में, १·११ करोड व्यक्ति वाणिज्य, बीमा, बैंकिंग, यातायात तथा परिवहन उद्योगो मे, ६४ लाख व्यक्ति विभिन्न व्यवसायो में, ३९ लाख व्यक्ति सरकारी नौकरियो में तथा २९ लाख व्यक्ति घरेलू नौकरियो में। अतः स्पष्ट है कि भारत एक कृषि प्रधान देश है, जिसकी लगभग ७०% जन-सख्या कृषि पर अवलम्बित है अथा शेष व्यवसायो मे लगी हुई है।

भारतीय जन-सख्या का व्यावसायिक वितरण—

व्यावसायिक आधार पर जन सख्या के वितरण मे इस देश के आर्थिक विकास का अनुमान लगाया जा सकता है। सन् १९५१ की जन-गणना के अनुसार भारत की ३५·९३ करोड की जन-सख्या में से देश में १४·३२ करोड व्यक्तियो के रोजगार में सलग्न होने का अनुमान लगाया है—१०·३६ करोड व्यक्ति कृषि सम्बन्धी कार्यों में, १·३३ करोड व्यक्ति खनिज तथा हस्तशिल्प उद्योगो में, १·११ करोड व्यक्ति वाणिज्य, बीमा तथा बैंकिंग और यातायात तथा सचार साधनो में, ६४ लाख व्यक्ति विभिन्न व्यवसायो में, ३९ लाख व्यक्ति सरकारी नौकरियो में तथा २९ लाख व्यक्ति घरेलू सेवाओ में लगे हैं।

प्रत्येक १०० भारतीयों (आश्रित व्यक्ति सहित) में से ४७ भूमिधर किसान, ९ काश्तकार, १३ भूमिहीन मजदूर तथा १ जमीदार था, जबकि उद्योगो या अन्य कृषि

जय व्यवसायो वाणिज्य परिवहन और विविध व्यवसायो म क्रमश १० ६ २ और १२ यक्ति लगे हुये थ।

व्यावसायिक वितरण का आर्थिक महत्व—

सन् १६५१ की जन गणना सम्बन्धी आँकडो स यह स्पष्ट है कि हमारा देश मुख्यत कृषि प्रधान देश है जिसकी लगभग ७०% जन संख्या कृषि पर अवलम्बित है तथा उद्योग धधा म लगे हुए यक्ति १०% से भी कम ह। आर्थिक विकास की दृष्टि स एसी यवस्था श्रेष्ठ नही कही जा सकती क्योकि यदि दुर्भाग्य से किसी वष कृषि की फसल खराब हो जाव तो समस्त देश का आर्थिक जीवन अस्त व्यस्त हो जाता है। कृषि म सलग्न व्यक्तियो का दशा भी सन्तोषजनक नही कही जा सकती। उनम प्रति १००० कृषको के पाछे ४०२ एस किसान है जिनके पास अपनी भूमि नही है। इहे जमादारा से भूमि लनी पडती है। जमीदारी उन्मूलन के पहल जमीदारो द्वारा इनका अत्यधिक शोषण किया जाता था। बिना खती के श्रमिक जिनकी सख्या लगभग ४१ करोड है इसम दयनीय दशा म हैं। एस श्रमिको की सख्या उत्तर की अपेक्षा दक्षिणी भारत म अधिक है। इन श्रमिको की वार्षिक आय का औसत २०४) है। इतनी कम आय होन के कारण इन्ह अनक प्रकार की कठिनाइयो का सामना करना पडता है। सक्षेप म हम यह कह सकते है कि कृषि म सलग्न लगभग २५ करोड लोगो म स अधिकाश यक्तियो की आर्थिक दशा खराब है। कृषि पर जन सख्या का अत्यधिक भार होन क कारण देश की कुल राष्ट्रीय आय का लगभग ४६% कृषि स ही प्राप्त होता है। भारतवष की अपेक्षा इङ्गलड एव सयुक्त राष्ट्र अमेरिका म कही कम लोग कृषि का काय करत ह। जबकि भारत के १००० व्यक्तियो म से ७०६ कृषि पशु वन तथा मछली व्यवसाय म लगे हुये है तो सयुक्त राष्ट्र अमेरिका म केवल १२८ तथा ग्रट ब्रिटन म कवल ५६ लोग इस काय में लगे ह। इङ्गलड अथवा अमेरिका की अपेक्षा भारत म बहुत कम लोग उद्योग तथा अन्य सेवाओं म लगे हुए ह। जबकि १००० व्यक्तियो म से भारत के केवल १५३ व्यक्ति ही खानो उद्योगो तथा वाणिज्य म लगे हुए है तो सयुक्त राष्ट्र अमरिका म ४५६ तथा ग्रट ब्रिटन म ५५५ व्यक्ति लगे हुए ह। अन्य उद्योगो तथा सवाओ म सलग्न लोगो का अनुमान हमारे देश म प्रत्येक १००० म से कवल १४१ है जबकि सयुक्त राष्ट्र अमरिका तथा ग्रट ब्रिटन म यह आकडा ४१६ तथा ३६५ है। यही कारण है कि सयुक्त राष्ट्र अमेरिका अथवा इङ्गलड का अपेक्षा भारतवष का अथ व्यवस्था असन्तुलित कही जाती ह। इङ्गलड तथा अमेरिका म लगभग आधे लोग कृषि पर और शेष उद्योगो म तथा अन्य कार्यों म लगे है अत यदि इन देशा म कभी कृषि की दशा बिगडती है तो कोई विशेष चिन्ता नही करनी पडती परन्तु हमारे देश म एसा परिस्थिति होन पर आर्थिक सन्तुलन ही बिगड जाता

है। यही कारण है कि द्वितीय पंच वर्षीय योजना के द्वारा कृषि पर जनता के भार को कम करने का प्रयत्न किया जा रहा है।

इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि कृषि पर अधिक निर्भरता के कारण हमारे देश के खेत बहुत छोटे हैं एवं प्रति एकड़ उत्पादन भी अन्य देशों की अपेक्षा बहुत कम है, इसी कारण दरिद्रता एवं बेकारी बढ़ रही है तथा लोगों का जीवन स्तर बहुत नीचा है। आशा है कि आर्थिक नियोजन के द्वारा यह समस्या भविष्य में हल नहीं हो सकेगी।

ग्रामीण अर्द्ध रोजगारी को दूर करने के उपाय—

हमारे देश में जहाँ एक ओर पूर्णत: बेरोजगार लोगों की भारी संख्या है, वहाँ ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाले अधिकांश कृषक ऐसे हैं, जिन्हें वर्ष में ३-४ महीने खाली रहना पड़ता है, क्योंकि उस काल में कोई फसल नहीं होती। इस अर्द्ध-रोजगार का प्रमुख कारण खेती करने का पुरातन ढङ्ग तथा कृषि का वर्षा पर निर्भर होना है। कृष्णमाचारी जाँच समिति के अनुसार लगभग ८०% कृषक वर्ष के लगभग ८ महीनों में बेकार रहते हैं। ग्रामीण क्षेत्र में उद्योग धन्धों की कमी तथा जन संख्या की अधिकता इसका मूल कारण है। ग्रामीण अर्द्ध रोजगारी की समस्या को हल करने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिये जा सकते हैं :—

(१) कृषि को जीवन निर्वाह का साधन न मान कर एक व्यापारिक व्यवसाय समझा जाय। चकबन्दी के द्वारा बड़े आकार के खेतों में आधुनिक ढङ्गों से उन्नत बीज, उन्नत खाद एवं नवीनतम् सिंचाई की सुविधाओं के द्वारा कृषि उत्पादन किया जाय।

(२) कृषि का वैज्ञानिकन होना चाहिए। 'वैज्ञानिकन' से हमारा तात्पर्य यह है कि खेती करने में विज्ञान के नये-नये तरीकों का उपयोग किया जाय, फसलों का हेरफेर हो, जापानी ढङ्ग से चावल उत्पन्न किया जाय, उपयुक्त क्षेत्रों में ट्रैक्टरों का प्रयोग किया जाय, इत्यादि।

(३) कृषि के सहायक उद्योगों को बढ़ावा दिया जाय। यदि हमारे देश में कृषि के साथ साथ डेरी फार्म, मुर्गी पालन, रेशम के कीड़े पालना, मधुमक्खी पालन आदि सहायक धन्धे अपनाये जायें, तो किसान वर्ष पर्यन्त काम में लगा रह सकता है।

(४) कृषि से जन संख्या का भार कम करने के लिए कुटीर उद्योगों को विकसित किया जाय। इससे उनके खाली समय का सदुपयोग होगा तथा अतिरिक्त आय होगी।

(५) *कुटीर उद्योगों के अलावा लघु उद्योगों की स्थापना को भी प्रोत्साहन*

मिलना चाहिए। ग्रामीण क्षेत्रों में विद्युतीकरण की योजनाओं से छोटे मोटे उद्योग-धंधों की स्थापना को प्रेरणा मिलेगी।

(६) व्यक्तिगत कृषि के स्थान पर सहकारी कृषि को प्रोत्साहन देना चाहिए।

STANDARD QUESTIONS

1. What is 'Density of Population'? What are the factors that determine the density of population in India? Does a high density of population in a country indicate prosperity?
2. Briefly summarise some of the principal peculiarities *regarding the distribution of population in India*
3. Discuss the economic Significance of the occupational distribution of population in India Suggest measures to remove rural under employment in India

अध्याय १६

क्या भारत में जन-संख्या का आधिक्य है ?

(Is India Over Populated ?)

प्रारम्भिक—

कुछ लोगो के* मतानुसार भारत में जन सख्या का आधिक्य नही है, क्योंकि यहाँ जन सख्या का घनत्व केवल ३१२ व्यक्ति प्रति वर्ग मील है, जबकि हालैण्ड का ८२५·३, बेल्जियम का ७३४·४, जापान का ५७५·४ और इङ्गलैण्ड का ५३७·८ है। इस विचारधारा के समर्थक यह दलील देते हैं कि भारत के प्राकृतिक प्रसाधनो का अभी पूर्णरूपेण उपयोग नही हुआ है, अतः जन सख्या अधिक प्रतीत होती है। यदि हम अपने नैसर्गिक साधनो का पूर्ण उपयोग करके उत्पादन में वृद्धि करें, तो कही अधिक जन सख्या का पालन कर सकते है। इसके विपरीत, दूसरी विचारधारा के समर्थक यह कहते है कि जन सख्या के आधिक्य की कोई समस्या न समझना, वास्तव में सत्यता का गला घाटना है। जहाँ तक पहली दलील का सम्बन्ध है, उत्तरी पश्चिमी भारत व मध्यवर्ती भारत के राज्यो को छोडकर भारत के शेप राज्यो में जन सख्या का घनत्व योरोप के घन आबाद देशो की तुलना मे कम नही है, जसे—दिल्ली में ३,०१७ व्यक्ति प्रति वर्ग मील, केरल में १,०१५, बगाल मे ८४१, बिहार में ५७२, उत्तर प्रदेश म ५६२ और पजाब म ३३८ है। इस द्वितीय विचारधारा के समर्थक निम्न दलीलो के आधार पर ऐसा कहते है कि भारत में जन सख्या का आधिक्य है।

भारत मे जन-सख्या का आधिक्य एव उसके कारण—

(१) **मालथस के सिद्धान्तानुसार**—मालथस के जन सख्या के सिद्धान्तानुसार यदि किसी देश में निवारक प्रतिबन्धो (जैसे ब्रह्मचर्य पालन, कम आयु में विवाह न करना, गर्भ निरोधक साधनो का प्रयोग, जीवन स्तर मे सुधार, आदि) का अभाव होता है और इनके स्थान पर प्राकृतिक प्रतिबन्ध (जैसे बीमारी, बेकारी, भूकम्प इत्यादि) क्रियाशील होते है, तो ऐसा समझा जाता है कि देश में जन-सख्या का आधिक्य है। भारत में निवारक प्रतिबन्धो का अभाव है। छोटी उम्र म विवाह होने

८

के कारण एवं दूषित सिनेमा वातावरण के कारण लोग ब्रह्मचर्य पालन में असमर्थ होते हैं। यहाँ विवाह एक धार्मिक कर्तव्य एवं सन्तानोत्पत्ति एक सामाजिक आवश्यकता समझी जाती है। आजकल देश में केवल बाल विवाह एवं बहु विवाह का ही प्रश्न नहीं है, वरन् वृद्ध विवाह का प्रचलन भी हमारे देश का बहुत बड़ा अभिशाप है। फलतः सिद्धान्तानुसार प्राकृतिक प्रतिबन्ध देश में अधिक क्रियाशील रहे हैं, जैसे—महामारियाँ, दुर्भिक्ष, बाढ़, भूकम्प, दंगे इत्यादि। यहाँ मलेरिया से प्रति वर्ष १५ लाख व्यक्ति मर जाते हैं। सन् १९४३ में बङ्गाल दुर्भिक्ष में ३५ लाख व्यक्तियों की बलि चढ़ी। सन् १९५७ के ग्रीष्म काल में फ्लू के दानव ने अनेक व्यक्तियों के प्राण लिए। सन् १९५८ में रेल दुर्घटनाओं एवं बाढ़ की आपत्तियों से भी सहस्रों व्यक्तियों की जानें चली गईं। अतः स्पष्ट है कि निवारक प्रतिबन्धों के अभाव में प्रकृति अपना कार्य तीव्रता से कर रही है। यह जन-संख्या के आधिक्य का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

(२) खाद्य समस्या के आधार पर—हमारे देश में जैन संख्या जिस गति से बढ़ी है, भोज्य सामग्री का उत्पादन उस अनुपात में नहीं बढ़ा है। सन् १९३८ में श्री बी० के० वत्तल ने अखिल भारतीय जन संख्या सम्मेलन के समक्ष अपने अध्यक्षीय भाषण में बताया था कि सन् १९१४ और सन् १९४० के बीच की अवधि में भारत में जन संख्या की वृद्धि १% हुई, परन्तु भोज्य सामग्री में वृद्धि केवल ०·६५% हुई। द्वितीय महायुद्ध के उपरान्त हमारी खाद्य समस्या ने एक उग्र रूप धारण कर लिया और देश के विभाजन ने कटे पर नमक छिड़कने का कार्य किया। बँटवारे के परिणाम-स्वरूप यद्यपि भारत को कुल क्षेत्रफल का ७७% भाग मिला, किन्तु जन संख्या ८१% मिली। भारत से पाकिस्तान में केवल ७५ लाख लोग गये, किन्तु वहाँ से हमारे देश में १ करोड़ से भी अधिक व्यक्ति आये। राष्ट्रीय योजना समिति सन् १९४७, पच-वर्षीय योजना आयोग सन् १९५३ एवं खाद्यान्न जाँच समिति सन् १९५७ की रिपोर्टों के अनुसार भी इसी मत की पुष्टि होती है कि जन संख्या की वृद्धि के अनुपात में खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि नहीं हो रही है।

(३) वृद्धि की अत्यधिक गति—निम्न आँकड़ों से स्पष्ट है कि देश में जन-संख्या बड़ी तेजी से बढ़ रही है :—सन् १९११—२५२·३ मिलियन, सन् १९३१—२७९·२ मि०, सन् १९५१—३६१·२ मि० तथा सन् १९५८ में ३९६·१ मि०। परन्तु जहाँ जन संख्या में वृद्धि हो रही है, वहाँ प्रति व्यक्ति बोई गई भूमि निरन्तर घटती जा रही है। यही नहीं, हमारे देश में गेहूँ और चावल उतनी तेजी से नहीं बढ़ रहा है, जितनी तेजी से अन्य मोटे अनाजों का उत्पादन। खाद्य सामग्री के अतिरिक्त हमारे देश में चीनी, सब्जी, दूध इत्यादि का उपभोग भी निरन्तर कम होता जा रहा है।

(४) बेकारी की समस्या—यदि जन संख्या अनुकूलतम बिन्दु से कम होगी,

तो बेकारी की समस्या इतनी भीषण न होती, जितनी कि आज है। योजना आयोग ने भी इस बात को स्वीकार किया है कि शिक्षित एव अशिक्षित दोनो ही वर्गों में बेकारी बढ रही है और समस्या इतनी विशाल है कि इसको थोडे समय मे हल नही किया जा सकता, क्योंकि इसका सम्बन्ध जन सख्या के आधिक्य से है।

(५) **प्रोफेसर कैनन का अनुकूलतम जन सख्या का सिद्धान्त**—यदि देश की जन सख्या अनुकूलतम जन सख्या से अधिक है, तो जन सख्या की अत्यधिक वृद्धि के साथ प्रति व्यक्ति आय में उसी अनुपात में वृद्धि न होगी, जैसा कि भारत में घटित हो रहा है, अत कैनन के सिद्धान्तानुसार भी हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि हमारे देश में अति जन सख्या की समस्या विद्यमान है।

जन-सख्या की वृद्धि को रोकने की आवश्यकता—

बढती हुई जन सख्या को रोकने की आवश्यकता इसलिये उत्पन्न होती है कि हमारा उपभोग स्तर बहुत नीचा है, जिसे ऊपर उठान की विशेष आवश्यकता है। जब तक हम इस अनावश्यक वृद्धि को न रोकेंगे, तब तक हमारी प्रति व्यक्ति आय नही बढ सकती।

जन-सख्या की वृद्धि को कैसे रोका जाय ?—

(१) **शिक्षा का प्रचार**—प्राफेसर महालानोबीस न अभी अपन अनुसन्धान में यह बताया है कि जिन परिवारो का प्रति व्यक्ति व्यय बढता है, उनमें कम बच्चे होते है। दूसरे शब्दो में, उच्च जीवन स्तर होने पर जन सख्या में कमी होन की सम्भावना है। शिक्षित लोग प्राय गृहस्थी का भार उस समय तक नही उठाना चाहते जब तक कि उनमें स्वय अपने पैरो पर खडे होने की सामर्थ्य न हो "मोटरकार अथवा बच्चे" में वे बहुधा प्रथम वस्तु को ही प्राथमिकता देते है।

(२) **आत्म-सयम**—स्टेट सेन्सस कमिश्नर ने यह सुझाव दिया है कि स्त्रियो का विवाह २० वर्ष से पहले नही होना चाहिए। जब तक कि किसी में अपन पैरो पर खड होने की सामर्थ्य न हो, तब तक उमको विवाह नही करना चाहिये और यदि विवाह करे भी तो आत्म-सयम द्वारा सन्तानोत्पत्ति स दूर रहना चाहिये।

(३) **स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं को सुल्भाना**—विभिन्न रोगो के निवारणार्थ यहाँ अस्पतालो एव प्रसूति गृहो की स्थापना होनी चाहिए। देश में सफाई का भी उत्तम प्रबन्ध होना चाहिए। यह भी आवश्यक है कि लोगो को अधिक मात्रा में सतुलित भोजन दिया जाय एव हमारे उपभोग के पदार्थ पौष्टिक हो।

(४) **औद्योगीकरण**—बडे पैमाने के उद्योग की प्रगति के साथ साथ लघु एव कुटीर उद्योगों की उन्नति करना नितान्त आवश्यक है, जिसस कि पूर्ण रोजगार सम्भव

हो सके। औद्योगीकरण से राष्ट्रीय आय में वृद्धि होगी, जीवन स्तर ऊँचा होगा एव प्रजनन की दर म भी ह्रास होगा। योजना आयोग का मत है कि जबसे द्वितीय पच-वर्षीय योजना, जिसका प्रमुख उद्देश्य शीघ्र औद्योगीकरण करना है, प्रारम्भ हुई है, तब से जन-संख्या का भार कुछ कम प्रतीत होता है।

(५) **कृषि मे सुधार**—हमारे देश के ६७% लोग कृषि पर निर्भर है, किन्तु भूमि की अनार्थिक इकाई और कृषि के अवैज्ञानिक तरीकों के कारण प्रति एकड़ उत्पादन बहुत कम है। कृषि योग्य क्षेत्र को बढ़ाकर एव कृषि कला में उन्नति द्वारा कृषि उपज को बढ़ाया जा सकता है।

(६) **अन्तर्राज्यीय प्रवास**—जन संख्या की समस्या को हल करने के लिए बङ्गाल, केरल, उ० प्र०, आदि अधिक घनत्व वाले राज्यों से राजस्थान, आसाम, उडीसा आदि कम घनत्व वाले राज्यो में लोगों के प्रवास का भी सुझाव दिया जा सकता है। कम घनत्व वाले क्षेत्रो में यदि हमारी सरकार रोजगार के विभिन्न साधन उत्पन्न कर दे, तो आर्थिक आकर्षण से वहाँ जन संख्या का प्रवास हो सकता है।

(७) **अन्तर्राष्ट्रीय प्रवास**—इसी प्रकार देश के बाहर विदेशो में भी जाकर हम जनाधिक्य की समस्या सुलझा सकते है, किन्तु इसके लिए यह आवश्यक है कि विदेशो म भारतियो के प्रवास पर जो कड़े प्रतिबन्ध लगे हुए है उनकी शिथिलता के लिए हमारी सरकार आवाज उठाए।

(८) **कृत्रिम साधनो का उपयोग**—पाश्चात्य देशो म इन साधनो के उपयोग का बडा बोलबाला है, किन्तु भारतवर्ष म लोगो की अशिक्षा, अज्ञानता एव रूढिवादिता इनकी लोक प्रियता म बाधक हो रही है। कुछ लोगो के विचारानुसार इनका उपयोग ही अनुचित है, क्योकि यदि इनके प्रयोग पर उचित नियंत्रण न रखा जाये, तो जनता म अनैतिकता फैलने का डर है। दूसरे, इनका प्रयोग अप्राकृतिक भी बताया जाता है। जहाँ तक प्रथम आरोप का सम्बन्ध है, इन साधनो के खुले प्रयोग की नीति तो देश के लिए अहितकर ही होगी, किन्तु राजकीय संस्थाओ के नियन्त्रण म केवल अधिकृत व्यक्तियो को इनके प्रयोग के सम्बन्ध म यदि उचित परामर्श देना आरम्भ कर दिया जाय, तो लाभ हो सकता है। दूसरा आरोप है कि इनका उपयोग अप्राकृतिक है, जो निराधार प्रतीत होता है। यदि हमको प्रकृति के अनुसार ही चलना है, तब तो गर्मियो म वस्त्र न पहन कर नग्न रहना चाहिए, इसी प्रकार दवाइयो का प्रयोग भी अप्राकृतिक है, परन्तु वर्तमान युग म हमारी सभ्यता प्रकृति से दूर होती जा रही है। जन संख्या की समस्या को हल करने के लिए कृत्रिम साधनो का

प्रयोग अनुचित नहीं कहा जा सकता। पंचवर्षीय योजना आयोग ने भी कृत्रिम साधनों के प्रयोग सम्बन्धी सूचना एवं प्रचार करने वाली अनेक संस्थाओं को सहायता देने का समर्थन किया है।

(६) पारिवारिक नियोजन—इसके लिए कृपया अगला अध्याय पढ़िये।

STANDARAD QUESTION

1. Is India overpopulated ? What measures do yo suggest to solve the problem ?

अध्याय २०

परिवार नियोजन

(Family Planning)

परिवार नियोजन—आज की आवश्यकता—

गान्धारी जब अपने सौ पुत्रों की मृत्यु पर विलाप करती है, तो उपहास के साथ भौमिक कहता है कि 'जो सन्तानें मक्खियों की तरह पैदा होगी वे मक्खियों की तरह ही नष्ट होंगी।' भारत में वर्तमान जन सख्या की समस्या को लेकर प्रसिद्ध अग्रेज वैज्ञानिक जूलिएन हक्सले का कहना है कि यदि भारत अपनी जन सख्या की समस्या को हल न कर सका, तो यह बहुत बडी राजनीति और सामाजिक दुर्घटना हो जायगी।

वर्तमान विज्ञान के युग मे हमारी जितनी समस्यायें है उतनी कभी भी न थी। मध्यम श्रेणी के लोगों मे शिक्षा की बात तो दूर रही, उन्हे भोजन, वस्त्र, मकान, आदि की कमी बुरी तरह सता रही है। यद्यपि आर्थिक समृद्धि के हेतु पच वर्षीय योजनाओं का निर्माण किया गया है, परन्तु जैसा कि प्रधान मन्त्री नेहरू ने 'नियोजित पितृत्व के छठे अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन' (सन् १६५६) का उद्घाटन करते हुए कहा था, यदि जन सख्या बढती रही तो पच वर्षीय योजनाओं का कोई अर्थ नही। यदि हमें वास्तविक भौतिक उन्नति करनी है, तो अनिवार्यत परिवार नियोजन पर विचार करना पडेगा।

सर्व प्रथम हम अपनी गिनतियाँ अपने सम्मुख रखें। बगाल में प्रत्येक ४० सैकिण्ड मे एक बालक जन्म लेता है और हर एक मिनट में एक मरता है। २०,००० बालक भारत में प्रति दिन जन्मते है और प्राय १२,००० व्यक्ति प्रति दिन खाने के लिए देश में अधिक हो जाते है। इस प्रकार हमारी बढोतरी ५० लाख प्रति वर्ष है। अनुमान है कि इस गति से तीस वर्ष में हम दुगुने हो जायेंगे। हम लोग अनुत्तरदायित्व पूर्ण ढङ्ग से काड मछलियों की भाँति उत्पादन में लगे है। भाग्यहीन निम्न मध्यम वर्ग सन्तानोत्पत्ति को अपना मनोरञ्जन मानता है। फिर सन्तान भेड बकरियों की भाति तो पलेगी ही। न कोई लडकी 'लक्ष्मी' है, न कोई लडका 'नारायण' हो सकता है। यदि किसी के केवल पुत्रिया ही है तो भी कोई भय नही। आज पुत्र और पुत्री दोनो कानून की दृष्टि मे समान है, दोनो को सम्पत्ति में भाग मिलता है। वास्तव

में केवल एक ही सन्तान वरदान है, वही यथेष्ट होनी चाहिए। अधिक सन्तान धनवान और निर्धन, माताओं और बालकों सभी के लिए अभिशाप है। किन्तु उच्च व मध्यम वर्ग इस ओर पर्याप्त सचेत और सचेष्ट हैं। निम्न मध्यम और निर्धन वर्ग, जो देश का ८० प्रतिशत है, सोया हुआ है। इस सोने का एक परिणाम यही होगा कि उच्च वर्ग कम होता जायगा और निम्न वर्ग अधिक—अर्थात्, उच्च वर्ग और अधिक धनी और निम्न वर्ग और अधिक निर्धन। इस प्रकार निम्न वर्ग का शारीरिक और मानसिक स्तर और भी गिर जायगा। सन्तति को प्रकृति की देन समझना हमारी एक बड़ी भूल है। यह लकीर के फकीर बनने के अतिरिक्त और कुछ नहीं। अच्छा हो, यदि हम युग के साथ चलें और शीघ्रातिशीघ्र बदलें।

परिवार नियोजन क्या है ?—

परिवार नियोजन के अन्तर्गत 'काम-शिक्षा', विवाह सम्बन्धी परामर्श, विवाह-स्वास्थ्य शिक्षा, बालक होने की अवधि का निश्चय करना और परिवार के बजट पर परामर्श देना सम्मिलित है। राजकुमारी अमृतकौर ने जो कुछ समय पूर्व हमारी स्वास्थ्य मन्त्राणी थी, सुरक्षित अवधि प्रणाली अथवा ऐसे सभोग की पद्धति का प्रचार किया है जब सभोग से प्रसव की सम्भावना नहीं होती। यह न्यूनतम व्यय का साधन है। इसमें स्त्री के स्वास्थ्य को भी कोई सकट नहीं, जैसा कि अन्य विधियों में हो सकता है।

परिवार नियोजन के साधन—

भले ही हम गर्भ निरोधक कृत्रिम साधनों का प्रयोग न भी करें, फिर भी हम पारिवारिक नियोजन के अन्य सिद्धान्तों पर चलकर परिवारों के आकारों को सीमित रखने में सफल हो स ते हैं। उदाहरण के लिए, यदि लड़कियों का विवाह १४ वर्ष की अवस्था मे न करके २० वर्ष को आयु पर किया जाय, तो १४ वर्ष से २० वर्ष तक होने वाली सतान न हो सकेगी। इसका एक सुन्दर प्रभाव यह भी होगा कि कच्ची आयु में गर्भ धारण करने से स्वास्थ्य पर जो बुरा प्रभाव पड़ता है वह न पड़ेगा। इसके अतिरिक्त जन्म दर में भी कमी होगी। पारिवारिक नियोजन के सिद्धान्तों के प्रचार के साथ साथ यदि आत्म संयम की भावना भी बढ़ाई जाये, फिर तो 'सोने में सुहागा' है। हमारा देश ब्रह्मचर्य पालन के लिए विख्यात रहा है। आज हम स्वतन्त्र हैं, अतः आरम्भ से ही लोगों के चरित्र एव व्यक्तित्व के विकास की ओर अधिक ध्यान दिया जाय, तो गृहस्थ जीवन में भी वे संयम का भली प्रकार पालन कर सकते हैं। बड़ी आयु में विवाह करके तथा सयम का जीवन व्यतीत करते हुए यदि लोग अपने परिवारों के आकारों को छोटा रख सकें, तो स्वतः ही कुछ वर्षों में जन-संख्या की समस्या को हल कर सकते हैं। पारिवारिक नियोजन की विचारधारा का प्रचार मुख्यतः ग्रामीण जनता में करना

चाहिए । यह भी आवश्यक है कि गरीब लोगों को बथ कन्ट्रोल के साधन या तो मुफ्त दिए जाय अथवा कम दामों पर दिए जाए जिससे कि वे भी अपने परिवार को योजनापूवक चला सके । सरकार को अविवाहितों एव कुआरों को पारितोषण देना चाहिए । म यम वग के लिए मनोरजन के साधन बनाए जाय । मनोरजन के स्थानों पर जाने के लिए आधे किराये लगे पहाडो पर ठहरने का सस्ता प्रबन्ध हो शहर म नाटक सिनेमा वतमान मूल्यों से चौथाई दर पर हो इत्यादि । देश को भुखमरी बेकारी और बरबादी से बचाने के लिए कृत्रिम साधनों को भी अपनाना चाहिये । फिर काफी समय से शल्य चिकित्सा भी होती है जो इस दशा म पूणत सहायक है । वह स्त्री पुरुष दोनों के लिए सम्भव है । साथ ही गर्भाधान रोकने के लिए सस्ता औषधिया (जसे फोम गोलिया) निशुल्क बाटनी चाहिये ।

परिवार नियोजन की दिशा मे राजकीय प्रयत्न—

सरकार ने द्वितीय पच वर्षीय योजना म परिवार नियोजन केन्द्र खोलने के लिए चार करोड की धन राशि स्वीकृत की है । गावों म २ ००० केन्द्र खुलने है । शहरों म पहले से ही ३०० खुले है । प्रत्येक केन्द्र को मुफ्त बाटने के लिए १ ००० रुपए की गर्भ निरोधक औषधिया दी जाती है । वहा परामश भी दिया जायगा । दिल्ली म ४० केन्द्र चल रहे हैं और एक बडी सख्या उनसे लाभ उठा रही है । वहाँ सन्तति निरोधक आधुनिक साधन भी सस्ते मूल्य पर उपलब्ध है ।

यह हष का विषय है कि परिवार नियोजन को सरकारी कायक्रम म स्थान मिला है । पर ग्रामो म अधिक प्रचार की आवश्यकता है क्योंकि असली भारत ग्रामो म ही बसता है । साथ ही परामश केवल स्त्रियों को ही नहीं पुरुषों को भी दिया जाना चाहिए । उसकी उन्ह स्त्रियों से भी अधिक आवश्यकता है । परिवार नियोजन का प्रचार हमारे प्रोग्राम का एक महत्वपूर्ण भाग होना चाहिए । वास्तव म शिक्षात्मक प्रचार का एक विस्तृत देशव्यापी कायक्रम बनाए बिना काम न चलेगा ।

यहा १५ नवम्बर सन् १९५८ को स्वास्थ्य म त्री श्री दत्तात्रय परशुराम करमरकर की अध्यक्षता म परिवार आयोजन मण्डल की बठक हुई जिसम परिवार आयोजन कायक्रम की प्रगति तथा भावी योजना पर विचार किया गया । मडल ने सरकार से इस कायक्रम को लागू करने के लिए सन् १९५९ ६० म १ करोड रुपया देने की सिफारिश की है । इस कायक्रम की मुख्य मुख्य बात इस प्रकार है अधिक लोगों को इस काय म प्रशिक्षित करना तथा शिक्षा देना दवाखाने खोलना परिवार आयोजन के बारे म शिक्षा देने के लिए कायकर्त्ताओं की नियुक्ति सभी स्वास्थ्य केन्द्रों तथा चिकित्सा सस्थाओं द्वारा गभनिरोधक उपकरणों का वितरण तथा निरीक्षण और अनुसन्धान काम म तेजी ।

मण्डल ने इस कार्यक्रम की प्रगति पर भी विचार किया। इस समय तक ७१८ क्लिनिक खोले जा चुके है। मार्च सन् १९५९ तक शहरों में १५० तथा गांवों में ६०० क्लिनिक खोलने का लक्ष्य था। उसमे से शहरों में १७१ तथा गांवों में ४०० क्लिनिक खोले जा चुके है। विभिन्न राज्य सरकारों ने केन्द्रीय सरकार को यह सूचना दी है कि व इन दवाखानो के अलावा अपने यहाँ मार्च सन् १९५९ के पहले १५१ क्लिनिक और खोलने का विचार कर रही है।

मण्डल ने परिवार आयोजन के बारे म कुछ चुने हुए लोगो को ट्रेनिंग देने के लिए थोडे समय के शिविर खोलने का भी सुझाव दिया। ये शिविर सामुदायिक विकास खडों के केन्द्रो में या हर जिले म किसी उपयुक्त स्थान पर लगभग ७ दिन तक लगाए जाएंगे। इसका मुख्य उद्देश्य हर गांव या कुटुम्ब में कुछ लोगो को परिवार आयोजन प्रचारक की ट्रेनिंग देना है।

STANDARD QUESTION

1. Give your considered view regarding Family Planning with special reference to Indian conditions.

अध्याय २१

भारत मे श्रम-संघ आन्दोलन

(Indian Trade Union Movement)

श्रम सघ का अर्थ—

सर्वश्री सिडनी तथा बीट्राइस वेब (Sidney and Beatrice Webb) के शब्दों में, श्रमिक सघ वास्तव में मजदूरी पर निर्वाह करने वाले व्यक्तियों के उनके काम की दशाएँ बिगडने न देने तथा उन्हें सुधारने के लिए बनाये गये स्थायी सगठन है। इस प्रकार इनके दो प्रमुख उद्देश्य है —प्रथम, जो कुछ प्राप्त हो चुका है उसे बनाये रखना और दूसरे अधिक सुधार के लिए प्रयत्न करना।

सेवायोजक की तुलना में श्रमिक की स्थिति बडी दुर्बल होती है। वह अकेले अपनी आवश्यकताओं को अपने स्वामियों के सम्मुख रखने में हिचकता है। इसका कारण उसकी आर्थिक अवस्था का खराब व शिक्षा का अभाव होना है। परिणाम स्वरूप उसे बडी हानि सहनी पडती है। श्रमिक के हित की रक्षा के लिए ही श्रमिक सघ का जन्म हुआ। वे माग एवं पूर्ति के एकागी प्रस्ताव को सामूहिक रूप देते है। फ्रैंक टनबाम (Frank Tannen Baum) के मतानुसार— श्रम आन्दोलन परिणाम है और मशीनों का आविष्कार इसका प्रधान कारण है। मशीनों के आविष्कार से एक व्यक्तिगत श्रमिक की सुरक्षा का बडा भारी आघात पहुंचा है अतएव अपने बचाव के उद्देश्य से उसने सघ का निर्माण किया। श्रम सघ द्वारा वह मशीनों के दुष्परिणामो पर विजय प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। श्रम सघो का प्रमुख उद्देश्य पूँजीवादी व्यवस्था के स्थान पर औद्योगिक जनतन्त्रवाद की स्थापना करना होता है। राबर्ट एफ० हाक्सी (Robert F Hoxie) के विचारानुसार, श्रम सघ वास्तव में वर्ग मनोवृत्ति (Group Psychology) के उत्पाद है। 'प्राय सभी श्रमिक-सघो का अन्तिम उद्देश्य सामान्य होता है—अर्थात् वे श्रमजीवियो की सौदा करने की शक्ति को बढाते है, जिससे कि वे मिलकर अपनी समस्याओ को स्वय हल करने में समर्थ हो सकें। सेलिग पर्लमैन (Selig Pearlman) ने एक स्थान पर लिखा है कि किसी देश के श्रम आन्दोलन

की शक्ति वहाँ के रहने वाले श्रमिको की जागरूकता पर निर्भर करती है। कार्ल मार्क्स (Karl Marx) के शब्दों में, "श्रमिक-सघ वास्तव में श्रमजीवियों में सगठन का केन्द्र बिन्दु है।" सघ शक्ति से श्रमिको में परस्पर बन्धुत्व एव सहयोग की भावना का विकास होता है। सगठन के अभाव में श्रमजीवियो में स्वय विषम प्रतियोगिता की भावना पैदा हो सकती है, अतः पारस्परिक प्रतियोगिता की भावना का उन्मूलन करने एव बन्धुत्व की भावना को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से ही श्रमिक सघो का जन्म हुआ।

कुछ लोग श्रमिक सघो को 'लड़ाका सगठन' (Militant Organisations) समझते है, जो सदैव औद्योगिक युद्ध के लिए तैयार रहते है, किन्तु यह धारणा सही नही है। श्रमिक सघ वास्तव में सामाजिक अशान्ति नही, वरन् सामाजिक प्रगति के प्रतीक है।

श्रमिक सघ के उद्देश्य—

(१) श्रमिको में परस्पर बन्धुत्व एव सहयोग की भावनाओ का विकास करना एव उन्हें सगठित करना।

(२) उनके काम एव मजदूरी के सम्बन्ध में उनकी विभिन्न अक्षमताओ पर सोच-विचार करना तथा उन्हे वैधानिक रूप से दूर करने का प्रयत्न करना।

(३) श्रमिक एव उनके अधिकारियो में सहयोग की भावना उत्पन्न करना।

(४) अपने सदस्यो की बीमारी तथा अन्य मुसीबत के समय के लिए कोष रखना।

(५) रोग बीमा, प्रॉवीडेन्ट फन्ड, सहकारी साख, डाक्टरी मदद आदि लाभ दायक योजनाओ की व्यवस्था करना।

(६) हड़ताल घोषित करना, सगठित करना तथा उन्हे चलाना, सेवायोजको से वार्ता करना और झगड़ो को शान्ति से तय कराना।

(७) आवश्यकता पड़ने पर कानूनी सहायता देना।

(८) अन्य ऐसे कार्य करना जो श्रमिको तथा उनके आश्रितो के सामाजिक, आर्थिक एव शिक्षा सम्बन्धी दशाओं के सुधार के लिए हो।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि श्रमिक सघो का प्रारम्भिक उद्देश्य अपने सदस्यो का आर्थिक एव सामाजिक हित साधना है। इस उद्देश्य से ही वे समस्त कार्य करते है।

श्रमिक सघ के कार्य—

श्रमिक सघ के कार्यों को निम्न तीन भागो में विभाजित किया जा सकता है—
(१) श्रमिको की काम की दशाओ से सम्बन्धित कार्य, (२) काम की दशाओ से असम्बन्धित, किन्तु उनके सामान्य जीवन स्तर से सम्बन्धित कार्य, और (३) राजनैतिक कार्य।

(१) **काम की दशाओं से सम्बन्धित कार्य** (Intra mural Functions)—श्रमजीवियों की काम की दशाओं से सम्बन्धित कोई भी कार्य इस शीर्षक के अन्तर्गत आता है जैसे—पर्याप्त मजदूरी दिलाने के लिए प्रयत्न करना, कारखाने के अन्दर काम करने की दशाओं में सुधार करना, काम के घन्टों में कमी करना, सेवायोजकों से उचित व्यवहार प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करना आदि। लाभग्रस भागिता एवं सह भागिता की दिशा में किए हुए प्रयत्न भी इस शीर्षक के अन्तर्गत सम्मिलित किये जा सकते हैं। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए श्रमिक संघ सामूहिक रूप से अपने सेवायोजकों से व्यवहार करते हैं और माँग की अस्वीकृति की दशा में हड़तालें तथा असहयोग करते हैं। यही कारण है कि कभी कभी श्रमिक संघ के इन कार्यों को 'लड़ाकू कार्य' (Militant or Fighting functions) कहते हैं।

(२ **सामान्य जीवन-स्तर से सम्बन्धित कार्य** (Extra-mural activities—इस शीर्षक के अन्तर्गत उन कार्यों का समावेश किया जा सकता है, जिनसे कि श्रमिकों के सामान्य जीवन स्तर में वृद्धि हो, जैसे—श्रमजीवियों में परस्पर बन्धुत्व एवं सहयोग की भावना प्रोत्साहित करना, उनका शैक्षिक एवं सांस्कृतिक विकास करना, बीमारी, बेकारी अथवा हड़ताल आदि की अवधि में श्रमिकों की रक्षा तथा सहायता करना, कानूनी परामर्श देना, श्रमजीवियों के लिए कल्याण कार्य की व्यवस्था करना, पुस्तकालय, वाचनालय, मनोरंजनालय आदि का प्रबन्ध करना, सस्ते ऋण, सस्ते अनाज एवं गृह आदि की व्यवस्था करना। इन कार्यों को 'बंधुत्व प्रेरक कार्य' (Fraternal functions) भी कहा जा सकता है और ये सदस्यों के सहयोग तथा उनकी आर्थिक दशा पर निर्भर करते हैं। आर्थिक दृष्टि से श्रमिक संघ जितने ही बलशाली होंगे, ऐसे कार्यों की मात्रा उतनी ही अधिक होगी।

(३) **राजनैतिक कार्य** (Political activities)—देश के शासन प्रबन्ध में भाग लेने के उद्देश्य के लिए निर्वाचन आदि में श्रमिक संघ के प्रतिनिधियों का खड़ा करना 'राजनैतिक कार्यों की श्रेणी में आता है।

भारत में संघ आन्दोलन

पारस्परिक सामान्य लाभ के लिए श्रमिकों का संगठन होना भारत में अभी थोड़े समय से ही आरम्भ हुआ है। सबसे प्रथम बार सन् १८८४ में सामूहिक प्रतिनिधित्व किया गया, जबकि फैक्टरी कमीशन को प्रस्तुत किये जाने वाले स्मरण पत्र को तैयार करने के लिये श्रमिकों का एक सम्मेलन बुलाया गया, परन्तु संगठित कार्यक्रम का विचार श्रमिकों में देर से आया। सन् १८९० में श्री लोखण्डे ने श्रमिकों को संगठित किया। इस संगठन का नाम बम्बई मिल हैण्ड्स एसोसियेशन था, जो सरकार को कारखाना अधिनियम के संशोधन के विषय में स्मरण-पत्र प्रस्तुत करने के लिए

आयोजित किया गया था परन्तु यह बड़ा ढीला ढाला संगठन था। इसका न तो कोई निश्चित विधान था और न निश्चित चन्दा देने वाले सदस्य ही। सन् १८९७ में अमलगेमेटेड सोसाइटी आफ रेलवेमेन आफ इण्डिया एण्ड आफ बर्मा की स्थापना हुई जो अब भी वर्तमान है परन्तु इसका कार्यक्रम भाईचारे का कम था एवं लड़ाका अधिक।

बीसवी शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में कुछ संघ जैसे—सीमेन यूनियन कलकत्ता एवं पोस्टल यूनियन बम्बई स्थापित हुए। एक मुहम्मदन एसोसियेशन बंगाल में थी परन्तु उसे कठिनता से एक श्रमिक संघ कहा जा सकता है। इसी प्रकार इण्डियन लेबर यूनियन यद्यपि नाम से बड़ा उचित संगठन जान पड़ता है बहुत क्रियात्मक नहीं रहा। सन् १९१० में श्रमिकों के कल्याण की वृद्धि के लिए कामगार हितवर्द्धक सभा स्थापित हुई जो सन् १९५२ तक बनी रही परन्तु इसने भी अधिक काम नहीं किया।

वास्तव में श्रमिक संघ आन्दोलन भारत में सन् १९१८ से प्रारम्भ होता है जबकि अनाप सनाप कीमत बढ़ने से उत्पन्न हुई आर्थिक कठिनाइयाँ सामान्य राजनैतिक कशमकश एवं श्रमिकों की बढ़ती हुई विश्वव्यापी चेतना ने श्रमिकों के दिमाग में अपने हितों के लिए संगठित होने की आवश्यकता की बात भर दी। पहली यूनियन मद्रास में स्थापित हुई। इसके बाद अन्य स्थानों में भी यूनियन स्थापित हुई। इनमें अधिकतर तो केवल हड़ताल समिति मात्र थी जिनका जन्म समस्या को जीतने या हारने पर या उसमें पूर्व ही समाप्त हो जाने के लिए हुआ था। वे एक दूसरे से असम्बन्धित थी परन्तु जब उनके एकीकरण की आवश्यकता अनुभव हुई क्योंकि इन्हीं दिनों विश्व श्रमिक संघ के लिए किसी केन्द्रीय एवं प्रतिनिधि संघ से प्रतिनिधि जाने को थे अस्तु स्थानीय यूनियन संघ में परिवर्तित हो गई और फिर प्रान्तीय संघ की स्थापना हुई। सन् १९२० में आल इण्डिया ट्रेड यूनियन काँग्रेस जो समस्त यूनियनों का राष्ट्रीय फेडरेशन थी बुलाई गई। सन् १९२२ में केन्द्रीय श्रमिक समिति की स्थापना हुई और उसी वर्ष आल इण्डिया रेलवेमेन फेडरेशन पोस्ट एण्ड टेलीग्राफ यूनियन स्थापित हुई। इस अवधि की विशेषता यह थी कि उपयुक्त नेता श्रमिकों में से ही सुलभ न थे अस्तु उन्हें बाहरी व्यक्तियों के नेतृत्व पर निर्भर रहना पड़ता था।

सेवायोजकों ने इन यूनियनों को मान्यता प्रदान करने से इन्कार कर दिया। श्रमिकों को सताया जाने लगा। भारतीय अपराध दण्ड संनियम संशोधित किया गया और श्रमिक संघों के कार्य अवैध घोषित कर दिये गये। सन् १९२० में बकिंघम मिल्स के मामले में मद्रास यूनियन के विरुद्ध आदेश जारी किये गये और तब श्रमिक नेताओं ने देखा कि वे सच्चे श्रमिक संघ कार्यों के लिये भी उत्तरदायी ठहराये जा सकते हैं। श्री एम० एम० जोशी ने श्रमिकों के लिए संरक्षण प्राप्त करने का उद्योग किया परन्तु उनका यह परिश्रम पाँच साल बाद उस समय सफल हुआ जबकि सन् १९२६ में व्यापार संघ अधिनियम पास किया गया। तब से संघों की संख्या में तेजी से वृद्धि हुई है।

सन् १६२८ २६ म आन्दोलन बडी तेजी पर था। कम्युनिस्टो का सघो पर प्रभाव बढ गया। एसे सघो म गिरनी कामगार यूनियन (सदस्य सख्या ५० ००० से अधिक) प्रमुख थी इन्होन बम्बई म सन् १६२८ म हडताल सगठित की और सफलता भी प्राप्त की परन्तु कम्युनिस्ट सदस्यो की कुछ कार्यवाहिया से मुसीबत पदा हो गई। शहर म दङ्गा हो गया कई प्रमुख नेता पकड लिए गये और उन्हे सजायें दी गई। सन् १६२६ म उन्होंने फिर दूसरी हडताल की और वह काफी समय तक जारी रही। तब एक जाँच अदालत बठी। उसकी रिपोट के अनुसार कामगार यूनियन ही हडताल के लिए पूर्ण रूप से उत्तरदायी थी। एक प्रमुख सघ के विरुद्ध एसी रिपोट न आन्दोलन को बदनाम कर दिया और उसे बहुत धक्का पहुँचा। आल इण्डिया ट्रड यूनियन काग्रस के सन् १६२६ के अधिवशन म उसकी काय समिति पर कम्युनिस्टो न अधिकार कर लिया तथा उग्र कायवाही का और विश्व कम्युनिस्ट आन्दोलन से सम्बन्ध स्थापित करन का निश्चय किया। इस पर नम्र दलीय सघो न श्री एन० एम० जोशी की अध्यक्षता म इस काग्रस से सम्बन्ध विच्छेद कर लिया और इण्डियन ट्रड यूनियन फडरेशन बनाया। रेलव मन फडरेशन न भी उस काग्रस से सम्बन्ध तोड लिया। सन् १६३१ म तो उग्रदलियो न स्वय अपनी अलग आल इण्डिया रड ट्रड यूनियन काग्रस बना ली। सन् १६३१ के विश्व श्रमिक सघ को इण्डियन ट्रड यूनियन फडरेशन से ही प्रतिनिधि भेज गये थ। इस फूट से आन्दोलन म बडी कमी आ गई। एकता लान के प्रयत्न एक बार फिर किय गये सन् १६३३ म नशनल ट्रड यूनियन फडरेशन बना जिसम कम्युनिस्टो को छोडकर और सब सघ सम्मिलित थ। सन् १६३५ म एकता का अन्तिम आधार भी निश्चित हो गया और सन् १६४० म तो काम चलाऊ समझौता भी हो गया था परन्तु अभाग्यवश उसी समय युद्ध आरम्भ हो गया। युद्ध म सहायता दी जाये या नही इस प्रश्न पर फिर तीव्र मतभेद पदा हो गया फलस्वरूप कई सघ अलग हो गये।

वतमान समय म इण्डियन नशनल ट्रड यूनियन कांग्रस देश के श्रमिक सघो की सबसे अधिक प्रतिनिधिक सस्था है। इसम लगभग ८०० सघ सम्मिलित हैं जो लगभग १२ लाख श्रमिको का प्रतिनिधित्व करते है। इसके बाद आल इण्डिया ट्रड यूनियन काग्रस है जो किसी समय श्रमिको की प्रतिनिधि सस्था थी परन्तु कम्युनिस्टो के घुस आन पर जबसे भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक सघ काग्रस उसम अलग हो गई तब से उसकी सदस्य सख्या घटती जा रही है। आल इण्डिया ट्रड यूनियन कांग्रस के अतिरिक्त सोशलिस्ट पार्टी द्वारा आयोजित हिन्द मजदूर सभा भी है तथा सन् १६४६ म यूनाइटड ट्रड यूनियन काग्रस की और स्थापना हुई। इस प्रकार भारत म आज ४ प्रमुख अखिल भारतीय श्रम सगठन है जिनके सदस्यो की सख्या निम्न तालिका से ज्ञात की जा सकती है —

तालिका I*

रजिस्टर्ड श्रम-संघ तथा उनकी सदस्यता

विवरण	केन्द्रीय संघ			राज्यीय संघ		
	१९५५-५६	१९५६-५७	१९५७-५८	१९५५-५६	१९५६-५७	१९५७-५८
१ रजिस्टर में दर्ज संघों की संख्या	१७४	१७३	२२३	७९२१	८१८०	९८२२
२. प्रत्याय (Returns) फाइल करने वाले संघों की संख्या	१०५	१०२	१०६	३९०१	४२९७	५३८४
३ प्रत्याय फाइल करने वाले संघों की संख्या	२,१२ ८४८	१,८७ ६५	४,००,१६६	२०,६१,८८४	२१,८६,४६७	२६,७२,८८३

* India 1960, Page 383

तालिका II*
अखिल भारतीय संघो की सदस्यता

संगठनों का नाम	सम्बन्धित संघों की संख्या			सदस्यता		
	१९५६	१९५७	१९५८	१९५६	१९५७	१९५८
१. भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस	६१७	६७२	७२७	९,७१,७४०	९,३४,३८५	९,१०,२२१
२. हिन्द मजदूर सभा	११९	१३८	१५१	२,०३,७६८	२,३३,६९०	१,९२,९४२
३. अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस	५५८	—	८०७	४,२२,८५१	—	५,३७,५६७
४. यूनाइटेड ट्रेड यूनियन कांग्रेस	२३७	—	१८२	१,५९,१०९	—	८२,००१
योग	१५३१	—	१,९६७	१७,५७,४६८	—	१७,२२,७३१

भारत मे श्रमिक संघ की सफलताएँ—

भारत मे श्रमिक संघो का इतिहास नया है, इसलिये व्यवहार मे उनका वास्तविक महत्त्व आंकना दुष्कर नहीं तो कठिन अवश्य है। यह तो निस्संकोच कहा जा सकता है कि उन्हें पर्याप्त सफलताएँ प्राप्त हुई है। उदाहरण के लिए, अपनी स्थापना के प्रथम वर्ष में ही वे मजदूरी बढवाने और काम के घण्टे कम करवाने में सफल हुए और सन् १९२६ में उन्होंने मजदूरी मे कटौती होने से रोकी। इसके अतिरिक्त वे मालिकों का श्रमिकों के प्रति व्यवहार बदलने मे भी सफल हुए है। वे अब पहले की तरह उनके प्रति उदासीन एवं विरुद्ध नहीं रहे। कर्मचारी संघ ने सन् १९२५ में बी० एन० आर० की हड़ताल एव १९२७ में खड़गपुर वर्कशाप की 'तालाबन्दी' में सफलतापूर्वक हस्तक्षेप किया।

* India 1960, Page 383

दूसरे देशों की अपेक्षा हमारे देश के श्रमिक सघों की प्रगति लगभग नगण्य है। कठिनता से ५% श्रमिक इन सघों के सदस्य होंगे। दुर्भाग्यवश हमारे अधिकतर सगठन केवल खोखले आयोजन मात्र हे,जिन्हे अपर्याप्त कोष एव जाली सदस्य सख्या और बाहरी लोगों के उत्साह द्वारा ही जीवित रखा जा सका है। बहुत कम श्रमिक सघों ने बेरोजगारी, बीमारी व बुढ़ापे के लाभ दिये है। उनमें 'पारस्परिक सहायता' की प्रवृत्ति तो लगभग अविकसित है और उन्होंने अपने को केवल लडाकू कार्यों तक ही सीमित रखा है। अहमदाबाद का वस्त्र सघ अवश्य ही श्रमिकों के लिए कई कल्याण काय— अस्पताल, शिक्षा, सस्ते अनाज, सहकारी ऋण एव मनोरजन की सुविधाओं के रूप में, कर रहा है। प्रति सप्ताह वह एक पत्र भी प्रकाशित करता है।

यह आशा की जाती है कि शिक्षा के फैलने पर दशा और सुधरेगी, श्रमिक अपने अधिकार एव कर्तव्यों को समझेंगे, अनुशासन बढेगा, सगठन के महत्त्व का उन्हें ज्ञान होगा व श्रमिक सघों के सदस्यों की सख्या भी बढेगी, वे स्वय अपने वर्ग में से ही नेता प्रकट कर सकेंगे, बाहरी लोगों की स्वार्थपूर्ण चालों से छुटकारा पावेंगे और अपना काय अधिक चतुरता एव बुद्धिमत्ता से चला सकेंगे। वह दिन दूर नहीं है, जब कि भारत इस बात पर गर्व कर सकेगा कि उसके श्रमिक सघ भी अब अन्य देशों से किसी भाँति पीछे नहीं हैं।

भारतीय श्रमिक सघों के मार्ग मे बाधायें—

भारत में श्रमिक सघ आन्दोलन की प्रगति बहुत सी बाधाओं के कारण धीमी रही है। कुछ महत्त्वपूर्ण बाधायें ये हैं :—

(१) अशिक्षा व अज्ञानता—भारतीय श्रमिक प्रायः अपढ है, अस्तु वे अनुशासन के महत्त्व को नहीं समझते और न सघ को बुद्धिमानी और चतुरता से चला ही सकते है।

(२) विचित्र समुदाय—भारतीय श्रमिक वर्ग विभिन्न प्रकार के धर्मों, विचारधाराओं, रीति रिवाजों और आदतों के मजदूरों का मिश्रण है, इसलिए उनका सगठित होने में देर लगती है।

(३) प्रवासी प्रवृत्ति—वे दूर दूर के गाँवों से नौकरी की खोज में आते है और चले जाते है, अतः वे अपना कार्य अथवा उद्योग परिवर्तित करते रहते है, इस कारण वे किसी सघ में स्थायी उत्साह नहीं लेते।

(४) कम वेतन—भारत में मजदूरों को बहुत कम वेतन मिलता है, इस कारण बहुत से तो चन्दा नहीं दे पाते। यदि कुछ दे भी सकें तो ऐसा शुल्क इतना न्यून होगा कि उससे सघ को यथेष्ट द्रव्य प्राप्त नहीं हो सकता, अतः वे फिर अच्छा कार्य,

जिसकी उनसे आशा की जाती है, नही कर पाने। यही नही, भारतीय मजदूर केवल समस्यात्मक लाभ के लिए शुल्क देने मे सकोच करता है और अपने शुल्क के बदले में अपनी सब आपत्तियो से बचाव अथवा थोडी अवधि ही मे वेतन वृद्धि की आशा रखता है।

(५) न्यून शुल्क– न्यूनतम शुल्क भी वसूल करने में कठिनाई होती है, क्योकि उसे मिल मालिक तनख्वाह बांटते समय उगाहने नही देते। बाद में वह या तो सरलता से कोषाध्यक्ष तक पहुंचता नही और यदि पहुँचता भी है तो बीच में ही उसका कुछ भाग इधर उधर कर दिया जाता है।

(६) कम अवकाश—मजदूरो का अवकाश इतना कम रहता है कि वे अन्य बातें, जैसे—सघ आदि के विषय म सोच ही नही पाते।

(७) नियोक्ताओ व ठेकेदारों की विरोधी प्रवृत्ति—सेवायोजको एव कर्म कारियोजको का विरोध सघ आन्दोलन की प्रगति में एक अन्य बाधा है। उन मजदूरो को जो सघ के प्रति कुछ सहानुभूति रखते है, तरह तरह से परेशान किया जाता है। वे मजदूर सघो को मान्यता प्रदान नही करते है और यदि करते ह तो ऐसी शर्तों के साथ कि फिर सगठन व्यर्थ रहता है। कभी-कभी सच्चे सघो के विरोध मे सेवायोजको द्वारा झूठे सघ स्थापित कर दिये जाते है और इनकी सहायता से उनकी कार्यवाहियो में विघ्न डालने का प्रयत्न किया जाता है। सघ के कार्यकर्त्ताओ को घूस देकर फोड लेना तो एक साधारण सी बात है।

(८) विशाल क्षेत्र—हमारे देश में मजदूर एक बडे क्षत्र मे फैले हुए है और कुछ दशाओ म तो उन तक पहुँच भी नही हो पाती, जैसे—आसाम के चाय बागान आदि। अस्तु इनसे सम्बन्धित सूचनायें दबाई जा सकती है और बाहर वालो को उनकी जानकारी नही हो पाती। यह दशा सघो की प्रगति में बाधक है।

(९) सु नेतृत्व का अभाव—सबसे बडी बाधाओ मे एक बाधा अच्छे नेतृत्व का अभाव होना भी है। श्रमिक अपढ है, वे अपने अधिकारो एव कर्त्तव्यों मे अपरिचित है, इसलिए उन्हे बाहरी नेतृत्व पर निभर रहना पडता है। यह उनकी बडी दुबलता है, क्योकि ऐसी दशा म प्राय. अपने राजनैतिक अथवा सामाजिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए स्वार्थी लोग नेतृत्व सँभाल लते है। इन्हे श्रमिको की वास्तविक स्थिति का ज्ञान नही होता, क्योकि उन्हें कभी कारखानो मे काम नही करना पडा। वे उद्योग की आवश्यकताओ से भी अपरिचित होते हैं। उन्हे श्रमिको से सच्ची सहानुभूति भी नही होती। कुछ पढे लिखे वकील आदि, जिन्हे काम नही मिलता, बैठे ठाले इस कार्य को संभाल लेते हे और अपना स्वार्थ सिद्ध करने के प्रयत्न में सलग्न रहते ह। कही कही तो ऐसे लोगो ने मजदूरो के चन्दे भी हजम कर लिए। कुछ नता कई सघो का काम सँभालने

रहते है, इसलिए वे प्रत्येक सघ का पर्याप्त समय भी नही दे पाते । रॉयल कमीशन ने यह स्पष्ट कहा है जब तक ये सघ इस विषय में आत्म-निर्भर नहीं हो जाते, तब तक किसी विशेष प्रगति की आशा करना व्यर्थ है ।

(१०) श्रमिक नेताओ के प्रति द्वेष—अधिकाश श्रमजीवियो में अपने नेताओ के प्रति सद्भावना नही होती । जनमाधारण भी उन्हें प्रायः विप्लवकारी, आग उगलने वाला कहकर बदनाम करते है ।

(११) श्रमिको मे अनुशासनहीनता—अशिक्षा, अज्ञानता एव रूढ़िवादिता के कारण भारतीय श्रमिक नियन्त्रण व शासन के अन्तर्गत रहने का आदी नही होता, अतः श्रम सघ की ओर स प्राय. लापरवाह रहता है ।

(१२) नियोक्ताओ का असहानुभूतिपूर्ण वातावरण—मिल मालिको का असहानुभूतिपूर्ण वातावरण भी श्रम सघ आन्दोलन की एक बडी कठिनाई है । भारतीय नियोक्तागण यह नही समझते कि स्वस्थ एव सुदृढ सघवाद हडतालो के विरुद्ध बीमा का कार्य करता है । इसके फलस्वरूप अनियमित, अनाधिकृत तथा बिजली की तरह क्षणिक हडतालें नहीं हो पाती ।

राष्ट्र निर्माण मे सघो का भाग—

किसी भी देश को कल्याणकारी राज्य बनाने में श्रमिक सघ बहुत लाभकारी हो सकते है । श्रमिक सघो को मजदूरो में यह भावना व प्रवृत्ति पैदा करनी चाहिए कि वे राष्ट्र हित की दृष्टि से उत्पादन को बहुत बढावें । मिल मालिको का भी यह कर्त्तव्य है कि वे उत्पादन बढाने के उपायो को श्रमिक (अर्थात् श्रमिक सघ के प्रतिनिधियो) के सामने रखें और उनका सहयोग प्राप्त करें । श्रमिक प्रतिनिधि उन्हें राष्ट्रीय समृद्धि में जहाँ अपने सहयोग का विश्वास दिलायेंगे वहाँ अपने लिए भी मिल मालिकों से निम्नलिखित आश्वासन चाहेंगे.—

(१) उत्पादनक्षमता में हुई वृद्धि के कारण जो लाभ होगा उसमें मजदूर भी वेतन वृद्धि और अन्य सुविधाओं के रूप में भागीदार होंगे ।
(२) नये उपायो का अर्थ मजदूर पर कार्य का अनुचित भार डालना नहीं होगा ।
(३) नये उपायो का परिणाम मजदूरो की छँटनी और बेकारी भी नही होनी चाहिए ।

इसके बाद श्रमिक सघ मजदूरों को राष्ट्रीय उत्पादन में अधिकाधिक हार्दिक सहयोग देने के लिए समझावेंगे, मजदूरो को मशीनो का काम अधिक कुशलता से करने की ट्रेनिंग भी देंगे और शिक्षण की व्यवस्था भी करेंगे । श्रमिको के प्रतिनिधि मिल इन्जीनियरो के साथ बैठ कर उत्पादन की नई योजनाओ पर विचार करेंगे और उप

युक्त व्यवस्था का निर्माण करने में सहयोग देंगे । इस तरह श्रमिक संघ राष्ट्रीय समृद्धि में महत्वपूर्ण भाग ले सकते हैं ।

शिक्षा प्रचार देश की उन्नति के लिए अत्यन्त आवश्यक है । आज श्रमिक संघ ४५% व्यय अपने कार्यकर्त्ताओं के वेतन पर करते हैं और केवल ७% शिक्षा प्रचार पर व्यय करते हैं । यह बहुत असन्तोषजनक स्थिति है । शिक्षा की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है ।

निम्नलिखित अन्य दिशाओं में काम करके भी श्रमिक संघ राष्ट्र-निर्माण में सहायक हो सकते हैं —

(१) श्रमिक संघ सहकारी समितियाँ बना कर मजदूरों के लिए घर बनवा सकते हैं ।

(२) मजदूरों में बचत की आदत पैदा की जा सकती है और विभिन्न कार्यों के लिए सहकारी समितियों का संगठन किया जा सकता है ।

(३) मजदूर परिवारों में तथा वयोवृद्ध पुरुषों में ग्रामोद्योग का प्रसार करके आमदनी बढ़ाई जा सकती है ।

(४) शारीरिक व्यायाम, खेल कूद आदि का प्रचार करके मजदूरों को स्वस्थ बनाने में श्रमिक संघ सहयोग दे सकते हैं ।

संक्षेप में, श्रमिक संघ विभिन्न क्षेत्रों में रचनात्मक कार्य करके राष्ट्र निर्माण में सहायक हो सकते हैं । इससे मजदूरों का शैक्षणिक, सामाजिक, सांस्कृतिक स्तर भी ऊँचा उठेगा, वे अच्छे नागरिक बनेंगे और जो सामाजिक व्यवस्था वे लाना चाहते हैं उसमें भी इससे सफलता मिलेगी ।

श्रम-संघों को मान्यता के सिद्धान्त—

भारतीय श्रम सम्मेलन सन् १९५८ ने मजदूर संघों को मान्यता प्रदान करने के लिए निम्न सिद्धान्त निर्धारित किये.—

(१) जहाँ १ से अधिक मजदूर संघ हैं, वहाँ यदि कोई संघ मान्यता के लिए दावा करे तो वह रजिस्ट्रेशन के बाद कम से कम १ वर्ष तक सक्रिय होना आवश्यक है । जहाँ केवल एक ही संगठन है वहां यह शर्त लागू नहीं होती ।

(२) सम्बद्ध उद्योग में इसकी सदस्य संख्या कम से कम १५ प्रतिशत अवश्य होनी चाहिए ।

(३) यदि किसी मजदूर संघ के सदस्यों की संख्या सम्बद्ध स्थानीय उद्योग के मजदूरों की संख्या का २५ प्रतिशत है, तो वह उस क्षेत्र के लिए मान्यता प्राप्त करने का दावा कर सकता है ।

(४) जब किसी मजदूर संघ को मान्यता मिल जाय तब इस स्थिति में दो वर्ष तक कोई परिवर्तन नहीं होना चाहिए ।

(५) जहां किसी उद्योग या सस्थान में कई मजदूर सगठन हों वहां जो सबसे बड़ा सघ हो उसे मान्यता प्रदान की जाय।

(६) किसी क्षेत्र के उद्योग की प्रतिनिधि मजदूर यूनियन उस क्षेत्र के उस उद्योग के सभी कामगारों का प्रतिनिधित्व करेगी, परन्तु यदि किसी विशेष उद्योग की यूनियन की सदस्य सख्या ५० प्रतिशत है, तो वह उस उद्योग की सीमा तक प्रतिनिधित्व कर सकती है।

(७) प्रतिनिध्यात्मकस्वरूप के निश्चय के लिए प्रक्रिया और अधिक सम्पूर्ण होनी चाहिए। जहां पर विभागीय तन्त्र के विनिश्चयात्मक निर्णय अन्य पक्षों को स्वीकार न हो वहां सभी केन्द्रीय मजदूर सगठनों के प्रतिनिधियों की एक समिति बनाई जाय, जो मामले पर विचार करे तथा निर्णय दे। इसके लिए केन्द्रीय सरकार मजदूर सगठन, जो स्थायी तन्त्र के रूप में कार्य करेगा, स्थानीय आधार पर व्यक्ति और धन प्रदान करेगा।

(८) केवल उन्हीं मजदूर सघो को मान्यता दी जायगी जो अनुशासन की महिमा का पालन करेंगे।

(९) ऐसे मामलों में, जहां कोई मजदूर सघ केन्द्रीय सरकार के सगठनों में से किसी से भी सम्बद्ध न हो, मामले को अलग रूप से ही तय किया जायगा।

श्रम सघ तथा द्वितीय पंच-वर्षीय योजना—

श्रम सघों के दोषों को दूर करने के लिए द्वितीय योजना अवधि में निम्नलिखित काय किए जा रहे हैं —

(i) श्रम-सघों में बाहरी व्यक्तियों को शामिल न होने देना;

(ii) आवश्यक शर्तों को पूरा करने पर उन्हें मान्यता प्रदान करना,

(iii) श्रम सघों के कार्यकर्त्ताओं की उत्पीडन (Victimization) से रक्षा करना, और

(iv) श्रम सघों की व्यक्तिगत साधनों द्वारा उन्नति करना।

STANDARD QUESIONS

1 Define a 'Trade Union' and briefly enumerate its aims, objects and functions.

2 Sketch the growth of trade unionism in India pointing out its defects and suggesting remedies.

अध्याय २२

हमारी कुछ प्रमुख श्रम समस्यायें I

(Labour Problems I)

भारत मे श्रम समस्याओं का उदय—

भारत मे श्रम समस्यायें अपेक्षाकृत कुछ नवीन ही है। प्राचीन काल म श्रमिको की क्या स्थिति थी, उनकी काम करने की दशायें कैसी थी और उनका जीवन-स्तर कैसा था, इस विषय मे कोई व्यवस्थित विवरण नही मिलता। हा, तत्कालीन ग्रन्थो, साहित्य तथा रीति रिवाजो के आधार पर अनुमान से यह कहा जा सकता है कि प्राचीन श्रमिक असगठित, अरक्षित किन्तु कार्य कुशल थे। पुश्तैनी कलाकारो तथा दस्तकारो द्वारा ब गाँवो व नगरो मे कला व दस्तकारी के उद्योग धन्धे किये जाते थे। ये लोग गाँव के सेवक भी होते थे तथा नगरो मे दस्तकारी सघो (Craft Guilds) मे सगठित होते थे। प्रवीण दस्तकारो (Master-craftsmen) के यहाँ कुछ लोग (Apprentice) दस्तकारी का काम सीखते थे। काम सीखने के बाद वे स्वय पृथक् व्यवसाय करने लगते थे। श्रमिक का जो आधुनिक अर्थ लिया जाता है, वह १९वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही प्रारम्भ हुआ। सन् १८५७ के उपरान्त देश में नई शासन व्यवस्था स्थापित हुई और आधुनिक उद्योगो व यातायात तथा आधुनिक अर्थव्यवस्था का विकास होना प्रारम्भ हुआ। जैसे जैसे देश में उद्योगो का विकास हुआ और नए कारखानो की स्थापना हुई, रेल, तार, डाक, चाय, रबड, सूत, जूट, लौह, इत्यादि सभी प्रकार के उद्योगो का विकास होने लगा। औद्योगिक क्रान्ति तथा यन्त्रो द्वारा बडे पैमाने पर उत्पादन के आधुनिक कारखाने की पद्धति ने ही श्रम की समस्याओ को जन्म दिया। २०वी शताब्दी म इन समस्याओ का रूप उग्रतर होता गया। एक ओर तो आधुनिक उद्योगो के विकास और दूसरी ओर कुटीर उद्योगो के विनाश तथा कृषि भूमि पर जनसख्या के उत्तरोत्तर बढने वाले भार के कारण, गाँवो से झुण्ड का झुण्ड कारीगर व किसान नगरो में जाकर श्रमिको के रूप म आबाद होने लगे। औद्योगिक नगरो का विकास हुआ और देश म बम्बई, अहमदाबाद, कलकत्ता, कानपुर, मद्रास और टाटानगर जैसे श्रमिक प्रधान नगर विकसित हुए।

इस प्रकार जो एक नया श्रमिक वग उत्पन्न हुआ उसकी कुछ अपनी विशेषतायें थी। उसके पास न धन था न भूमि और न कोई अन्य सम्पत्ति। उनके निवास की भी जटिल समस्या थी। पर्याप्त व उपयुक्त घरा के अभाव म भारतीय श्रमिक वग को नगरो की तग अधेरी और दुगधपूण गलियो म नारकीय जीवन व्यतीत करन के लिए बाध्य होना पडा। प्रारम्भ म उसकी नौकरी की सुरक्षा के लिय कोई व्यवस्था नही की जा सकी। उसके काम करन के स्थान की दशाय बडी अनुपयुक्त व स्वास्थ्य के प्रतिकूल थी। उसे १२ से १५ घन्टे तक काम करना पडता था। उसके स्वास्थ्य व चिकित्सा तथा दुघटनाओ से रक्षा करन के लिये कोई प्रबन्ध न था। उद्योगपति श्रमिका का निदयतापूवक शोषण करते थ और श्रमिक अपन स्वामी की दया पर निभर एक बेवश व असहाय शोषित प्राणी था।

किन्तु समय बदला। प्रथम विश्व युद्ध न श्रम समस्याओ को ऊपर लाकर रख दिया। श्रम तथा पूजी क बीच खाई वर्गीय भद भाव तथा धन व आय की बढती असमानता के कारण श्रमिका और मिल मालिकों के बीच तीव्र वमनस्य तथा द्वेष की आग भडक उठी। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान म भारतीय उद्योगपतियो न भारी लाभ कमाये और श्रमिको से शक्ति से भी अधिक काम लिया। इससे मजदूरो म कुछ जागृति हुई और उन्होन अपनी दशा सुधारन के लिए आवाज उठाई यद्यपि इस आवाज म बल न था। युद्ध तथा युद्धोत्तर तेजी म मूल्यो म असाधारण वृद्धि के कारण जीवन यापन की लागत बढ गई थी और इससे श्रमजीवियो म बडा असन्तोष छाया हुआ था। महगाई भत्तो बोनस या लाभाश और अधिक मजदूरी प्राप्त करन के लिये हडतालो की देश म एक बाढ आ गई थी। श्रम सघो का सगठन हुआ श्रमिको को अपन महत्व तथा अपनी शक्ति का ज्ञान हुआ। यही नही अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सघो व सम्मेलनो म भी भारतीय श्रम सघो के प्रतिनिधि भाग लेन लगे। सयुक्त राष्ट्र सघ न भारत को विश्व का आठवाँ औद्योगिक देश घोषित किया तथा भारतवष को अन्तर्राष्ट्रीय श्रम निणयो को स्वीकार कर लागू करना पडा।

कुछ श्रम कल्याणकारी कानूनो का भी निर्माण किया गया किन्तु श्रमिको म सगठन का अभाव होन के कारण उनके हितो की उचित रक्षा न हो सकी। सन् १९२६ म श्रम सघ अधिनियम के पास होन से उनकी दशा म सुधार की आशा बधी। सन् १९२९ म भारत सरकार न रायल श्रम कमीशन की नियुक्ति की जिसन अपना प्रतिवेदन सन् १९३१ म प्रस्तुत किया। इसके आधार पर श्रमिका के निवास काय दशाओ काय अवधि नौकरी की सुरक्षा तथा उनके हितकारी कार्यों के सम्बन्ध म केन्द्रीय तथा राज्य सरकारो न अनेक अधिनियम पास किए। तत्पश्चात सन् १९३७ म कांग्रेस मन्त्रिमण्डलो न श्रम हित की एक प्रगतिशील नीति को कार्यान्वित कर न्यूनतम भृत्ति नौकरी की सुरक्षा क्षतिपूर्ति इत्यादि की व्यवस्था की।

के लिये ही छोडते है । औद्योगिक केन्द्रो के अधिकांश श्रमिक असल मे ग्रामीण ही होते है, जिनकी प्रारम्भिक शिक्षा गावो मे ही होती है और ग्रामीण रीति रिवाजो में ही उनकी आस्था होती है । उनका अभीष्ट गाव लौटना ही होता है तथा एसा करन में वे प्राय सफल ही होते है ।

प्रवासी प्रवृत्ति के कारण—

श्रमिको के गाव से शहर आन के कारणो पर दृष्टिपात करन पर हम देखेंगे कि कृषि पर पडन वाली विपत्ति का पहला असर भूमिहीन खतिहर मजदूरो पर ही पडता है अन उन्हे गाव छोड कर कारखाना, नौका निर्माण स्थाना बगीचा तथा रेल सिचाई आदि सरकारी निर्माण काय वाले स्थानो म अधिक वेतन के लिए काम ढ ढन जाना पडता है। उन्नत आवागमन के साधन उनके इस प्रवास म सहायक होने है। उदाहरण के लिए उत्तर प्रदेश बिहार उडीसा आदि राज्यो तथा बम्बई के रत्नगिरि आदि कुछ जिलो म जन घनत्व तथा भूभार इतना अधिक है और अनार्थिक जोतें इतना भयानक रूप धारण कर चुकी है कि साधारण कृषक जीविकोपाजन के हेतु शहर मे जान को बाध्य हो जाते है । इस प्रवास काय म सयुक्त परिवार प्रणाली भी सहायक होती है । परिवार के कुछ सदस्य अपन घर तथा खेत से सम्बन्ध विच्छेद किए बिना ही उसे परिवार के अन्य व्यक्तियो की देख रेख म छोड कर गाव से चले जाते है । कभी कभी कृषक गाव के साहूकार से बचन या भूमि और पशु खरीदन के लिए पर्याप्त धन कमान के उद्देश्य स शहरो म नौकरी तलाश करते है । फिर कभी अपनी जीविका *और भावी जीवन को उत्तम बनान की आशा से निम्न श्रेणी के ग्रामीण श्रमिक* (जो कि दलित वग से सम्बन्ध रखने है) शहरो और कस्बो को चले जाते है। चूं कि उनके नगर जान का प्रधान कारण कष्ट है न कि महत्वाकाक्षा अत हम यह कह सकते है कि गावो से नगरो को प्रवास करन वाले सबस कम कुशल और अत्य त निरुपाय ग्रामीण होत है । श्रम कमीशन के शब्दो म—

'प्रवास की प्र रक शक्ति एक सिरे से आती है, अर्थात् गावो से । औद्योगिक श्रमिक नागरिक जीवन क आकपण से शहरो म नही जाता और न उसके प्रवास का कारण महत्वाकाक्षा ही होता है । शहर स्वय उसके लिए कोई आकपण की वस्तु नही है और अपना गाव छोडन के समय उसके मन म जीवन की आवश्यकताओ की प्राप्ति के अतिरिक्त और कोई भावना नही रहती । बहुत ही कम औद्योगिक श्रमिक शहर में रहना चाहेंगे, यदि उन्हे गाव म जीवनयापन के लिए पर्याप्त अन्न और वस्त्र *मिल जाय । वे नगर की ओर आकर्षित नही होत वरन् ढकेले जाते है ।'*

प्रवासी प्रवृत्ति के आर्थिक एवं सामाजिक परिणाम—

(१) प्रवासी प्रवृत्ति क परिणामस्वरूप कारखाना में काम करन वालो के

कितने ही वर्ग अपने को एकदम अपरिचित रीति रिवाजों और परम्पराओं के मध्य पाते हैं। यह भी हो सकता है कि वहाँ भाषा भी दूसरी हो।

(२) पुरानी प्रथाओं और मान्यताओं के बंधन ढीले पड जाते हैं, नवीन सम्बन्ध शीघ्रता से नहीं स्थापित हो पाते। फलतः जीवन अधिकाधिक वैयक्तिक हो जाता है।

(३) जलवायु के अत्यधिक परिवर्तन, दोषपूर्ण भोजन, स्थानाभाव के कारण अत्यधिक भीड़ भाड़, मनोरंजन का अभाव तथा पारिवारिक जीवन से विच्छेद होने के बाद पुनः मिलने की प्रत्याशा इन सबका संयुक्त प्रभाव श्रमिक के स्वास्थ्य पर बहुत बुरा पड़ता है।

(४) कुछ दुर्व्यसनों के कारण श्रमिक के नैतिक जीवन का और भी पतन होता है। शराब और जुआ इन दुर्व्यसनों के उदाहरण हैं, जो कि गाँवों में अपेक्षाकृत अज्ञात हैं।

(५) चूँकि श्रमिक के मन में गाँव लौटने की इच्छा सदैव बनी रहती है, अतः वह अपनी नागरिक वृत्ति में स्थायी रुचि उत्पन्न नहीं कर पाता। यही कारण है कि वह उच्च कोटि की प्राविधिक कुशलता नहीं प्राप्त कर पाता।

(६) उसके बार बार गाँव लौटने तथा अन्य कारणों से मालिक और श्रमिक के बीच सम्पर्क की घनिष्ठता नष्ट हो जाती है और उनमें प्रभावपूर्ण संगठन का भी अभाव हो जाता है।

(७) श्रमिक जब लम्बी अनुपस्थिति के बाद लौटता है तो यह निश्चित नहीं होता कि उसे काम मिलेगा ही। पुनः काम मिलने की कठिनाइयाँ उसे साहूकार, मजदूरों के ठेकेदार, शराब बेचने वाले आदि की दया पर आश्रित कर देती हैं।

क्या श्रमिकों का गाँवों से सम्पर्क उचित है ?—

जैसा कि हम पहले संकेत कर चुके हैं, श्रमिकों का अभीष्ट गाँव लौटना ही होता है। अधिकांश श्रमिक अपना परिवार गाँवों में ही रखते हैं। शहर में अपने पति के साथ आने वाली पत्नी भी प्रसव के समय प्रायः गाँव ही चली जाती है। शहर में रहते हुए उनका सम्बन्ध गाँव से इसलिए भी नहीं टूट पाता कि वहाँ उनका अपना परिवार किसी सम्बन्धी या अपने साहूकार को कुछ रकम भेजना ही होती है।

श्रम आयोग के मतानुसार श्रमिकों का गाँवों से सम्पर्क लाभहीन नहीं है। नगरों की अपेक्षा गाँवों के अधिक स्वास्थ्यप्रद वातावरण में पालित होने के कारण ग्रामीण श्रमिकों का स्वास्थ्य अधिक उत्तम होता है। समय-समय पर गाँव जाने से खोई हुई मानसिक और शारीरिक शक्ति फिर से लौट आती है। बीमारी और वृत्तिहीनता के अवसर पर गाँव का घर एक शरण स्थल का काम देता है। जिस प्रकार

गावा क आर्थिक भार को नगर प्रवास हल्का कर देता है उसी प्रकार गाँव नगरो की वृत्तिहीनता के प्रति एक प्रकार की सुरक्षा प्रदान करते हे। ग्रामीण और नागरिक जीवन का सयोग दोनो (नगरा और गावो) के लिए हितकर होता है। इससे ग्रामीण जीवन म बाहरी दुनिया का थोडा सा ज्ञान आ जाता है तथा पुरानी जजर प्रथाओ की शृ खला को ताडन में सहायता मिलती है। इसी प्रकार नागरिका को भारतीय जीवन की वास्त विकताओ का सूक्ष्म ज्ञान हा जाता है अत हमारा मत है कि इस समय गावा से सम्बन्ध की कडी को बनाये रखना लाभदायक है। हा यह ध्यान रखना चाहिए कि वह सुनियमित और स्वास्थ्यप्रद हो।

(२) एकता का अभाव—

भारतीय उद्योगा म श्रमजीवी प्राय बहुत दूर दूर से काम करन आते ह। एसे विरले ही औद्यागिक नगर हे जिन्हे निकटवर्ती क्षत्रो म ही समस्त श्रमिक प्राप्त हो जाते हा। परिणामस्वरूप, मजदूरो का वग एक एसा विचित्र समुदाय बन गया है जिसमें भिन्न भिन्न धर्मों के भिन्न भिन्न भाषा बालन वाले, भिन्न भिन्न रहन सहन एव रीति रिवाज के लोग होते ह। मजदूर वग में इन अनक भिन्नताओ के कारण सगठन नही है। सगठन तो दूर रहा पारस्परिक मेल जोल भी उनमें बहुत कम है।

(३) अनियमित उपस्थिति—

जसा हम ऊपर सकत कर चुके ह भारतीय श्रमिक कारखानो व निकटवर्ती गावा अथवा अय राज्या स काम करन के लिए नगरा में आते ह, अत अपन गावा के प्रति उनका आकषण बना रहता है। वे समय समय पर गाव जाते रहते हे। कृषि क्षेत्रो से आन वाले श्रमिक कृषि मौसम में अथवा फसल पर, जब गावा में अधिक काम होता है, अपना काम छोड कर चल जात है, इससे उनकी उपस्थिति कारखाना में अनियमित रहती है। निकटवर्ती गाँवों स आन वाले श्रमिक तो प्राय प्रति मास ही अपने गाव जाया करत हे जिससे कारखान के काम में बडी बाधा पडती है।

(४) अज्ञानता एव शिक्षा का अभाव—

भारत की सम्पूण जन सख्या में से केवल १७% व्यक्ति पढ लिख हे। इन पढ लिखे व्यक्तियो म से औद्योगिक श्रमिको का भाग तो नाममात्र को ही हागा। सामान्य शिक्षा का अभाव होन के कारण श्रमजीवी पूण उत्तरदायित्व के साथ अपन कत्तव्य का निष्पादन नही कर पाते। साथ ही, भारतीय श्रमजीविया म जब सामान्य शिक्षा का *अभाव है तो औद्योगिक शिक्षा का अभाव हो, यह कोई आश्चय की बात नही। यही* कारण है कि हमारे श्रमजीवी लापरवाही के साथ यन्त्र औजारा का उपयोग करते हे तथा अपन काम का महत्व नही समझते।

(५) भारतीय श्रमिको की पूर्ति उद्योगों को उनकी आवश्यकतानुसार नहीं मिलती—

भारतीय श्रमिकों में कुशल श्रमिकों की अपेक्षा अकुशल श्रमिकों का संख्या अधिक है । इसका एकमात्र कारण यही है कि हमारी अधिकांश जन संख्या कृषि उद्योग में लगी हुई है । सन् १९५१ की जन संख्या के अनुसार भारत की २५ करोड जन संख्या कृषि पर प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में निर्भर है तथा शेष जन संख्या सगठित उद्योग खान उद्योग यातायात व्यापार एवं वाणिज्य पर निर्भर है ।

(६) रहन सहन का निम्न स्तर –

भारतीय श्रम जीवियों का रहन सहन का स्तर अत्यन्त गिरा हुआ है । इसका प्रधान कारण यह है कि उनको पारिश्रमिक बहुत कम मिलता है । कोई भी व्यक्ति जब तक उसके पास अपनी समस्त आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के हेतु साधन न हो अपने रहन सहन का स्तर ऊचा नही कर सकता अत यह दोष श्रमिकों का नही वरन् उन परिस्थितियों एवं वातावरण का है जिनके अन्तर्गत वे पले है और अपना जीवन व्यतीत करते है ।

(७) श्रमिकों की अक्षमता—

भारतीय श्रमिकों की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि अन्य देशों की तुलना में हमारे श्रमिकों की कार्य क्षमता बहुत कम है । श्री एलेक्जेंडर मेकराबर्ट के अनुसार भारतीय श्रमिक की अपेक्षा एक अग्रेज श्रमिक ४ गुना काम करता है परन्तु भारतीय श्रमिक की अक्षमता का विचार करते हुए हम यह भी स्मरण रखना चाहिये कि श्रमिकों की कुशलता निम्न बातों पर निर्भर करता है—जलवायु, भर्ती पद्धति, काम करने की परिस्थिति, रहन सहन के स्तर तथा श्रम प्रबन्ध । इन घटकों के विवेचन से ही किसी देश के श्रमिकों की अक्षमता के विषय में समुचित निर्णय किया जा सकता है । काम करने की परिस्थिति, काम के घण्टे, यन्त्र सामग्री, औद्योगिक शिक्षा एवं श्रम प्रबन्ध आदि कुछ ऐसी बातें है जो श्रमिकों के ऊपर निर्भर न रहते हुए उद्योगपतियों और निर्माताओं के ऊपर निर्भर रहता है तथा जिनकी समुचित व्यवस्था का पूर्ण जिम्मेदारी उनके ही ऊपर होता है इसलिए यह कहना यथार्थ है कि किसी भी देश का औद्योगिक क्षमता की जिम्मेदारी उद्योगपतियों पर निर्भर होती है । इस दृष्टि से यदि इस कसौटी पर भारतीय श्रमिकों की तुलना अन्य देशों के श्रमिकों के साथ कार्यक्षमता में की जाय तो यह स्पष्ट है कि भारतीय श्रमिकों की काम करने की परिस्थिति तथा उनको दी जाने वाली सुविधाये अन्य देशों की तुलना में नही के बराबर है अतः श्रमिकों की अक्षमता उनका वैयक्तिक दोष न होने हुए उस परिस्थिति का दोष है जिसमें भारतीय श्रमिक रहता है एवं जिस परिस्थिति में उसे काम करना पडता है ।

(८) भाग्यवादिता—

भारतवासी (विशेषतः यहाँ का श्रमिक वर्ग) बड़े भाग्यवादी हैं। अपने जीवन के सुख-दुख को वे भाग्य की देन समझते हैं। "हुई है सोई जो राम रचि राखा" में उनका इतना विश्वास है कि वे अपनी उन्नति के लिए पुरुषार्थ करने का प्रयत्नशील भी नहीं होते। भाग्य में होगा तो मिल जायगा, ऐसा सोचकर वे हाथ पर हाथ रखकर बैठ जाते हैं।

भारतीय श्रमिकों की कुशलता

(Efficiency of Indian Industrial Labour)

क्या भारतीय श्रमिक वास्तव में अकुशल हैं ?—

भारतीय श्रमिकों की कुशलता उनकी लोकप्रिय विशेषता है। साधारणतः यही कहा जाता है कि भारतीय श्रमिक अदक्ष एवं अकुशल हैं। औद्योगिक कमीशन के सम्मुख सर अलेक्जेन्डर मैक रावर्ट (Sir Alaxander Mac Robert) ने अपनी साक्षी में यह कहा कि एक अंग्रेज श्रमिक भारतीय श्रमिक से चौगुना कुशल होता है। सर क्लीमेंट सिम्पसन (Sir Clement Simpson) के अनुसार लङ्काशायर की सूती मिल का एक श्रमिक भारतीय सूती कपड़े की मिल में काम करने वाले २·६७ श्रमिकों की योग्यता के बराबर है, किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय की ओर से की गई जाँच इस धारणा को गलत सिद्ध कर देती है। इस जाँच में यह प्रकट है कि योरोप की तुलना में हमारे श्रमिकों की अक्षमता निर्विवाद सत्य नहीं है। कुछ उद्योगों में तो वह अन्य देशों के श्रमिकों के बराबर कुशल है। अन्य उद्योगों में भी वह पूरी तरह अक्षम *नहीं कहा जा सकता। यदि योरोपीय श्रमिक भारतीय श्रमिकों की अपेक्षा अधिक* उत्पादन करते हैं तो वे अधिक शिक्षा प्राप्त भी होते हैं, उनको अधिक भृत्ति एवं अन्य सुविधायें भी मिलती हैं। दूसरे शब्दों में, भारतीय श्रमिक यदि अक्षम है तो अपने दोष के कारण नहीं, अपितु उन परिस्थितियों के कारण है जिनमें वह रह रहा है। अक्षमता के प्रमुख कारण इस प्रकार हैं :—

भारतीय श्रम की अक्षमता के कारण एवं उन्हें दूर करने के उपाय—

(१) **प्रवासी प्रवृत्ति**—इस प्रवृत्ति के कारण श्रमिक फसल के समय तथा *अन्य विशेष उत्सवों पर अपने गाँव आते-जाते रहते हैं, जिससे भारत में अभी तक* स्थायी श्रमिक वर्ग का उदय नहीं हो पाया है। इनकी इस प्रवृत्ति का यह परिणाम होता है कि वे प्रायः कारखानों से अनुपस्थित रहते हैं। इससे उत्पादन बड़ा अनिश्चित हो जाता है।

इस दोष को दूर करने एवं औद्योगिक केन्द्रों में श्रमिकों को स्थायी रूप से

रहने का प्रोत्साहन देने के लिए शहरी जीवन का सुधार कर उसे अधिक आकर्षक बनाना चाहिए।

(२) **शिक्षा सम्बन्धी सुविधाओं का अभाव**—सामान्य ज्ञान का स्तर हमारे श्रमिकों में बहुत नीचा है। माता पिता की अशिक्षा के कारण घर का वातावरण शिक्षाप्रद नहीं होता। इसके अतिरिक्त उपलब्ध शिक्षा प्रणाली बहुत संकुचित है। अभी प्रारम्भिक शिक्षा भी सब जगह निःशुल्क तथा अनिवार्य नहीं हुई है। शिक्षा न मिलने से कट्टर अन्धविश्वासी भाग्यवादी और साहसहीन हो गये हैं। इन सब बातों से श्रमिक की अकार्यकुशलता बढ़ती है। सामान्य शिक्षा के अतिरिक्त हमारे श्रमजीवियों के लिए शिल्पिक प्रशिक्षण का सुअवसर भी नहीं मिलता। अन्य प्रगतिशील राष्ट्रों में जहाँ श्रमिकों को पर्याप्त रूप से प्रशिक्षण दिया जाता है श्रमिक जटिल से जटिल मशीन का प्रयोग सरलता से कर सकते हैं किन्तु भारत में ऐसा नहीं है। हमारे श्रमिकों को मशीनों का उपयोग जानने तथा अन्य देशों में होने वाली श्रमिकों की गति विधियों को समझने में अधिक समय लगता है। उनकी इस अज्ञानता के कारण उत्पादन क्षमता गिर जाती है।

अन्य प्रगतिशील देशों की भाँति भारत में भी प्राथमिक शिक्षा तो कम से कम अनिवार्य होना चाहिए। इसके अतिरिक्त अधिक से अधिक शिक्षण संस्थायें खोलकर शिल्पिक प्रशिक्षण की सुविधायें सुगम एवं सुलभ करनी चाहिए। सामान्य शिक्षा से श्रमिकों का मानसिक विकास होगा और औद्योगिक शिक्षा से व्यावसायिक अज्ञानता दूर होकर कार्यक्षमता बढ़ेगी।

(३) **निर्धनता और निम्न जीवन स्तर**—भारतीय श्रमिक की दरिद्रता सर्वविदित है। दरिद्रता के कारण उसे भर पेट भोजन एवं पर्याप्त वस्त्र उपलब्ध नहीं होते। ऐसी परिस्थितियों में दूध फल आदि विपुलतावद्धक वस्तुओं की वह कल्पना भी कैसे कर सकता है? परिणामस्वरूप कार्यक्षमता गिर जाती है।

अस्तु श्रमिकों की निर्धनता को दूर करके उनका जीवन स्तर ऊँचा करने के उपाय सोचना चाहिए। कुटीर उद्योगों की प्रगति से यह समस्या काफी सीमा तक हल की जा सकती है।

(४) **अल्प वेतन**—इसका भी भारतीय श्रमिकों की कार्यक्षमता पर बुरा प्रभाव हुआ है। दरिद्रता के कारण वे भली प्रकार अपना पेट भी नहीं भर सकते। परिस्थितिवश उनकी आय का काफी भाग ऋण चुकाने एवं नशा करने में निकल जाता है और जो शेष रहता है वह उनकी आवश्यकताओं के लिए पर्याप्त नहीं होता। अपना स्वास्थ्य बनाना तो दूर रहा पेट भरने को पर्याप्त रोटी भी उन्हें नहीं मिल पाती। इस प्रकार कार्यक्षमता दिनों दिन कम होती जाती है।

इस दोष को दूर करन के लिये श्रमिको को कम से कम इतनी मजदूरी अवश्य दी जाय जिससे कि वे अपना तथा अपन परिवार का उचित भरण पोषण कर सक।

(५) शारीरिक दुबलता—निधनता एव अल्प वेतन के कारण श्रमिको का मानसिक एव शारीरिक स्वास्थ्य खराब रहता है। अधिक समय तक वे निरतर कठिन परिश्रम करन के लिए अपन को असमथ पाते हे। एक बार रोगी होन पर वे अच्छी तरह अपना इलाज भी नही करा सकत। भारत के अनक क्षेत्रो म मलेरिया आदि रोगो से अधिकाश श्रमिक पीडित रहत ह। इसस उनकी कायक्षमता गिरती है और उत्पादन को भी क्षति पहुँचती है सन् १९५१ म बम्बई के एक कारखान म हिसाब लगा कर देखा गया था कि वहा २५ १% श्रमिको को जुकाम तथा फफड सम्बधी राग २६ ०% श्रमिकों को दस्त पेचिस व हैजा आदि ५ ३% को गठिया या बात सम्बधी रोग ० ८% को मलरिया ७ ८% को चोट (काम करत समय नही) ० % को छून के तथा ३४ २% श्रमिका को विविध प्रकार क रोग हुए। निम्नलिखित तालिका म हम कारखान म म प्रकार हुई समय की क्षति का अनुमान लगा सकत हे। यही स्थिति प्राय भारत के सभी कारखान और उद्योगा म है* —

रोग	प्रत्येक रोग के कारण समय क विनाश का प्रतिशत	प्र यक राग के कारण अनुपातिक दिनो का क्षति
(१) फफडा सम्बधी रोग	४० १	६ २
(२) पाचन सम्बधी रोग	२६ ९	६ ०
(३) मलेरिया	५ ४	७ ८
(४) मूत्र सम्बधी राग	० २	६ ०
(५) छूत क रोग	१ १	११ ७
(६) चोट (काम पर नहा)	२ ७	६ ४
(७) विविध	२३ ४	७ ४

इसके अतिरिक्त गाव के स्वतत्र और स्वच्छ वातावरण से आकर नगरो की गन्दी व सकीर्ण गलिया म रहन नगरा की विचित्र परिस्थितियो म विभिन्न प्रकार की नतिक बुराइया का आखेट हान मदिरा जुआ और भ्रष्टाचार म फस जान तथा अन्य तत्सम्बधी विषमताओ के परिणामस्वरूप श्रकिको की क्रियात्मक शक्तिया का पतन हो जाता है। शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य के इस प्रकार नष्ट हो जान से उनकी काय क्षमता पर बडा घातक प्रभाव पडता है।

* देखिये इण्डियन लेबर ईयर बुक (१९५१ ५२) पृष्ठ २५४।

इस दोष को दूर करने के लिए श्रमिक के लिए चिकित्सा सम्बन्धी सुविधाओं का प्रबन्ध करना चाहिए और मनोरंजन के स्वस्थ साधन उपलब्ध कर उनका मद्य-पान एवं जुए का व्यसन छुड़ाना चाहिये।

(६) **जलवायु**—इसका भी कार्यक्षमता पर निर्णयात्मक प्रभाव पड़ता है। परिश्रम के कार्य के लिए शीतोष्ण जलवायु उपयुक्त होती है, लेकिन हमारे देश की जलवायु गर्म प्रदेश की है। गर्मी के मौसम में तिलमिलाती धूप में देर तक कड़ा परिश्रम करना सम्भव नहीं होता। बङ्गाल तथा तराई प्रदेशों की जलवायु तो बड़ी खराब है।

बिजली के पङ्खों एवं नमीकरण यन्त्रों (Humidfiers) आदि कृत्रिम साधनों की सहायता से यह कठिनाई भी कुछ सीमा तक दूर की जा सकती है।

(७) **स्वतन्त्रता और आशा का अभाव**—इसका भी श्रमिकों की कार्यक्षमता पर विशेष प्रभाव पड़ता है। कड़े निरीक्षण और आशा के अभाव में श्रमिक की कार्यक्षमता में कमी होना स्वाभाविक है।

इस दोष के निवारण के लिये प्रेरणात्मक भृत्ति पद्धति (Progressive Wage System) का अनुकरण करना चाहिये।

(८) **ऋणग्रस्तता**—अर्थ-शास्त्री डार्लिंग के अनुसार भारतीय श्रमिक ऋण में ही जन्मता है, ऋण में ही उसका पालन पोषण होता है और ऋण में ही उसकी मृत्यु हो जाती है। ऋण प्रगति में बाधक होते हैं।

अस्तु, श्रमिकों को शीघ्र से शीघ्र ऋण मुक्त किया जाय और सहकारी आन्दोलन द्वारा उन्हें मितव्ययता का पाठ पढ़ाया जाय।

(९) **काम के दीर्घ घन्टे**—यद्यपि कारखाना अधिनियम द्वारा काम के घण्टों का अधिकतम निश्चय कर दिया गया है, किन्तु भारत की गर्म जलवायु को देखते हुए वे अब भी अधिक हैं। वर्तमान समय में सदा चलने वाले कारखानों में ४८ घण्टों का सप्ताह और मौसमी कारखानों में ५४ घण्टों का एक सप्ताह होता है, लेकिन यह अधिनियम अनेक छोटे कारखानों में लागू नहीं होता। असंगठित उद्योगों, कुटीर उद्योगों तथा कृषि में श्रमिकों के काम करने के घन्टे दीर्घ, अनियमित तथा मालिक की इच्छा पर निर्भर करते हैं। ऐसी परिस्थिति में भारतीय श्रमिकों की कार्यक्षमता कम होना स्वाभाविक है।

अतः उचित सन्नियम द्वारा इस दोष का निवारण किया जाय।

(१०) **काम करने की दशाएँ**—भारतीय कारखानों की दशायें, जहाँ हमारे श्रमजीवी कार्य करते हैं, सन्तोषजनक नहीं हैं।

कार्य कुशलता को स्थिर रखने के लिये स्वच्छ जल, वायु, विश्राम आदि की पूर्ण व्यवस्था होना आवश्यक है।

(११) भरती की दोषपूर्ण पद्धति—इसके कारण भी श्रमिको की कार्यक्षमता गिरी हुई है। श्रमिको की भरती जाबर करते है जो प्रत्येक भरती होन वाले से दस्तूरी लेते है। श्रमिको की नियुक्ति, उन्नति एव एक विभाग से दूसरे विभाग को स्थाना तर सब कुछ इस जाबर पर ही निभर है अत श्रमजीवियो को नाना प्रकार से उनकी सेवा शुश्रूषा करते रहना पडता है। जाबरा की आय नई नियुक्तियो पर ही निभर होती है अत व तरह तरह के बहान बना कर पुराना को निकालते और नयो को भरती करते रहते है। इसका दुष्परिणाम यह होता है कि श्रमिक की कायक्षमता कम हो जाती है और उद्योग का उत्पादन व्यय बढ जाता है।

इस दोष का दूर करन के लिए जाबर पद्धति का अन्त करके श्रमिको की भर्ती वैज्ञानिक आधार पर करनी चाहिये।

(१२) दोषपूर्ण प्रबन्ध—बहुत सीमा तक यह भी श्रमिको की अक्षमता के लिये उत्तरदायी है। प्रबन्धको का दुर्व्यवहार काम का दोषपूर्ण विभाजन घिसी हुई यत्र सामग्री आदि एसे दोष है जिनसे काय म जी नही लगता।

अस्तु भारतीय श्रमिका का काय कुशलता बढान के लिए उत्तम मशीनो और कच्चे माल का प्रयोग आवश्यक है। साथ ही यह भी आवश्यक है कि कुशल प्रबन्ध के निरीक्षण म उनसे काय लिया जाय।

भारतीय औद्योगिक श्रमिको की गृह-समस्या

भोजन और वस्त्र क उपरा त मकान मनुष्य की तृतीय प्रमुख आवश्यकता है। या तो हमारी य तीनो ही समस्याय गम्भीर है किन्तु मकानो की समस्या मुख्यत औद्योगिक नगरा म बडा विकराल रूप धारण करती जा रही है। नगरो की बढती हुई जन सख्या तथा गृह निर्माण की मन्द गति इसके लिए विशेष रूप से उत्तरदायी है। प्रत्येक बड औद्योगिक नगर म एक इच भी भूमि कही खाली नही और आबादी बहुत घनी है। नगर निवासियो म कारखानो म काम करन वाला श्रमिक वग सबसे बुरे मकाना म रहता है। अनक नगरा म तो उनक निवास स्थाना को मकान की सज्ञा देना ही लज्जा की बात है। उन्हे मानव के योग्य नही कहा जा सकता। कानपुर में भारत के प्रधान मन्त्री पडित जवाहरलाल नहरू न २ अक्टूबर सन् १९५२ को श्रमिको के निवास स्थान का निरीक्षण करते हुए उन्हे नरक कुण्ड कह डाला। पडित नहरू न कहा कि भारतीय श्रमिका की निवास समस्या बहुत ही जटिल है और उनके रहन क स्थान गन्दी कुचैली गली (Slums) से अच्छे नहीं कहे जा सकते। अन्य औद्योगिक केन्द्रो म भी उनका गदी बस्तिया होता है जहा सफाई का नाम नही कोठरी में सूर्य का प्रकाश नही पहुँचता, फश म नमी रहती है रोशनदान का पता नही तथा स्वच्छ

वायु आ ही नहीं सकती। अधिकांश श्रमिक ऐसे गन्दे वातावरण में जीवन व्यतीत करते हैं। ऐसे मकानों में रहने वाले श्रमिकों से कार्यक्षमता की कैसे आशा की जा सकती है? ऐसे स्थानों को बम्बई में (Chawl), मद्रास में चेरी (Cherry), कलकत्ता में बस्ती (Basti) तथा कानपुर में अहाता (Ahatas) कहते हैं। अब हम श्रम जांच समिति की रिपोर्ट के आधार पर भारत के प्रमुख औद्योगिक नगरों की औद्योगिक बस्तियों का संक्षिप्त परिचय देंगे।

बम्बई में श्रमिकों की चालें (Chawls) अत्यन्त ही अस्वास्थ्यकर हैं, जहाँ एक ही कमरे में ६-७ श्रमजीवी रहते हैं। उन्हें न तो कौटुम्बिक वातावरण ही मिलता है और न स्वच्छ वायु तथा प्रकाश ही। श्री हर्स्ट (Hurst) ने इस प्रकार मजदूरों के बसाने को गोदाम में माल भरने के समान बताया है। बम्बई में ७०% से अधिक श्रमिक एक कमरे वाले मकान में रहते हैं, जबकि लन्दन के केवल ६% श्रमिक १ कमरे वाले मकान में निवास करते हैं। बम्बई के श्रमिकों में मकानों को पुनः किराये पर देने की प्रथा है, जिससे घनी आबादी की समस्या और भी बढ़ जाती है। किराये में बचत करने के विचार से ४ या ६ श्रमिक एक कोठरी किराये पर ले लेते हैं। उसी के अन्दर चारों कोनों में खाना पकाया जाता है। श्री शिवाराव ने लिखा है कि जब बम्बई में मजदूरों की बस्ती में एक लेडी डाक्टर मराज देखने गई तो उसने देखा कि एक कमरे में ४ गृहस्थियाँ रहती थीं जिनके सदस्यों की संख्या २४ थी। चारों कोनों में चूल्हे बने हुए थे सारा कमरा धुयें से काला हो रहा था। बम्बई के औद्योगिक श्रम जीवियों के रहने की दशा के सम्बन्ध में श्रीयुत हर्स्ट का निम्न वर्णन बड़ा हृदय स्पर्शी है—"रहने की दशायें यहाँ सबसे खराब हैं। एक सकरी गली में, जिसमें कि दो व्यक्ति एक साथ नहीं जा सकते, (लेखक को) घुसने के पश्चात् इतना अन्धेरा था कि हाथ से टटोलने पर कमरे का दरवाजा मिला। उस कमरे में सूर्य का लेशमात्र भी प्रकाश न था। ऐसी दशा दिन के १२ बजे थी। एक दियासलाई जलाने के पश्चात् ज्ञात हुआ कि एक कमरे में भी अनेक श्रमिक रहते हैं। श्रम के शाही कमीशन ने तो बम्बई की चालों के सम्बन्ध में यहां तक लिखा है कि इनको पूर्णतया तोड़ने के अतिरिक्त इनमें सुधार के लिए लेशमात्र भी गुंजायश नहीं है।

अहमदाबाद के श्रम निवास स्थान भी अधिक सन्तोषजनक नहीं कहे जा सकते। यहाँ की नगरपालिका ने हरिजनों तथा अन्य श्रमिकों के लिए कुछ मकानों का निर्माण किया है। इसके अतिरिक्त अहमदाबाद मिल्स हाउसिंग कम्पनी एवं सूती वस्त्र मिल श्रम-संघ की ओर से भी अच्छी व्यवस्था की गई है। श्रम संघ द्वारा निर्मित कालोनी में रहने वाले श्रमजीवियों से १०) मासिक किराया लिया जाता है और २० वर्ष के उपरान्त जिस मकान में वे रहते हैं वह उनका हो जाता है। प्रत्येक मकान में दो कमरे,

एक रसाईघर तथा एक बरामदा है। अहमदाबाद में श्रमिका की गृहनिर्माण सहकारी समितियाँ भी ह।

कलकत्त की दशा भी बम्बई से अच्छी नही है। यहाँ बम्बई की अपेक्षा कम दाम पर भूमि मिल जाती है। यहाँ मजदूरो के घर झोपडियो की कतारें है, जिन्हें 'बस्ती' कहा जाता है। ये झोपडे मिल मालिको द्वारा नही बनाए गए ह वरन् सरदार (Sirdar) एव कुछ मकान मालिको ने बनवाए है। कलकत्ता नगर निगम की रिपाट म यह स्पष्ट है कि इन झोपडिया का निर्माण बिना किसी योजना के हुआ है। प्राय सभी निवास स्थान कच्चे है और श्री केसे (Casey) के शब्दा म "कोई भी मानव वहा रहना पसन्द न करेगा।' चारा ओर गन्दगी का साम्राज्य है। मलेरिया और तपेदिक का कोप जारी रहता है। घरो म न नल ह न सण्डास। पूरे मुहल्ले क लिए एक या दो नल तथा एक सण्डास हागा, जिस पर बिचारे श्रमजीवी लाइन लगाकर खडे रहत है। छोटी छोटी बाता पर जैसे—पानी के लिए, नित्य झगडे फसाद होते रहत है। सडकें और गलिया खराब, गन्दी, पतली तथा प्रकाशहीन है, जिन पर रात्रि में चलना खतरनाक है। गत कुछ वर्षो में सर्वश्री बिडला जी के सदप्रयत्नो के परिणामस्वरूप जूट मिल कर्मचारिया के लिये अच्छे घरो की व्यवस्था की गई है, जिनम लगभग ५०% जूट मिल श्रमिक रहते है किन्तु शेष बस्तियो में ही निवास करत ह, जिनकी दशा अत्यन्त दयनीय है।

कानपुर उत्तरी भारत का 'मैनचेस्टर' कहलाता है अतएव यहा श्रमिको के निवास के लिए समुचित व्यवस्था हाना नितान्त आवश्यक है। यद्यपि कानपुर में नगर पालिका, इम्प्रूवमेन्ट ट्रस्ट एव कुछ सेवायोजको ने श्रमिको के निवास क लिए आदर्श व्यवस्था की है, किन्तु फिर भी आज यहाँ 'अहाते' तथा 'बस्तिया' दृष्टिगोचर होती है, जिनकी दशा अत्यन्त शोचनीय है। उत्तर प्रदेश की सरकार न प्रत्यक्ष रूप स गृह समस्या के निवारणार्थ यहाँ कुछ भी नहीं किया है। हा, सन् १९४३ ४४ में राज्य सरकार ने २,४०० परिवारा क लिए क्वाटर बनवान के हेतु इम्प्रूवमेन्ट ट्रस्ट को ३०३ लाख रुपये का ऋण दिया। तब से प्रति वर्ष यह सस्था कुछ न कुछ मकान बनवाती रही है, जिनका किराया ४) प्रति माह है। सन् १९३८ की कानपुर श्रम जाच समिति की रिपोर्ट से पता चलता है कि यहा सेवायोजको की ओर स केवल ३,००० मकान बनाए गए, जिनमें १०,००० श्रमिक रहत है। सन् १९३८ स सन् १९४३ तक स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नही हुआ है। सन् १९४३ म यहा श्रमिको की सख्या १,०३ ००० थी। इसमें से कवल १०% श्रमजीविया क रहन लिय क सेवायोजका न व्यवस्था की। यहा के सेवायोजका म म ब्रिटिश इण्डिया कॉरपोरेशन का नाम विशेष उल्लेखनीय है जिसन मैक राबर्टगन्ज तथा अलेनगन्ज म १,६६० श्रम क्वार्टर्स बनवाए। इन क्वार्टरा में जल, प्रकाश, स्वच्छ वायु आदि की तो सुव्यवस्था है हा, इसके अतिरिक्त प्रत्येक

कॉलोनी के लिये एक शिक्षण सस्था एव डिस्पेन्सरी भी है। सर्व श्री वॅग सूदरलॅण्ड एण्ड कम्पनी लि० के प्रबन्ध के अन्तर्गत एलगिन मिल्स ने भी अपने श्रमजीवियो के लिये सुन्दर मकानो का निर्माण करवाया है। एलगिन मिल्स के क्वाटरो म अन्य सुविधाओ के साथ साथ बिजली की रोशनी का भी प्रबन्ध है। इसी प्रकार सर्वश्री जुग्गीमल-कमलापति की ओर से भी उनके श्रमिको के निवास के लिए एक पृथक कॉलोनी का निर्माण किया गया है, जिसम प्राय सभी सुविधाये उपलब्ध हे। कानपुर की नगर पालिका ने भी निम्न कोटि के श्रमिको के लिये (जैसे भगी एव पार्क तथा सावजनिक उद्यानो मे काम करने वाले कर्मचारी) निवास की अच्छी व्यवस्था की है।

इतना होते हुए भी कानपुर की श्रम बस्तियो एव अहातो मे सहस्त्रो श्रमिक रहते ह। श्रम के शाही कमीशन न अहातो का वर्णन इस प्रकार किया है—"प्राय: प्रत्येक मकान एक एक कमरे का है, जिनकी लम्बाई-चौडाई ८ फीट × १० फीट है। किसी भी कमरे के आगे बरामदा नही है और प्रत्येक कमरे में ३-४ परिवार रहते है। फर्श कच्चा है तथा नमी रहती है। कही भी स्वच्छ वायु, प्रकाश आदि का प्रबन्ध नही है।" पण्डित नेहरू ने तो इन अहातो को 'नरक कुण्ड' की सज्ञा दी है।

टाटानगर यहाँ सर्वश्री टाटा की ओर से लोहे एव स्पात उद्योगो में काम करने वाले श्रम जीवियो के लिये लगभग ८,५०० मकान बनवाये गये हे। प्रत्येक मकान में दो कमरे, एक रसोईघर तथा एक बरामदा है। इसके अतिरिक्त स्नानागार एव फ्लस-सन्डास भी हे। सभी मकान पक्के हैं तथा कुछ में बिजली के पखे भी हैं। यह सब व्यवस्था दक्ष कारीगरो के लिये है, अकुशल श्रमजीवियो के निवास स्थान बडे गन्दे एव असन्तोषजनक हैं।

मद्रास में भी श्रमिको के निवास स्थान बडे असन्तोषजनक हे। कुछ मिल मालिको ने श्रमिको के लिये क्वार्टर बनवाये हैं, परन्तु उनमें अनेक श्रमिक रहना पसन्द नहीं करते, क्योकि उनके विरुद्ध खुफिया जाँच होती रहती है और यदि वे कभी हडताल में भाग लेंगे तो वे क्वाटर से निकाल दिये जायेगे। ऐसे वातावरण में वे रहना पसन्द नही करते।

शोलापुर में श्रमिको की गृह व्यवस्था सन्तोषजनक है। इसी प्रकार मदुरा में भी श्रमिको के लिये सुन्दर मकान बने हैं, जिनमे प्राय. सभी वर्तमान सुविधायें उपलब्ध हे। नागपुर की एम्प्रेस मिल तथा बगलौर की सूती, ऊनी तथा रेशमी वस्त्र मिल के श्रमजीवियो के लिए बडी सुन्दर गृह व्यवस्था है। रानीगज तथा भरिया की कोयले की खानो मे काम करने वाले श्रमिको के लिए जो मकान बनवाये गये हे वे Mines Board of Health के आदेशानुसार बनवाये गये हे, अत. सन्तोषजनक कहे जा सकते ह। आसाम के चाय के बगीचो म काम करने वाले श्रमिको की गृह दशा अत्यन्त शोचनीय है। वहा कही भी स्वच्छता नहीं तथा मलेरिया का बडा बोलबाला है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि किंचित क्षेत्रों को छोड़कर शेष सभी नगरो मे औद्योगिक श्रमिकों की गृह समस्या अत्यन्त जटिल है। श्रमिकों के निवास स्थानो को देखकर कभी कभी मसानी (Masani) के शब्द स्मरण हो आते है—"विश्व की रचना ईश्वर ने की है, नगरो को मानव ने और श्रम बस्तियों को शैतान ने।"

बुरी गृह व्यवस्था के दुष्परिणाम—

अच्छे घरों का अर्थ है गृह जीवन की सम्भावना, सुख और स्वास्थ्य तथा बुरे घरो का अर्थ है, गन्दगी, शराबखोरी, बीमारी, आचारहीनता, व्यभिचार और अपराध। इनके लिए अस्पताल, जेल और पागलखानो की आवश्यकता होती है, जहाँ समाज के भ्रष्ट एवं पतित लोगो को छिपाया जाता है, जो स्वयं समाज की लापरवाही के ही परिणाम हैं। अनुपयुक्त एवं सुविधाहीन घरो के कारण श्रमिको का घरेलू जीवन नीरस एवं आनन्दरहित हो जाता है। गन्दगी के कारण मलेरिया और तपेदिक जैसी भयानक बीमारियो का जोर रहता है, श्रमिकों का स्वास्थ्य बिगड जाता है, उनके मस्तिष्क संकुचित हो जाते हैं तथा मानसिक विकास का कोई अवसर नही रहता। अपूर्ण और गन्द मकान औद्योगिक अशान्ति के भी कारण हैं। एक सबसे बड़ी बुराई अधिक संख्या मे शिशु मृत्यु है, जो बम्बई की गन्दी बस्तियो में पाई जाती है। मृत्यु संख्या निवास के कमरों के विपरीत अनुपात में है। उदाहरण के लिए सन् १९३६ में एक कमरे वाले निवास-स्थानों में मृत्यु संख्या ७८·३% थी। सबसे गन्द स्थानों में मृत्यु दर २९८ प्रति हजार थी, जबकि साधारण दर २०० से २५० प्रति हजार ही थी। अन्त में चॉल के जीवन की भयङ्कर दशायें तथा गोपनीयता के अभाव के कारण लोग अपने कुटुम्ब को नहीं ला पाते, जिससे श्रम की स्थिरता तथा कार्यक्षमता पर कुप्रभाव पड़ता है। एकाकी जीवन व्यतीत होने के कारण उनमें वेश्यागमन जैसी बुरी आदतें पैदा हो जाती है। जो श्रमिक परिवार सहित रहते है वे भी एक कमरे ही के कारण गोपनीयता नहीं रख सकते। एक ही कमरे में पुरुष-स्त्री के साथ रहने के कारण संयम से जीवन व्यतीत नहीं हो पाता। ऐसी परिस्थितियो में महिला श्रमिकों के नैतिक पतन की बड़ी आशंका रहती है। डा० राधाकमल मुकर्जी के शब्दों में, "भारतीय औद्योगिक केन्द्रों की श्रम बस्तियों की दशा इतनी भयंकर है कि वहाँ मानवता का विध्वंस होता है, महिलाओं के सतीत्व का नाश होता है एवं देश के भावी आधार-स्तम्भ—शिशुओं का गला घुट जाता है।" अन. श्रम जाँच समिति ने सिफारिश की है कि शिक्षा और औषधि सम्बन्धी सहायता की भाँति सरकार को औद्योगिक आवास का भी उत्तरदायित्व सभालना चाहिये।

गृह समस्या को हल करने के लिए किए गए प्रयत्न—

यद्यपि भारत में 'घर' सम्बन्धी सुविधायें न्यून हैं और इस सम्बन्ध में दशा बड़ी सोचनीय है, किन्तु ऐसी भी संस्थायें तथा सेवायोजक है, जिन्होने बड़ी सुन्दर व्य-

बम्बाय का है। बम्बई में गृह समस्या के निवारणार्थ सुधार प्रयास (Improvement Trust) की स्थापना हुई। इसका काम नई गलियों का निर्माण घने क्षेत्रों का विस्तार समुद्र में भूमि को निकालना जिससे प्रसार कार्य में सुविधा हो तथा गरीबों के लिये स्वच्छ मकान का निर्माण करना था किन्तु ट्रस्ट की सीमित शक्ति नगर निगम से सहयोग की कमी तथा भूमिपतियों के विरोध के कारण इसे कुछ विशेष सफलता नहीं मिली। फिर भी ट्रस्ट ने कुछ सीमा तक प्रशंसनीय कार्य किया। सन् १९२० तक नगरपालिका ने भी अपने कर्मचारियों के लिए ४,९०० मकान बनवाये तथा २,२०० के लिए स्वीकृति दी। पोर्ट ट्रस्ट ने ५,००० व्यक्तियों के लिए मकान बनवाये। इधर नगर की जनसंख्या बड़ी तेजी से बढ़ रही थी किन्तु सेवायोजकों ने अपने श्रमजीवियों के रहने के लिए कोई प्रयास नहीं किया। सन् १९१४-१८ के युद्ध के उपरान्त बम्बई सरकार द्वारा इस समस्या को सुलझाने के लिए सुविस्तृत योजना तैयार की गई। इसके लिए ६ करोड़ रुपये के विकास ऋण तथा बम्बई आने वाली सभी कपास पर १) प्रति गांठ की दर से नगर कर लगाकर आवश्यक धन एकत्रित किया गया किन्तु इस प्रकार निर्मित चाल (मुख्यतः वोरली की चाल) दस वर्ष तक खाली पड़ा रहा। इनमें रहने के लिये श्रमिकों के आकर्षित न होने के निम्न कारण थे —वहाँ तक पहुँचने की कठिनाई बाजार सम्बन्धी सुविधाओं का अभाव उनका सीमेन्ट से बना होना—जिसके कारण वे गर्मी में अधिक गर्म तथा जाड़े में अत्यन्त सर्द रहता है किराये का ऊँची दर तथा प्रकाश सम्बन्धी व्यवस्था और पुलिस सुरक्षा का अभाव। इन दोषों को दूर करने के लिए कुछ प्रयास किये गये हैं। नगर निगम तथा पोर्ट ट्रस्ट भी अपनी विकास योजनाएं कार्यान्वित करने में प्रयत्नशील हैं। मई सन् १९४७ में बम्बई सरकार ने वोरली पर भवन निर्माण योजना प्रारम्भ की जिसमें काम करने वाले एक व्यक्ति तथा परिवार दोनों के रहने के लिए मकान बनवाये गये हैं। अब बम्बई में एक कमरे वाले मकान न रहेंगे।

जहाँ तक मिल मालिकों का प्रश्न है, कुछ मिलों ने जैसे—जैकब सासून मिल ने अपने श्रमजीवियों के लिये मकान देने की व्यवस्था की है। उचित दर पर कारखाना के समीप स्थान मिलने की कठिनाई इस बात की सुरक्षा का अभाव कि मकान मिलने पर श्रमिक मकान देने वाली मिल में ही काम करेंगे तथा स्वयं कर्मचारियों का उन मकानों में रहने की अनिच्छा—इन सब कारणों से काम के प्रसार में काफी शिथिलता आ गई है। कर्मचारी डरते हैं कि उनकी स्वतन्त्रता में बाधा पड़ेगी तथा हड़ताल के समय वे निकाल दिये जायेंगे। वे स्वच्छता और अनुशासन के नियमों को भी पसन्द नहीं करते क्योंकि वे उनका महत्व ही नहीं समझते। कानपुर नागपुर ग्वालियर अहमदाबाद मद्रास आदि नगरों में मिल मालिकों ने श्रमजीवियों के हितों पर अधिक ध्यान दिया है। इस सम्बन्ध में एम्प्रेस मिल्स नागपुर जावाजीराव काटन मिल्स

१,०३ ६६० मकानों के लिए स्वीकृति दी गई। अगस्त सन् १६५८ के अन्त तक लगभग ७७,००० मकान बनाए जा चुके थे

सन् १६५४ मे कम आय वालों के लिए सरकारी आर्थिक व्यवस्था की गई। इस व्यवस्था के अन्तर्गत लोगो को एक लम्बी अवधि के लिए बहुत कम व्याज पर ऋण देन का प्रब ध किया गया । प्रथम योजनावधि में सावजनिक और निजी क्षेत्र मे गृह निर्माण की दिशा में जो प्रगति हुई, उसका सक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

विवरण	मकानों की सख्या
(I) सार्वजनिक क्षेत्र मे	
(i) औद्योगिक आवास ·······	७७,०००
(ii) कम आय वालो के लिए आवास	४०,०००
(iii) पुनर्वास आवास····	३,२३,०००
(iv) केन्द्रीय व राज्य सरकारो द्वारा आवास	३,००,०००
(II) निजी क्षेत्र मे···	७,४०,०००
	७,५०,०००
कुल योग	१४,६०,०००

श्रमिकों के हेतु निर्मित प्रत्येक मकान में १२′ × १०′ का एक रहने का कमरा एक बरामदा, ७२ वर्ग फीट का एक रसोईघर, १६ वर्ग फीट का एक स्नानगृह तथा १२ वर्ग फीट का एक फ्लश शौचालय है। गृहस्थी का सामान रखने के लिए अलमारियों व टांडों की भी अच्छी व्यवस्था है। दो कमरे वाले मकानो मे पहला कमरा १२० वर्ग फीट का, दूसरा कमरा ६६ वर्ग फीट का, रसोईघर तथा बरामदा १०० वर्ग फीट का, स्नानगृह १६ वर्ग फीट का, शौचालय १२ वर्ग फीट का तथा १० वर्ग फीट का एक भण्डारगृह है।

द्वितीय पञ्च-वर्षीय योजना में गृह समस्या का एक महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है और उसमें १२० करोड रुपये की स्थाई व्यवस्था की गई है। ऐसा अनुमान है कि सन् १६६१ तक नागरिक क्षेत्रों में लगभग ५३ लाख मकानो की कमी होगी। ग्रामीण क्षेत्रों में लगभग ५४० लाख मकानों की मरम्मत व पुनर्निर्माण की आवश्यकता है। दूसरी योजना मे १२ लाख मकान सार्वजनिक अधिकारियों द्वारा और १० लाख मकान प्राइवेट व्यक्तियों द्वारा बनाये जाने की आशा है। इसके अतिरिक्त कम आय वाले और मध्यम वर्ग के लोगों के लिए आवास, बागान और खानों तथा दरिद्र बस्तियों

को हटाने और भागियों के लिये आवास पर भी विचार करके निश्चित कार्यक्रम बनाये गये हैं।

बागान मजदूर आवास योजना—सन् १९५१ के बागान मजदूर अधिनियम के अनुसार प्रत्येक बागान मालिक के लिए यह अनिवार्य कर दिया गया है कि वह अपने सभी मजदूरों के लिये आवास की व्यवस्था करे। द्वितीय योजना में ११००० मकानों के निर्माण के लिये २ करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई है। सन् १९५६-५७ में बागान मालिकों को देने के लिये केरल सरकार ने १.५० लाख रुपये लिये और इसी कार्य के लिये मद्रास सरकार भी ८३,५०० रुपये ले चुकी है।

श्रम बस्तियों में मकानों के निर्माणार्थ योजना टोली सन् १९५८ के सुझाव—

गन्दी बस्तियों में सुधार कर मकान बनाने के विषय में राष्ट्रीय विकास परिषद की योजना समिति ने जो योजना टोली बनाई थी उसके सुझाव निम्न हैं—

(१) गन्दी बस्तियों की सफाई के लिये सबसे अच्छा तरीका यही है कि इस काम के लिए कानून द्वारा निगम मंडल बनाये जायें जो स्वायत्त हों और जिनके ऊपर कार्यक्रमों को चलाने का उत्तरदायित्व हो। वे अपने क्षेत्र में योजनाओं के लिए नीति निर्धारित करें।

(२) आयोजन में मकान बनाने के लिये जो राशि रखी गई है वह केन्द्रीय मकान निगम को दे दी जाय जिससे वह उसे राज्यों के मकान निगमों को बाँट सकें। केन्द्रीय निगम, राष्ट्रीय भवन निर्माण संगठन और केन्द्रीय भवन निर्माण अनुसंधान शाला के साथ भी निकट सम्पर्क रखे।

(३) गन्दी बस्तियों की बाढ़ को रोकने के लिये गाँव से नगरों की ओर जाने की प्रवृत्ति को रोका जाय तथा केन्द्रीय सरकार नगर में नये उद्योग खोलने या किसी उद्योग को बढ़ाने की अनुमति तभी दे जब स्थानीय संस्थायें भी इसे स्वीकार कर लें।

(४) जहाँ आबादी बहुत घनी है वहाँ अधिक रोजगार न दिये जायें। प्रत्येक नगर में गन्दी बस्तियों की सफाई के लिए वृहत योजना बनाई जाय।

(५) मकानों के लिए न्यूनतम स्तर स्थापित किया जाय और गन्दी बस्तियों में सभी मकानों की जाँच की जाय।

(६) मकानों के निर्माण का व्यय कम होना चाहिए।

यद्यपि गृह समस्या पर अब उचित ध्यान दिया जा रहा है तथापि जो कुछ हो रहा है उससे समस्या कम भले ही हो जाय किन्तु पूर्णतः नहीं सुलझ सकता। ग्रामीण आवास और मध्यम आय वाले लोगों के लिए आवास के हेतु बहुत कम अर्थ व्यवस्था की गई है। औद्योगिक गृहों के किराये भी इतने अधिक हैं कि साधारण श्रमिक उनको वहन नहीं कर सकता अतः कार्यक्रम में उपयुक्त सुधार करने आवश्यक हैं।

STANDARD QUSETIONS

1. Briefly trace the origin of labour problens in India.
2. Summarise carefully the principal characteristics of Indian Industrial labour.
3. Write a full note on the Migratory character of Indian Industrial labour
4. Indian Industrial labour is proverbially inefficient Comment and suggest measures to improve the efficiency of Indian labourers
5. Write an eassy on Industrial Housing in India.
6. Discuss the housing problem of industrial workers in India with special reference to the industrial towns of the country What are the consequences of bad housing ?

अध्याय २३

हमारी कुछ प्रमुख श्रम-समस्यायें II

(Labour Problems II)

श्रम-कल्याण-कार्य

(Labour Welfare)

श्रम कल्याण कार्य की परिभाषा एवं क्षेत्र—

श्रम कल्याण कार्य का अर्थ बड़ा लचीला है। देश और समय की परिस्थितियां तथा आवश्यकताओं के अनुसार ही इसके अर्थ तथा विस्तार में परिवर्तन किया जा सकता है। प्रारम्भ में कल्याण कार्य से आशय सेवायोजकों द्वारा स्वतः दी हुई ऐसी सुविधाओं से था, जिससे कि श्रमजीवियों की सामाजिक एवं मानसिक उन्नति हो। ये सुविधायें श्रमिकों की मजदूरी के अतिरिक्त उनके आराम के लिये होती हैं। वर्तमान समय में, कल्याण कार्य की परिभाषा काफी विस्तृत है। आज इससे हमारा आशय यह है कि कारखानों के भीतर और बाहर दोनों ही दशाओं में श्रमिकों के आराम और सुविधा का उचित प्रबन्ध होना चाहिए। श्रमिक-कल्याण कार्य के क्षेत्र की व्यवस्था करते हुए श्रम जाँच समिति ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि श्रम कल्याण कार्यों के अन्तर्गत श्रमिकों के बौद्धिक, शारीरिक, नैतिक एवं आर्थिक विकास के कार्यों का समावेश होना चाहिए। ये कार्य चाहे नियोक्ता, सरकार या अन्य संस्थाओं द्वारा किये जायें तथा साधारण अनुबन्धात्मक सम्बन्ध अथवा विधान के अन्तर्गत श्रमिकों को जो मिलना चाहिए उसके अलावा किये गये हों। इस प्रकार इस परिभाषा के अन्तर्गत हम आवास व्यवस्था, चिकित्सा एवं शिक्षा सुविधायें, अच्छा भोजन (केन्टीन के आयोजन सहित), आराम एवं मनोरंजन की सुविधायें, सहकारी समितियां, धाय घर एवं शिशु गृह, शौचालय की व्यवस्था, सवेतन छुट्टियां, सामाजिक बीमा, प्रावीडेण्ट फण्ड, सेवा निवृत्ति वेतन आदि सुविधाओं का समावेश कर सकते हैं।

कल्याण कार्यों का प्रधान उद्देश्य श्रमिक को वेतन व काम के घण्टों की सुविधाओं के अतिरिक्त उसे अन्य सांस्कृतिक व सामाजिक लाभ पहुँचाना होता है। वास्तव में एक सन्तुष्ट, जागरूक, कर्त्तव्यपरायण व आत्म गौरवपूर्ण श्रमिक ही राष्ट्र की आर्थिक

प्रगति म सहायता कर सकता है। रायल श्रम-कमीशन ने श्रमिको के लिये किये गये कल्याण कार्यो का 'विवेकपूर्ण लागत' कहा है, जिसका प्रतिफल श्रमिका की बढी हुई कार्यक्षमता के रूप मे मिलता है। श्रम कल्याण कार्यों का तीन श्रेणिया में विभाजित किया जा सकता है —(१) वैधानिक (२) स्वच्छादपूर्ण एव (३) पारस्परिक। वैधानिक कल्याण कार्यों म तात्पय उन सभी कामो स है जो श्रमिका क हित क लिय सरकार की ओर स विभिन्न कानूना क रूप म किये जाते है। द्वितीय श्रेणी क कार्यों में उद्योगपतियो द्वारा किये हुए प्रय न तथा तीसरी श्रेणी में श्रमिक सघो द्वारा किये हुए कार्य सम्मिलित किये जा सकते हैं।

भारत मे श्रम कल्याण-कार्य की आवश्यकता—

भारतवर्ष म श्रमिको क हेतु कल्याण कार्य की बहुत आवश्यकता है। यहा का श्रमिक अकुशल है और अन्य देशो की तुलना म उसकी कार्यक्षमता न्यून है। श्रमिको को सन्तुष्ट और सुखी करन क लिए उनकी परिस्थिति म सुधार करना चाहिए। हमारी दृष्टि से श्रमिको को कवल नकद मजदूरी बढान ही से कोई विशेष लाभ न होगा, क्योकि इसस उनकी कार्य-निपुणता पर कोई गम्भीर प्रभाव नही पडता। सम्भव है कि नकद राशि का व जुए और नशे म उडा दे। इसक विपरीत यदि कल्याण कार्य क द्वारा उनको लाभ पहुँचाया जायगा तो हमे विश्वास है कि उनकी कार्यक्षमता अवश्य बढेगी। दूसरे, जितनी अधिक श्रम-कल्याण की सुविधायें श्रमिको का मिलेंगी उतना ही आकर्षण कारखाना क प्रति अधिक होकर कारखाना जीवन की नीरसता कम होगी, अर्थात् श्रमिको का नैतिक स्तर भी ऊचा होगा। तीसरे, श्रमिका म नागरिक उत्तर दायित्व की भावना जाग्रत होकर व देश क आदर्श नागरिक बन सकते है। इन लाभो स ही प्रेरित होकर टेक्सटाइल लेबर इन्क्वायरी कमेटी ने कहा था—"कार्यक्षमता का उन्नत स्तर कवल वहीं हो सकता है, जहाँ श्रमिक शारीरिक दृष्टि स स्वस्थ तथा मानसिक दृष्टि स सन्तुष्ट हो। इसका तात्पर्य यह है कि कवल वहीं श्रमिक कुशल हो सकते है जिनके लिये शिक्षा, आवास, भोजन तथा वस्त्रादि का उचित प्रबन्ध हो।" इसी दृष्टि स हमारे देश म बम्बई विश्वविद्यालय ने श्रम समस्याओ एव कल्याण कार्य के अध्ययन तथा शिक्षा क लिए विशेष प्रबन्ध किया। श्री टाटा ने भी बॉम्बे स्कूल आफ इकॉनॉमिक्स एव सोशल साइन्सेज की स्थापना इसी उद्देश्य स ही की है।

भारत मे श्रम-कल्याण कार्यो का विकास—

कल्याण कार्य की भावना वास्तव में एक नवीन स्फूर्ति है, जिसने प्रथम महा युद्ध के पश्चात् से अधिक जोर पकडा। प्रथम महायुद्ध युग में जब निर्मित वस्तुओ की माँग बढी, आवश्यक वस्तुओ क दाम चढ गये। नगरो में गृह समस्या जटिल हो गई, श्रमिको की कार्य क्षमता म कमी आ गई तो ऐसी परिस्थितियो में उद्योगपतियो का

ध्यान श्रम-कल्याण की ओर आकर्षित हुआ। सन् १९२२ में बम्बई में एक अखिल भारतीय श्रम-कल्याण सम्मेलन आयोजित किया गया था, किन्तु प्रस्ताव पास करने के अतिरिक्त इसने कोई भी रचनात्मक कार्य नहीं किया। सचमुच में द्वितीय महायुद्ध के उपरान्त ही सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ। सर्व प्रथम उन कारखानों में श्रम-कल्याण कार्य आरम्भ किये गये जिनमें युद्ध सम्बन्धी सामग्री का निर्माण किया जाता था। सन् १९४२ में, केन्द्रीय सरकार ने एक श्रम-कल्याण सलाहकार (Labour Welfare Adviser) नियुक्त किया और उसकी सहायता के लिये कुछ अन्य अधिकारियों की नियुक्ति भी की गई। सन् १९४४ में कोयले की खानों में कार्य करने वाले श्रमिकों के कल्याणार्थ अधिनियम बनाये गये। इस कार्य के लिये एक कल्याण कोष (Labour Welfare Fund) भी स्थापित किया गया। इन श्रमिकों के लिये टी० बी० अस्पताल में ६ स्थान सुरक्षित कर दिये गये। सन् १९४३ में एक अन्य अधिनियम अभ्रक की खानों में कार्य करने वाले श्रमिकों के लिये पास किया गया। सन् १९४७ में उनके ही लाभार्थ एक कल्याण कोष स्थापित किया गया। अन्य अधिनियमों द्वारा सरकार ने काम के घण्टे कम कराये एवं शिशुगृह, मकान, जल इत्यादि का प्रबन्ध कराया। उन कारखानों में जहाँ ५०० से अधिक श्रमजीवी कार्य करते हैं, श्रम-कल्याण अधिकारी (Labour Welfare Officer) की नियुक्ति अनिवार्य कर दी गई है।

सन् १९४८-४९ में सरकार ने एक श्रम-कल्याण कोष स्थापित किया, जिसमें उसकी ओर से १ लाख रुपये का अनुदान दिया गया। इस कोष से उन संस्थाओं को आर्थिक सहायता प्रदान की जाती थी, जो श्रम-कल्याण कार्य करती थी।

कारखाना अधिनियम सन् १९४८ के अनुसार ऐसे प्रत्येक कारखाने में जहाँ २५० से अधिक श्रमजीवी कार्य करते हैं, कैंटीन का होना अनिवार्य है।

सन् १९५२-५३ में मध्यप्रदेश के चांदा नगर में १० स्त्रियों के लिए एक प्रसूतालय बनाया गया। कोयले की खानों में काम करने वाले श्रमिकों के लिए ७ बहु-उद्देशीय कल्याण केन्द्र और विंध्यप्रदेश में ३ बहु उद्देशीय कल्याण केन्द्रों की स्थापना की गई। सन् १९५२-५३ में ही प्रॉवीडेण्ट फण्ड योजना चलाई गई, जो पहले बिजली, लोहा व स्पात, इंजीनियरिंग, कागज, कपड़ा, सीमेंट तथा सिगरेट उद्योगों पर लागू की गई। ३१ जुलाई सन् १९५६ को यह योजना १३ अन्य उद्योगों पर लागू की गई और सितम्बर सन् १९५६ को ७ अतिरिक्त उद्योगों पर लागू की गई, जिनमें दियासलाई, चीनी, चाय, प्रेस, सीसा, भारी रसायन तथा तेल सम्मिलित हैं। ३१ दिसम्बर सन् १९५६ को समाचार पत्रों पर तथा १३ जनवरी सन् १९५७ से खनिज तेलों पर भी यह योजना लागू कर दी गई है। अब यह योजना उन सभी उद्योगों पर लागू होती है जिनमें ५० से अधिक श्रमजीवी कार्य करते हैं और जिन्हें स्थापित हुए ३ वर्ष हो चुके हैं।

सन् १९५३ में केन्द्रीय सरकार ने एक केन्द्रीय कल्याण मण्डल (Central Welfare Board) स्थापित किया, जो सारे देश में कल्याण कार्यों का समन्वय करता है। सन् १९५३ ५४ मे कलकत्ता विश्वविद्यालय न श्रम-अधिकारियो के प्रशिक्षण के हेतु एक नया विभाग स्थापित किया।

भारत मे आयोजित श्रम-कल्याण कार्य—

भारतवष में अभी तक जितना भी श्रम कल्याण कार्य किया गया है उसका श्रेय मुख्यत तीन सस्थाग्रा को है—(१) सरकार, (२) उद्योगपति और (३) श्रमिक सघ। अब हम इन सस्थाओं द्वारा किये गये काय का विशद विवेचन करेगे।

केन्द्रीय सरकार द्वारा आयोजित कल्याण कार्य—

युद्धोपरान्त (सन् १९३९ ४५) केन्द्रीय सरकार ने श्रमिको की ओर ध्यान दिया। उसके पूर्व सन् १९२२ में बम्बई में एक अखिल भारतीय श्रम हितकारी सम्मेलन के बुलाने के अतिरिक्त कोई महत्त्वपूर्ण प्रयत्न उसने नही किया था, लेकिन अब उसन कुछ ठोस कदम उठाये है। सन् १९४२ मे एक श्रम हितकारी सलाहकार और उसकी सहायता के अन्य श्रम हितकारी नियुक्त किए। सन् १९४४ म कोयला खानो के श्रमिकों के लिए एक हितकारी कोष खोला, जिसके द्वारा श्रमिको के मनोरजन, चिकित्सा और शिक्षा का प्रबन्ध किया गया। सन् १९४६ मे अभ्रक खान श्रमिक हितकारी कोष अधिनियम पास कर दिया गया। साथ ही, सरकार ने अन्य कानूनो का निर्माण किया जिनके आधार पर कारखानो के श्रमिको के लिए मकानो की व्यवस्था, कान ने पखे, रोशनदान, मशीनो को ढँक कर रखना, चिकित्सा, उपहार गृह और शिशु-गृहो की व्यवस्था की गई। देखभाल के लिए निरीक्षक रखे गये। ५०० या इससे अधिक श्रमिक वाले कारखानो मे श्रमिक हितकारी अफसर की नियुक्ति अनिवार्य कर दी गई। सरकार अपन कारखानो में श्रम हितकारी कोष स्थापित करने के साथ साथ व्यक्तिगत औद्योगिक कारखानो म कोष स्थापित करान के प्रयत्न कर रही है। यह कोष श्रमिको के लिए हितकारी सेवाए जुटाने में व्यय किया जाता है। सन् १९५४ में स्थायी श्रम समिति ने भी श्रम हितकारी कोष की स्थापना पर बल दिया। यह कोष केन्द्रीय सरकार द्वारा स्थापित करना चाहिए। इसके अन्तगत कारखाने, ट्रामवे तथा मोटर बस सेवायें, आन्तरिक स्टीम जलयान, कोयला व अभ्रक की खानों के अतिरिक्त सब खानें, तेल कूप, उद्यान, जन काय, सिंचाई तथा विद्युत सम्मिलित किये गय है। वाचनालय, रेलवे कमचारियो तथा बन्दरगाहो पर काम करन वाले श्रमिका के लिए भी विभिन्न प्रकार की हितकारी सुविधायें कर दी गई है।

योजना कमीशन न भी श्रम कल्याण कार्यों के महत्त्व का भलीभाँति समझा है, अत उन्होन पच वर्षीय योजना म इन कार्यों के लिए ७ करोड़ रुपया व्यय करन

का निश्चय किया था। द्वितीय आयोजन में केवल श्रमिकों के कल्याणार्थ २६ करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई है। प्रथम पंच-वर्षीय योजनाकाल में देश में १३ लाख घर बनवाये गये। युद्धोत्तर काल में सरकार ने श्रमिकों के लिए सहायता प्राप्त औद्योगिक गृह निर्माण योजना के अन्तर्गत राज्य सरकारों, सहकारी गृह निर्माण समितियों, उद्योगपतियों तथा गृह निर्माण बोर्डों को आर्थिक सहायता देकर गृह बनवाये। प्रथम आयोजन काल में कुल ३८५ करोड़ रुपया गृह निर्माण पर व्यय किया गया और द्वितीय आयोजन में १२० करोड़ की व्यवस्था की गई है। उद्यानों तथा अभ्रक व कोयले की खानों में काम करने वाले श्रमिकों के लिये घर बनवाये जा रहे हैं। ये घर श्रम मन्त्रालय के अन्तर्गत बन रहे हैं। इसी प्रकार अन्य केन्द्रीय तथा राज्य मन्त्रालय अपने अपने विभागों में कार्य करने वाले श्रमिकों के लिए घर बनवाने की योजनायें चला रहे हैं। द्वितीय आयोजन काल में देश में कुल १६ लाख घर बनवाये जायेंगे।

राज्य सरकारों द्वारा किये गये श्रम-कल्याण कार्य—

केन्द्रीय सरकार के अतिरिक्त राज्य सरकारों ने भी श्रमिकों के कल्याण के लिए बहुत कुछ किया है। इस दिशा में कार्य का श्रीगणेश तो प्रथम विश्व युद्ध के बाद ही हो गया था और सन् १६३७ में भी काँग्रेसी सरकारों ने इन कार्यों के प्रति बड़ी रुचि दिखाई थी, किन्तु कोई सराहनीय कार्य नहीं हो सका। हाँ, युद्धोत्तर काल में अवश्य प्रान्तीय सरकारों का ध्यान इस ओर गया और स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद तो राज्य सरकारों ने इस दिशा में बड़ा प्रशसनीय कार्य किया है। अब हम भारत के कुछ औद्योगिक राज्यों में होने वाले श्रम कल्याण कार्यों पर प्रकाश डालेंगे।

बम्बई राज्य—बम्बई राज्य में श्रम कल्याण के लिये सबसे पहले सन् १६३६-४० के बजट में १,२०,००० रु० का आयोजन किया गया था, जिससे कल्याण केन्द्र स्थापित किये गये। सन् १६४६-५० के बजट में इसी कार्य के लिये १० ६८,०८३ रु० स्वीकार किये गये। सन् १६५१-५२ में इस राज्य में ५४ कल्याण केन्द्र थे—५ 'क' श्रेणी के, ११ 'ख' श्रेणी के, ३६ 'ग' श्रेणी के और २ 'घ' श्रेणी के। ये चार श्रेणियाँ सुविधाओं के आधार पर बनाई गई हैं। 'क' श्रेणी के कल्याण केन्द्रों में निम्न सुविधायें प्रदान की जाती हैं—पुरुषों के लिए मैदानी तथा भीतरी खेल, स्त्रियों की सिलाई तथा कढ़ाई, बच्चों के लिए नर्सरी स्कूल, स्त्री पुरुषों के लिए अलग अलग स्नानागार, औषधालय, पुस्तकालय, वाचनालय तथा आदि, म. १ मार. फिल्म, दिखाने का प्रबन्ध। अन्य श्रेणी के केन्द्रों में सुविधायें कम होती हैं। बम्बई नगर में १८ केन्द्र हैं, शोलापुर और अहमदाबाद में ६-६ केन्द्र हैं। सन् १६५३-५४ में बम्बई राज्य ने श्रम कल्याण कार्य अधिनियम पास कर दिया। श्रम कल्याण के कार्य संचालन के लिए

१४ सदस्यों की एक सभा बनाई गई। सन् १६५७ के बजट में ३८·७८ लाख रुपये का अनुदान देना स्वीकार किया गया, जिसमें से २८·६७ लाख रुपये औद्योगिक प्रशिक्षण के लिए दिए गए। एक सराहनीय कार्य बम्बई राज्य ने यह किया है कि श्रमिकों में से ही नेताओं का निर्माण किया जाय और इसके लिए उन्हें बम्बई, अहमदाबाद तथा शोलापुर में शिक्षा दी जाती है। इसी वर्ष में राज्य बीमा योजना के अन्तर्गत ५,२७,६१८ श्रमिकों को सामाजिक सुरक्षा तथा स्वास्थ्य बीमा इत्यादि की सुविधा प्रदान की गई। श्रम-कल्याण कार्यों द्वारा इस प्रदेश के श्रमिकों को काफी लाभ पहुंचा है और उनकी क्षमता में यथेष्ठ वृद्धि हुई है।

उत्तरप्रदेश—इस प्रदेश में सन् १६३७ में प्रथम बार कांग्रेस मन्त्रिमंडल की स्थापना हुई तथा कानपुर में ४ कल्याण केन्द्र स्थापित किये गये। सन् १६४७ के बाद इस दिशा में सराहनीय प्रगति हुई है। सन् १६५५ में इस राज्य में श्रम-कल्याण केन्द्रों की संख्या ४४ थी। सुविधाओं के विचार से उनकी ३ श्रेणियां की गई हैं—अ, ब और स। प्रथम श्रेणी के केन्द्रों में एक एलोपैथी का चिकित्सालय, पुस्तकालय व वाचनालय, स्त्रियों के लिए सिलाई व कढ़ाई की कक्षायें, भीतरी और बाहरी खेल, संगीत, रेडियो, प्रसूति गृह इत्यादि की व्यवस्था होती है। द्वितीय श्रेणी के केन्द्रों में भी लगभग यही सुविधायें होती हैं। यहाँ होम्योपैथी का चिकित्सालय होता है। तृतीय श्रेणी के केन्द्रों में पुस्तकालय व वाचनालय, खेल-कूद तथा रेडियो इत्यादि होते हैं। श्रम हितकारी केन्द्रों पर मुफ्त में सिनेमा भी दिखाये जाते हैं। कभी कभी श्रमिकों का कार्यक्रम अखिल भारतीय रेडियो लखनऊ व इलाहाबाद पर भी होता है। टूर्नामेन्ट व दंगल आयोजित किये जाते हैं, जिनमें विजेता श्रमिकों को पुरस्कार व प्रमाण-पत्र देकर प्रोत्साहित किया जाता है। चर्खा कक्षायें, प्रौढ़ शिक्षा कक्षायें तथा स्त्रियों के लिये व्यावसायिक शिक्षा की कक्षायें भी इन केन्द्रों द्वारा चलाई जाती हैं।

सन् १६५४ में कानपुर में श्रमिकों के हितार्थ एक टी० बी० का अस्पताल खोला गया है। इसके अतिरिक्त चिकित्सकों के एक संचार दल का भी निर्माण किया गया है। जुलाई सन् १६५४ में केन्द्रीय सामाजिक हितकारी बोर्ड के आधार पर U. P. Social Welfare State Advisory Board की भी स्थापना कर दी गई है। यही नहीं, श्रमिकों के रहने के लिए हजारों घरों का भी निर्माण किया गया है। गृह-निर्माण कार्य को उत्तरप्रदेश में तीन श्रेणियों में विभक्त किया गया है। प्रथम श्रेणी में श्रमिकों के लिए कानपुर तथा लखनऊ में क्रमशः २,२१६ व २६० घर सन् १६५५-५६ में बने, जो श्रमिकों को दे दिए गए हैं। द्वितीय श्रेणी में कानपुर में ३,७५० गृहों का निर्माण किया गया है। तृतीय श्रेणी में कानपुर, आगरा, फिरोजाबाद, इलाहाबाद, मिर्जापुर, सहारनपुर तथा बनारस में ७,४०० मकान बनाने की योजना है, जिनमें से पाँच हजार घरों का निर्माण हो चुका है। श्रमिक राज्य बीमा योजना, जो सन् १६५०

में कानपुर में लागू की गई थी, अब उस नगर के लाखो श्रमिको को लाभ पहुँचा रही है। सन् १६५५ ५६ में आगरा, लखनऊ तथा सहारनपुर में २० हजार श्रमिको को भी इसके अन्तगत ले लिया गया है। स्त्रियो की देखभाल के लिये एक महिला अधिकारी (Woman Labour Welfare Superintendent) की नियुक्ति की गई है। उत्तर प्रदेश की द्वितीय पच वर्षीय योजना के अन्तगत २५३'१ करोड रुपये की निर्धारित धन राशि में मे श्रम कल्याण पर १४२'५ करोड रुपये व्यय किये जायेंगे।

पश्चिमी बगाल—सन् १६४० में बगाल राज्य में १० श्रम कल्याण केन्द्र खोले गये, जिनकी सख्या बढने बढने सन् १६४५ में ४१ हो गई। विभाजन के बाद इनकी सख्या ३० रह गई। इन केन्द्रो पर भी चिकित्सा, मनोरजन, खेल कूद, शिक्षा और सिलाई इत्यादि की सुविधायें उपलब्ध हैं। लगभग ४५ हजार व्यक्ति प्रतिदिन इन केन्द्रो पर जाते हैं तथा लगभग १६,६६४ बच्चे और ६,४४८ प्रौढ प्रात: तथा सन्ध्या कालीन कक्षाओ में शिक्षा पाते है। कलकत्ता, हावडा तथा सीरामपुर मे श्रमिको के लिये क्वाटर बनवाये जा रहे हे। राज्य में इस समय १५ चिकित्सालय श्रमिको के लिये कार्य कर रहे ह। चाय के बगीचा में काम करने वाले श्रमिको के लिये केन्द्रीय चाय बोर्ड ने सन् १६५५ ५६ में एक लाख रुपया कल्याण कार्यों के लिये दिया था। इससे मुख्यत. स्त्रियो तथा बच्चो का कल्याण होगा। सन् १६५७ में पुखरियाबाग तथा बाग-डोगरा में दो कल्याण केन्द्र खोले गए है। जूट मिलो के श्रमिको की आर्थिक तथा सामाजिक दशा म काफी सुधार हो गया है और उनकी कायक्षमता में भी वृद्धि हुई है।

अन्य राज्य—भारत के अन्य राज्यों में भी श्रम कल्याण केन्द्र स्थापित किये गये हैं। पजाब के नगरो (अमृतसर, लुधियाना, अम्बाला, बटाला, जालन्धर तथा अब्दुल्लापुर) में इनकी स्थापना हुई है। मध्य प्रदेश में हिंगनघाट, जबलपुर, ग्वालियर, उज्जैन, इन्दौर, रतलाम में—मद्रास म नीलगिरि, कोयम्बटूर तथा करियार रोड(उडीसा) राजस्थान के गगानगर, जोधपुर और कृष्णगढ में भी केन्द्र स्थापित किये गये हे।

इसमें कोई सन्देह नही कि श्रम कल्याण कार्यों की ओर केन्द्रीय व राज्य सरकारो का ध्यान बढता ही जा रहा है। भारत का प्रत्येक राज्य अपने को 'कल्याणकारी राज्य' (Welfare State) कहता है, किन्तु समस्या की गुरुता को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि इस दिशा में अभी बहुत कुछ करना शेष है।

उद्योगपतियो द्वारा कल्याण-कार्य—

लम्बे अरसे की उदासीनता के बाद उद्योगपतियो ने श्रमिको के प्रति कुछ विशेष जागरूकता दिखलाई है, लेकिन उनके श्रम कल्याणकारी प्रयत्न अधिकांश में श्रमिको के हित के प्रति दया भावना पर आधारित है। जहा तक उद्योगपतियो के दृष्टि कोण का प्रश्न है, वे अब तक ब याण काय को श्रमजीवियो को फँसाने के लिये एक

'मृग मरीचिका व जाल' के रूप में उपयोग करते रहे है। इन कार्यों को करते हुए वे एक प्रकार स श्रमिकों के ऊपर मानों ग्रहसान-सा करते है। यद्यपि अधिकाश में उद्योगपति आज भी बड अनुदार है और वे कल्याण-कार्यों में होने वाले व्यय को आर्थिक लागत नही मानते, किन्तु कुछ उद्योगपति उदार व प्रगतिशील भी है, जो इस व्यय को विनियोग समझ कर करते है, जो भविष्य में उनकी बढी हुई उत्पादन क्षमता के रूप में उन्हे पुनः मिल जाता है। अब हम ऐसे ही उद्योगपतियो द्वारा किए हुए कल्याण कार्य की झाँकी करेंगे।

सूती-वस्त्र-मिल-उद्योग—

बम्बई में सूती मिलो मे चिकित्सालय, जलपानगृह स्थापित किये गये है। कुछ मिलो में आधुनिकतम अस्पताल भी है। इनके अतिरिक्त बाहरी भीतरी खेलो की सुविधा, सहकारी समितियाँ, बाल एव प्रौढ शिक्षालय, प्रॉवीडेन्ट फन्ड की योजना आदि सुविधाओं की व्यवस्था भी देश के लगभग सभी मिलो में की गई है। इस दृष्टि से नागपुर का एम्प्रेस मिल, दिल्ली का देहली क्लॉथ एण्ड जनरल मिल्स व बिडला कॉटन मिल्स, ग्वालियर का जीवाजीराव कॉटन मिल्स, मद्रास के बंकिघम एण्ड कर्नाटक मिल्स, बगलौर का बगलौर वुलियन कॉटन एण्ड सिल्क मिल्स तथा मदुरा मिल्स कम्पनी ने अत्यन्त सराहनीय कार्य किये है।

जूट-उद्योग—

जूट-उद्योग में श्रम हितकारी कार्यों को करने वाली एक मात्र सस्था भारतीय जूट मिल सघ है, जिसने हजारीबाग, कनकी नाडा, सीरामपुर टीटागढ और भद्रेश्वर में श्रम हितकारी केन्द्रों की स्थापना की है। इन कन्द्रो पर बाहरी भीतरी खेल कूदो की व्यवस्था की जाती है। सघ की ओर स पाँच प्राथमिक पाठशालायें भी चल रही है। जूट मिलो ने व्यक्तिगत रूप से भी हितकारी कार्यों में योग दिया है। सभी जूट मिलो मे एक चिकित्सालय है। सात मिलो मे प्रसूताओ के लिये क्लिनिक है। ५१ मिलो में शिशुगृह एव ४५ जूट मिलो में जलपान गृह खोले गये है।

ऊनी मिलो में बडे कारखानो में सभी उत्तम व्यवस्थायें उपलब्ध है और छोटी मिलों में न्यूनतम कानूनी सुविधाओ का प्रबन्ध है।

इजीनियरिंग उद्योग में १,००० या इसके अधिक श्रमिक वाले सभी कारखानो में चिकित्सालय है। जहाँ जहाँ स्त्री श्रमिक है वहाँ शिशु गृह भी बने है। जलपान-गृह तो सभी कारखानो में मिलेंगे। १०० से ऊपर श्रमिक वाले कारखानो मे प्रॉवीडेन्ट फन्ड योजना लागू है। टाटा आइरन एण्ड स्टील कम्पनी जमशेदपुर विशेष उल्लेखनीय है। इसमें ४०० पलङ्ग वाला अस्पताल, प्रसूता-गृह एव ६ प्रसूति क्लिनिक है। कपनी की ओर से ३ हाईस्कूल, १० मिडिल स्कूल और २५ प्राथमिक स्कूल खोले गये है।

२ बडे जलपान गृह हैं। विशाल क्रीडा स्थल, मुक्त सिनेमा, सहकारी उपभोक्ता भण्डार व डाकखाने आदि की आदर्श व्यवस्था है। अन्य कारखानों में भी इसी प्रकार व्यवस्था करने का प्रयत्न किया जा रहा है।

कोयला तथा अभ्रक की खानो में श्रमिक हितकारी कोष कानून द्वारा बनाये जा चुके है, जिनके अन्तर्गत अनेक श्रम-हितकारी कार्य किये जा रहे है। कोलार की सोना खानो में भी श्रम हितकारी कार्य हो रहे है।

आसाम तथा पश्चिमी बगाल के अधिकांश बडे चाय उद्योगो में बडे बडे अस्पताल बने हे। इनमें अभी जो व्यवस्थाएँ की गई है वे अत्यन्त अपर्याप्त हैं।

इसी प्रकार की न्यूनाधिक व्यवस्थाएँ अन्य उद्योगो में भी की गई है, परन्तु श्रमिकों की आवश्यकताओं को देखते हुये ये प्रयत्न अपर्याप्त है।

श्रमिक सघो द्वारा हित-कार्य—

श्रम-सघ धन की कमी के कारण अधिक कार्य नही कर सके है। तथापि कुछ सघो ने सराहनीय कार्य किया है जिसमें अहमदाबाद टैक्सटायल श्रम-सघ, मजदूर सभा कानपुर एव मिल मजदूर सङ्घ इन्दौर प्रमुख है। इन्होंने पुस्तकालय, चिकित्सालय, शिक्षालयो (प्रौढ एव बाल), क्लबो आदि की व्यवस्था की है।

सयुक्त राष्ट्र सघ द्वारा भारत मे कल्याण कार्य—

कल्याण-कार्य के क्षेत्र में सयुक्त राष्ट्र सङ्घ द्वारा की हुई सेवाओं का उल्लेख करना अनावश्यक न होगा। इस सस्था ने भारतीय बालको के कल्याण काय के लिए मार्च सन् १९५४ तक लगभग ९० लाख डालर तक व्यय कर दिया है। भारत सरकार की प्रथम पञ्च वर्षीय योजना के अन्तर्गत कल्याण कार्यों का सयुक्त-राष्ट्र सघ के मातृ तथा बाल कल्याण कार्यों से सम्बन्धित योजना से समन्वय कर दिया गया है। इस योजना के अन्तगत आगामी दो वर्षों में स्वास्थ्य निरीक्षको तथा दाइयो के प्रशिक्षण एव उन्हे चिकित्सा सम्बन्धी पर्याप्त सज्जा से सुसज्जित करने में बीस लाख डालर व्यय किये जायेंगे। 'सयुक्त राष्ट्र सघीय अन्तर्राष्ट्रीय बाल सकट कोष' (United Nations International Children and Emergency Fund--U. N. I. C. E. F.) भारत में माताओं तथा बच्चो को दूध वितरित करने तथा प्रसूति गृहा और बाल कल्याणकारी केन्द्रो की स्थापना के उद्देश्य से आरम्भ किया गया था। इनमें से १० लाख डालर मलेरिया नियन्त्रण, दूध वितरण और दुर्भिक्ष निवारण में खर्च किया जा चुका है। इस धन का अधिकांश भाग भारतीय गाँव तथा श्रमिक बस्तियो में व्यय होता है।

उपसहार—

उक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि भारत में श्रमिको की कार्यक्षमता में वृद्धि

करन तथा उनके लिए कल्याण कार्यों की व्यवस्था के बहुत कुछ प्रयत्न किये जा रहे है, किन्तु समस्या की गम्भीरता एव गुरुता को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि इस दिशा म अभी तक जो कुछ भी किया गया वह बहुत ही थोडा है। सच बात तो यह है कि विभिन्न श्रमिक सन्नियमा म दी गई कल्याण सुविधाओ का न्यूनतम भी आज श्रमिको को अधिकाश मे नही मिल पाता, अत सर्व प्रथम तो पूव स्थित सन्नियम को ही सच्चे अथ म कार्यान्वित करन की आवश्यकता है। दूसरे श्रमिको की समस्या को सुलझान के लिए यह भी नितान्त आवश्यक है कि एक मानवीय दृष्टिकोण उत्पन्न किया जाय। तभी भारतीय श्रमिक विश्व के अन्य देशो के श्रमिको के समान निपुण व बलिष्ठ होकर देश का आर्थिक उत्थान कर सकेंगे।

सयुक्त राष्ट्र-सघ एव भारत मे श्रम-कल्याण कार्य—

सयुक्त राष्ट्र सघ विश्व के सभी देशो के श्रमिकों के कार्यों में रुचि रखता है। इस सस्था न भारत तथा अन्य दक्षिणी पूर्वी एशियाई देशो के श्रमजीविया के आर्थिक, सामाजिक तथा सास्कृतिक विकास के लिए सराहनीय काय किया है। सयुक्त राष्ट्र सघ न भारतीय बालको के कल्याणार्थ माच सन् १६५४ तक लगभग ६० लाख डालर व्यय किया। भारत की प्रथम पच वर्षीय योजना क अन्तगत कल्याण कार्यों का सयुक्त राष्ट्र सघ के मातृ तथा कल्याण कार्यों से सम्बन्धित एक योजना से समन्वय कर दिया गया था। इस योजना के अन्तर्गत सन् १६५५ ५६ म स्वास्थ्य निरीक्षको तथा दाइयों के प्रशिक्षण तथा उन्हे चिकित्सा सम्बन्धी पर्याप्त सज्जा से सुसज्जित करन म २० लाख डालर व्यय किये गये।

सयुक्त राष्ट्र सघीय अन्तर्राष्ट्रीय बाल सङ्कट कोष (U N. I. C. E F. —United Nations International Children's Emergency Fund) भारत मे माताओ तथा बच्चो को दूध वितरित करन तथा प्रसूतिगृहो एव बाल कल्याण केन्द्रो की स्थापना क उद्देश्य स प्रारम्भ किया गया था। इसमें स १० लाख डालर दूध वितरण, मलेरिया नियत्रण एव दुर्भिक्ष निवारण पर व्यय किया जा चुका है। इस धन का अधिकाश भाग भारतीय गाँवो तथा श्रमिक बस्तियो म व्यय हो रहा है।

इस योजना के अन्तगत केन्द्रीय सरकार विभिन्न राज्य सरकारो को कोष राशि म स उनका भाग दती है। इसमें से पश्चिमी बगाल को १ २५ लाख डालर, केरल को १·१० लाख डालर बिहार को २ लाख डालर तथा उत्तर प्रदेश को भी २ लाख डालर दिये जा चुके हे। ये राज्य सरकारें पच वर्षीय योजना के अन्तर्गत कल्याणकारी कार्यों को अपनी योजनाओ पर इस धन का उपयोग माताओ तथा बच्चो क कल्याण कार्यों पर कर रही ह। गावो क लिए दाइया को प्रशिक्षित करक उन्हे सज्जा (Kit)

प्रदान करना, योजना का मूल उद्देश्य है। इस सज्जा में वे सभी वस्तुएँ सम्मिलित होंगी, जिनकी कि प्रसव के समय आवश्यकता पड सकती है । उक्त सस्था ने ऐसी १४,००० सज्जायें विश्व के २७ राष्ट्रों को दने की योजना बनाई है, जिसमें अकेले भारत को ६,००० सज्जायें मिलेंगी । आशा ही नहीं, वरन् पूर्ण विश्वास है कि इन प्रयत्नो से भारतीय श्रमिकों का बडा लाभ होगा । इस समय श्रमिक बस्तियों में मातृ-मृत्यु तथा बाल मृत्यु के ऊँचा होने के कारण अपार मानव सहार हो रहा है, अतएव इस योजना के परिणामस्वरूप सहार न होकर मानवीय कल्याण की वृद्धि होगी ।

श्रम-सघों द्वारा किये हुए कल्याण-कार्य—

भारतीय श्रम सघो की शक्ति अभी तक अधिकांशत: अपने वेतन तथा काम करन की दशाओं के सम्बन्ध मे उद्योगपतियो से सघर्ष करने में ही लगी रही, अतएव कल्याण-कार्य की दिशा में रचनात्मक काय करने के लिए उन्हे कम सुअवसर मिला । यही नहीं, दयनीय आर्थिक परिस्थितियो के कारण भी वे इस दिशा में कुछ करने में असमर्थ रहे । जब श्रमिक स्वय अपना पेट नही भर सकता तो उसके सघ किस प्रकार सम्पन्न हो सकते हैं ? कल्याण-कार्य की व्यवस्था के लिए काफी धन की आवश्यकता पडती है । फिर कुछ श्रम-सघो ने इस दिशा में अनुकरणीय कार्य किये हैं, जिनमें से अहमदाबाद सूती वस्त्र मिल श्रम-सघ, मजदूर-सभा कानपुर एवं मिल मजदूर संघ इन्दौर के नाम उल्लेखनीय है ।

अहमदाबाद टैक्सटाइल श्रम-सघ—

इस सघ की लगभग ७५% आय कल्याण-कार्यों पर ही व्यय होती है । इस संघ के तत्वावधान म २५ ऐसे केन्द्र स्थापित किये गये हैं, जहाँ श्रमिक एकत्रित होकर सास्कृतिक व सामाजिक कार्यों में भाग लेते हैं । प्रत्येक केन्द्र में एक पुस्तकालय तथा वाचनालय है । इसके अतिरिक्त यह ७५ सहायता अनुदान प्राप्त वाचनालयो एव सचल पुस्तकालयों का भी सचालन करता है । अहमदाबाद की प्रमुख श्रम बस्तियो में क्रीडास्थल भी सघ की ओर से स्थापित किये गये है । इसके अन्तर्गत श्रम-सदस्यो की चिकित्सा के लिये एक एलोपैथिक तथा एक होमियोपैथिक तथा एक आयुर्वेदिक औषधालय है । सघ द्वारा सगठित ६ शिक्षा सस्थायें भी नगर में चल रही हैं, जिनमें से ६ स्कूल, २ अध्ययन भवन (Study Homes) तथा एक बालिकाओं के लिए छात्रावास है । प्रति वर्ष श्रमिको के बच्चों की सहायता देकर उन्हें उच्च अध्ययन के लिए प्रोत्साहित किया जाता है । सघ द्वारा सगठित चार व्यवसायिक प्रशिक्षण-शालाएँ भी है । सन् १६५२ में इस सघ ने एक बैंक तथा एक सहकारी उपभोक्ता भण्डार भी खोला । इस विवरण से स्पष्ट है कि अहमदाबाद श्रम-सघ ने कल्याण-कार्य की दिशा में सराहनीय कार्य किया है ।

कानपुर मजदूर-सभा ने भी मजदूरो के कल्याणार्थ पुस्तकालय, वाचनालय तथा चिकित्सालय की स्थापना की है। इन्दौर मिल मजदूर सघ ने श्रम कल्याण केन्द्र की स्थापना की है। इस केन्द्र की तीन शाखाएँ है—बाल मन्दिर, महिला मन्दिर तथा कन्या मन्दिर। बाल मन्दिर में श्रमिकों के बच्चो की शिक्षा, उनके लिए स्वास्थ्य, खेल कूद व क्रीडास्थल आदि तथा सांस्कृतिक विकास के लिए सङ्गीत, नृत्य तथा अभिनय इत्यादि की व्यवस्था की जाती है। कन्या-मन्दिर में श्रमिक बालिकाओ की प्रारम्भिक शिक्षा, खेल कूद व स्वास्थ्य, सिलाई कढाई तथा अन्य गृह विज्ञान सम्बन्धी बातो के पढाये जाने, आदि की व्यवस्था है। महिला मन्दिर मे महिलाओ के हेतु प्रौढ शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा तथा स्वास्थ्य सुधार इत्यादि की व्यवस्था की गई है।

उपर्युक्त श्रम सघो के अतिरिक्त देश के रेल कर्मचारी सघ भी अपने सदस्यो के लिए कल्याण कार्य की व्यवस्था करते है—जैसे—क्लब खोलना, सहकारी समितियो की स्थापना करना, मुकद्दमो की पैरवी करना इत्यादि। उत्तर प्रदेश में भारतीय श्रम सघ (Indian Federation of Labour) ने अनेक श्रम कल्याण केन्द्रो की स्थापना की है। आसाम में चाय के बगीचो मे काम करने वाले श्रमिको के लिए केन्द्रीय सरकार की सहायता से 'अखिल भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस' ने कुछ श्रम कल्याण कार्यों का आयोजन किया है। अन्त में हम यह कह सकते है कि अब श्रमिक वर्ग काफी जागरूक हो गया है और वह स्वय सघीय शक्ति मे अपने पैरो खडा होने की चेष्टा कर रहा है, किन्तु अभी तक श्रमिक सघो ने जो कुछ भी किया है, उसे सन्तोषजनक एव पर्याप्त नही कहा जा सकता।

प्रथम पचवर्षीय योजना मे श्रम-कल्याण—

प्रथम पच-वर्षीय योजना में श्रम कल्याण के लिये १·३१ करोड रुपये आयोजित किये गये थे।। चाय बागानो के श्रमिको के हितार्थ केन्द्रीय चाय मण्डल (Central Tea Board) को ४ लाख रुपये दिये गये थे। ७६,६७६ क्वार्टर बनवाने की योजना स्वीकार की गई थी, जिनमे से १६,१६५ बम्बई में, २१,७०६ उत्तर प्रदेश में, ५,६२६ हैदराबाद में, ५,१८१ मध्य प्रदेश मे और ३,४४८ मध्य भारत व अन्य राज्यो में बनाये जाने थे। प्रथम योजना के अन्त तक ४०,००० मकान बन कर तैयार हो चुके थे।

मई सन् १६५४ में सरकार ने १२८ घरो के निर्माण के लिए १,६७,६५० रुपये का अनुदान दिया था। इसमें से १८,६०० रुपये बम्बई राज्य को दिये गये और इसके अतिरिक्त ३७,८०० रुपये ऋण के रूप में दिये गए थे। जुलाई सन् १६५४ में आध्र प्रदेश की चीनी मिल को १,०१,२५० रुपये का अनुदान और १ ५८ ३४२ रुपये का ऋण दिया गया। इसी योजना के अन्तर्गत अगस्त सन् १६५४

में केन्द्रीय सरकार ने १०,२२६ मकानो के निर्माण के लिए ३,१४,३५,२६७ रुपये की आर्थिक सहायता दी, जिसमें से उत्तर प्रदेश को लगभग २ करोड रुपये मिले थे। निम्न तालिका से यह स्पष्ट है कि उत्तर प्रदेश राज्य में इस योजना के अन्तर्गत कितने मकानो का निर्माण किया गया :—

नगर	मकानो की सख्या
कानपुर	३,४००
आगरा	१,२६६
फिरोजाबाद	१,०००
सहारनपुर	६०४
इलाहाबाद	५०४
बनारस	५००
मिर्जापुर	६६
योग	७,४००

बम्बई राज्य को श्रमिको के क्वार्टर बनवाने के हेतु १,०७,४६,००० रुपये दिये गये थे, जिनसे २,३८८ क्वार्टर बनवाये गये हैं।

प्रथम पच वर्षीय योजना के अन्तगत ३५२ कल्याण-केन्द्रो की स्थापना की गई।

द्वितीय पच-वर्षीय योजना के अन्तर्गत कल्याण कार्य—

द्वितीय पच वर्षीय योजना के अन्तर्गत श्रम कल्याण कार्यो के लिए २९ १६ करोड रुपये का आयोजन किया गया है, जिनमें से १८ करोड रुपये केन्द्रीय सरकार खर्च करेगी और शेष प्रदेशीय सरकारें व्यय करेंगी। श्रमिको के क्वाटर के निर्माणार्थ ५० करोड रुपये का अलग आयोजन किया गया है। इसके अतिरिक्त चाय के बगीचो में काम करने वाले श्रमिको के लिए ११,००० मकान बनवाने के हेतु २ करोड रुपये अलग से स्वीकार किये गये है। गृह-निर्माण पर खान श्रम कल्याण कोष (Coal Labour Welfare Fund) से ८ करोड रुपए व्यय किये जायेंगे।

श्रमिको के जीवन स्तर ऊंचा करने, एकता और सफाई की ओर उनकी रुचि बढाने के लिए एक नई शिक्षा पद्धति की आवश्यकता है। जुआ खेलने, शराब, ताडी तथा अन्य मादक वस्तुओ की लत छुडाने के लिए फिल्मो द्वारा शिक्षा देना अधिक हितकारी होगा और इस हेतु सन् १९६० ६१ तक १०० फिल्म (Audio Visual Films) तैयार किये जायेंगे। कारखानो के श्रम-कल्याण विभाग और राजकीय श्रम-कल्याण केन्द्र ऐसे फिल्मो को दिखाने का प्रबन्ध करते रहते हैं।

सन् १९५६ में औद्योगिक शिक्षा के लिए १०,७०० व्यक्तियों को सुविधायें प्राप्त थी। द्वितीय पंच वर्षीय योजना काल में १६,७०० व्यक्तियों के प्रशिक्षण के लिए और प्रबन्ध किया जायगा। प्रशिक्षण की अवधि भी बढ़ा दी गई है। काम सीखने की एक नई योजना—Apprenticeship Scheme चलाई गई है जिसके अनुसार प्रथम वर्ष में ४५० व्यक्ति भरती किये जायेंगे। उनकी संख्या प्रति वर्ष बढ़ती जायगी और सन् १९६०-६१ तक यह संख्या ५,००० हो जायगी। उद्योग की आवश्यकतानुसार २ वर्ष से ५ वर्ष तक की ट्रेनिंग रखी गई है। यह ट्रेनिंग प्राप्त व्यक्ति यदि किसी कारखाने में काम करेंगे तो स्वभावतः उनकी दक्षता अधिक होने के कारण उत्पादन भी बढ़ेगा।

द्वितीय पंच वर्षीय योजना के अन्तर्गत १,३२० श्रम कल्याण केन्द्र खोले जायेंगे।

कारीगरों को ट्रेनिंग देने की व्यवस्था—

कारीगरों को ट्रेनिंग देने की दिशा में इस समय जो सुविधाएं उपलब्ध हैं वे आवश्यकता से बहुत कम हैं। आज देश ने यथासंभव अधिक से अधिक ग्राम निर्भर होने का उद्देश्य अपने सामने रखा है और उत्पादन के बड़े बड़े लक्ष्य निर्धारित किये जा रहे हैं। इसलिए आज कुशल कारीगर अधिक से अधिक संख्या में सुलभ होने की जरूरत बढ़ गयी है। लोगों में बढ़िया चीजें खरीदने की आदत बढ़ जाने से यह जरूरत और भी अधिक होती जा रही है। इसलिए आवश्यक योग्यता वाले कारीगर तैयार करने की जरूरत न केवल अत्यधिक है बल्कि अत्यन्त उत्कृष्ट है।

कुशल कारीगरों को ट्रेनिंग देने का प्रश्न बड़े महत्त्व का ही नहीं बन गया है बल्कि राष्ट्रीय महत्त्व की चीज बन गया है। तब तक कुशल कारीगर तैयार नहीं किये जा सकते जब तक कि उपयुक्त साज सामान वाली ट्रेनिंग संस्थाएं या वर्कशापें न हों और उनमें ट्रेनिंग देने के लिये योग्यता वाले प्रशिक्षक न हों। दुर्भाग्य से पहली पंच वर्षीय योजना में ऐसे ट्रेनिंग केन्द्र आवश्यक संख्या में न बनाए जा सके जो कारीगरों को ट्रेनिंग दे सकते। कारीगरों को ट्रेनिंग देने के कार्यक्रम की आवश्यकता का अनुभव करके योजना आयोग ने दूसरी पंच वर्षीय योजना की अवधि में कारीगरों को ट्रेनिंग देने की सुविधाएं जुटाने के लिए धन दिया। पुनर्वास तथा नियोजन महानिदेशालय को कारीगरों को ट्रेनिंग देने की योजनाएं शुरू करने का यह काम सौंपा गया।

पुनर्वास तथा नियोजन महानिदेशालय (डायरेक्टरेट जनरल आफ रिसैटलमेन्ट एण्ड एम्प्लायमेण्ट ने दूसरी पंचवर्षीय योजना के दौरान में क्रियान्वित करने के लिए निम्न योजनाएँ बनाई —

(१) औद्योगिक ट्रेनिंग संस्थाओं में ट्रेनिंग की सुविधाओं का विस्तार और उनमें सुधार करना।

(२) राष्ट्रीय प्रशिक्षार्थी योजना चालू करना।

(३) औद्योगिक कर्मचारियों के लिए सायंकालीन कक्षाएँ चलाना।

(४) पढ़े लिखे बेकारों के लिए काम सिखाने तथा नये मार्ग दिखाने वाले केन्द्र खोलना।

(५) अलग अलग कामों की ट्रेनिंग देने की व्यवस्था का विस्तार करना।

अंतिम योजना को छोड़कर और सारी योजनाएं राज्य सरकारों के सहयोग से क्रियान्वित की जा रही हैं। प्रशिक्षकों को ट्रेनिंग देने की व्यवस्था केन्द्रीय सरकार ने की है और इनके लिये केन्द्रीय प्रशिक्षण विद्यालयों का संचालन सरकार करती है।

कारीगरों को प्रशिक्षण—

पुनर्वास तथा नियोजन महानिदेशालय ने एक कार्यक्रम बनाया है जिसके अनुसार दूसरी योजना की अवधि में २० ००० कारीगरों को ट्रेनिंग देने की और व्यवस्था हो सकेगी। इस प्रकार द्वितीय योजना के अंत तक कुल ३९ ४० हजार कारीगरों के प्रशिक्षण की व्यवस्था होगी (इनमें से १०,५०० को ट्रेनिंग देने की व्यवस्था इस समय है और २६,००० की व्यवस्था और होगी)। मूल कार्यक्रम के अनुसार प्रशिक्षण की सुविधाएँ तभी बढ़ायी जा सकती हैं जब वर्तमान सुविधाओं का पूरा-पूरा उपयोग हो और कुछ संस्थाओं में तो दो पालियां चलाकर प्रशिक्षण दिलाया जाए। दूसरी योजना से पहले ५९ प्रशिक्षण केन्द्र थे और उनकी संख्या में ८० की वृद्धि करने का प्रस्ताव है।

इंजीनियरी उद्योगों के लिए ट्रेनिंग की अवधि दो वर्ष होगी, जिसमें से ६ महीने कारखानों या वर्कशापों में काटने होंगे। इस योजना के अंतर्गत २६,००० कारीगरों को ट्रेनिंग दी जा चुकी है और योजना की अवधि समाप्त होने तक २५ ००० लोगों को ट्रेनिंग और दी जा सकेगी।

उम्मेदवार प्रशिक्षण योजना—

यह राष्ट्रीय योजना कारीगरों को प्रशिक्षण देने के लिए चलायी गई है। इसके अधीन उद्योगों में ७०५० प्रशिक्षार्थियों को काम सिखाना शुरू किया जायगा। लेकिन विभिन्न कठिनाइयों के कारण इस योजना पर अमल करने में विशेष प्रगति नहीं हो पायी है।

राज्य सरकारों ने भारत सरकार से प्रार्थना की है कि वह एक ऐसा कानून बनवाये जिसके अधीन सरकारी एवं गैर सरकारी कारखानों के लिए यह जरूरी कर

दिया जाए कि वे ट्रेनिग के पाने के उम्मेदवारों को अपने यहाँ काम सीखने दें। इस पर केन्द्रीय सरकार विचार कर रही है।

सायकालीन कक्षाएं—

उद्योगो में काम करने वाले कर्मचारियों को अपने काम का सैद्धान्तिक ज्ञान भी हो जाए और वे अपने भविष्य को और उज्ज्वल कर सकें, इस उद्देश्य से औद्योगिक नगरो तथा कस्बो मे सायकालीन कक्षाएं चालू की गयी है। चुने हुए कर्मचारी अपने काम के समय के बाद इन कक्षाओ मे जाते है। पाठ्यक्रम पूरा हो जाने पर प्रशिक्षार्थियो की परीक्षा ली जाती है और उत्तीर्ण होने पर उन्हे एक प्रशिक्षण पत्र दिया जाता है। इस कार्यक्रम के अधीन ३,०५० व्यक्तियो के प्रशिक्षण की योजना बनायी गयी है। इस सुविधा का लाभ उठाने के लिए कर्मचारियो मे काफी उत्साह है।

पढ़े-लिखे बेकारो के लिए योजना—

इस योजना का उद्देश्य पढे लिखे बेकार लोगो को सफेदपोश बाबूगीरी के अलावा अन्य कामो के लिए तैयार करना है। पढ़े लिखो को काम सिखाने तथा नये कामो की ओर प्रवृत्त करने के लिए दो केन्द्रो मे जो कुछ सिखाया पढाया जाता है, उसमे लोगो को अपनी ही वर्कशाप खोलने या किन्ही उद्योगो के चालू करने के अच्छे अवसर मिल सकते है।

इनकी ट्रेनिग की अवधि दो साल होती है और जीवन में जम जाने के लिए इन्हे उद्योग सचालन तथा लघु उद्योग सस्थाए सहायता देती है। दूसरी योजना में इस तरह की ट्रेनिग ३,००० लोगो को देने का प्रस्ताव है।

प्रशिक्षकों को ट्रेनिग—

कारीगरो को ट्रेनिंग देने के लिए आवश्यक प्रशिक्षकों का सामान्यतः अभाव ही है। इस कमी को पूरा करने के लिये केन्द्रीय प्रशिक्षण विद्यालय खोले गये हैं। जहां इन प्रशिक्षको को ट्रेनिंग दी जा सके।

प्रशिक्षको को ट्रेनिंग देने का एक ही केन्द्र है जो कोनी बिलासपुर (मध्य प्रदेश) में चल रहा है और जिसमें १४० लोगो को ट्रेनिंग देने की व्यवस्था है। अब इस सस्था में प्रशिक्षण की सुविधा २५८ व्यक्तियों के लिए कर दी गयी है। अस्थायी तौर पर एक और विद्यालय औध पूना में चालू किया गया है, जिसमें १४४ व्यक्तियो को शिक्षा देने की व्यवस्था है। जैसे ही इमारतें बन कर तैयार होगी, ये विद्यालय क्रमशः कलकत्ता और बम्बई को स्थानान्तरित कर दिये जायेंगे। इन विद्यालयो म प्रशिक्षण देने की अवधि ५॥ महीने है।

अनुमान किया जाता है कि पुनर्वास तथा नियोजन महानिदेशालय ने जो ट्रेनिंग योजनायें चलाई है, उनके लिए ४,००० से अधिक प्रशिक्षको की आवश्यकता होगी।

अन्य सस्थाओ तथा उद्योगो को अपने प्रशिक्षण कार्यों के लिए जितने प्रशिक्षकों की आवश्यकता होगी, उनकी सख्या इनके अलावा होगी। इसलिए प्रशिक्षण की सुविधाएँ बढाने की आवश्यकता पडेगी। *तीसरी पच-वर्षीय योजना में प्रशिक्षको को ट्रेनिंग देने* के लिए और अधिक केन्द्रीय ट्रेनिंग विद्यालय खोलने का प्रस्ताव है।

STANDARD QUESTIONS

1. Define the scope of 'labour welfare work' and discuss its importance.
2. State briefly how welfare work has developed in India. Describe briefly the welfare activities undertaken by the various agencies in India for the labouring classes.
3. How far has the United Nations, Organisation promoted labour welfare in India ?
4. Briefly summarize the welfare work done by the trade union organisations in India.

अध्याय २४

प्रथम पंचवर्षीय योजना

(First Five Year Plan)

प्रस्तावना—

२६ जनवरी सन् १९५० को भारतीय संविधान लागू होने के बाद ही भारत सरकार ने योजना आयोग की स्थापना की, जिसका प्रमुख उद्देश्य भारत के आर्थिक विकास तथा लोगो के रहन सहन के स्तर मे सुधार करने के लिए पच-वर्षीय योजनायें तैयार करना था। पहली योजना १ अप्रैल सन् १९५१ से ३१ मार्च सन् १९५६ तक के लिए बनाई गई थी।

उद्देश्य तथा विशेषतायें—

योजना आयोग के शब्दो मे—' योजना का मुख्य उद्देश्य लोगो के रहन सहन के स्तर को ऊँचा करना तथा उन्हे एक सुखी और अधिक व्यापक जीवन व्यतीत करने का अवसर प्रदान करना था।" इस योजना म देश के सब प्रकार के साधनो—भौतिक तथा मानवीय—को काम मे लाने के ऊपर दृष्टि रखी गई है, जिससे कि देश में वस्तुओ तथा सेवाओ की अधिक उत्पत्ति हो सके और धन वितरण की असमानता भी दूर हो सके। योजना का प्रमुख उद्देश्य एक सर्व मङ्गलकारी राज्य की स्थापना करना है।

मिश्रित अर्थ-व्यवस्था—

इस योजना में मिश्रित अर्थ व्यवस्था की कल्पना की गई है, जिसम सरकार का एक महत्वपूर्ण एव क्रियाशील भाग है। राज्य का काम पूँजी का निर्माण करना, उत्पादन की पद्धति को चालू करने की सुविधा देना तथा समाज मे उत्पादन शक्ति तथा वर्ग सम्बन्धो को एक सूत्र में बाँधना है। जनता को भी काम करने का अवसर मिलना आवश्यक है, परन्तु उसको पूर्ण रूप से स्वतन्त्र नही छोडा जा सकता। उदाहरणार्थ, यद्यपि कृषि व्यक्ति स्वय करते है, परन्तु सरकार का कर्त्तव्य है कि वह सिंचाई, शक्ति, यातायात आदि का प्रबन्ध करे। इसी प्रकार उद्योगो को यद्यपि निजी पूँजी द्वारा चलाया जा सकता है, फिर भी अनेक क्षेत्रो में सरकार की सहायता करनी पडेगी।

निम्न तालिका में प्रथम पंच-वर्षीय योजना का संक्षिप्त विवरण दिया गया है :—

व्यय का मद	करोड़ रुपयों में निर्धारित व्यय	कुल व्यय का प्रतिशत
कृषि एवं सामूहिक विकास	३६१	१७.५
सिंचाई	१६८	८.१
बहु उद्देशीय सिंचाई एवं शक्ति योजनायें	२६६	१२.६
शक्ति	१२७	६.१
यातायात व सन्देशवाहन	४६७	२४.०
उद्योग	१७३	८.४
सामाजिक सेवायें	३४०	१६.४
पुनर्वास	८५	४.१
अन्य	५२	२.५
योग	२,०६६	१००.०

देश में बढ़ती हुई बेरोजगारी को देखते हुए योजना प्रस्तुत करने के बाद उसमें कुछ संशोधन करना आवश्यक हो गया, अतः योजना में इधर-उधर कुछ वृद्धि कर दी गई और अन्त में २,३७८ करोड़ रुपये की हो गई। निजी क्षेत्र में भी १,४०० करोड़ से बढ़ा कर १,७०० करोड़ रुपये के व्यय की व्यवस्था की गई।

योजना के लिए निर्धारित लक्ष्य—

प्रथम पंच वर्षीय योजना के अन्तर्गत अनेक बहुमुखी नदी घाटी योजनायें सम्मिलित की गई, जिनसे १६६ लाख एकड़ अतिरिक्त भूमि की सिंचाई तथा १४६ लाख किलोवाट अतिरिक्त बिजली उत्पन्न होने का अनुमान था। देश में खाद्य उत्पादन में भी इस योजना के फलस्वरूप ७६ लाख टन की वृद्धि की कल्पना की गई। इसी प्रकार कपास, पटसन, गन्ना तथा इस प्रकार की अन्य वस्तुओं के उत्पादन में भी काफी वृद्धि का अनुमान लगाया गया। इन लक्ष्यों की प्राप्ति के अलावा सहकारी ग्राम प्रबन्ध, सामुदायिक ग्राम योजनायें तथा राष्ट्रीय विस्तार सेवा खण्डों के माध्यम से ग्रामीण जीवन के सर्वमुखी विकास पर जोर दिया गया। योजना में उद्योग धन्धों के विकास पर १७३ करोड़ रुपया व्यय करने की व्यवस्था थी, जिसमें विशेष बल लोहा तथा स्पात उद्योग तथा भारी रासायनिक पदार्थों के विकास पर दिया गया। कुटीर तथा छोटे पैमाने के उद्योगों के विकास को भी पर्याप्त स्थान मिला। अन्य उद्योगों की उत्पादन क्षमता को देखते हुए उत्पादन में वृद्धि के लक्ष्य निर्धारित किये गये। निजी क्षेत्र द्वारा उद्योगों के विकास पर २३३ करोड़ रुपये के व्यय का अनुमान था। राष्ट्रीय सड़कों के

विकास के लिए २६ करोड रुपये तथा राज्यो के अधीन सडको के विकास के लिए ७३'५४ करोड रुपये की व्यवस्था की गई। जहाजी कम्पनियो के विकास के लिये सहायतार्थ १५ करोड रुपया, कान्डला के नये बन्दरगाह के लिए १२'५ करोड रुपए की व्यवस्था की गई। समाज सेवाग्रो के लिए जो धन व्यय होना था उसमें से शिक्षा पर १५१ करोड रुपया, स्वास्थ्य पर ९९ करोड रुपया, मकानो के निर्माणो पर ४९ करोड रुपया, श्रम हितकारी कामो के लिए ७ करोड रुपया तथा पिछडी हुई जातियो के लिए २९ करोड रुपये भी व्यवस्था की गई। यह भी कल्पना की गई कि सन् १९५८ ५९ तक भारत की राष्ट्रीय आय १० हजार करोड रुपए हो जायगी। रोजगार के सम्बन्ध में यह अनुमान लगाया गया कि योजना काल में लगभग ५५ लाख व्यक्तियो को पूर्ण रोजगार तथा ३३ लाख व्यक्तियों को अर्द्ध रोजगार प्राप्त हो सकेगा।

योजना की वित्त-व्यवस्था—

योजना पर व्यय होने वाले २,०६९ करोड रुपयों में से विभिन्न साधनो द्वारा जो धन प्राप्त होने की सम्भावना थी, उसका अनुमान निम्न तालिका से लगाया जा सकता है :—

(करोड रुपए)

केन्द्रीय सरकार द्वारा बचत	१६०
रेलों की बचत	१७०
राज्य सरकारो द्वारा बचत	४०८
सार्वजनिक ऋण	११५
छोटी बचतें	१७०
डिपॉजिट एव प्रॉवीडेन्ट फण्ड	२३५
विदेशी सहायता	५२१
धाटे का राजस्वन	२९०
योग	२,०६९

प्रथम पच-वर्षीय योजना की सफलतायें—

प्रथम पच वर्षीय योजना ने प्रारम्भ के वर्षों में बहुत थोडी प्रगति की। वैसे तो सशोधित अनुमान के अनुसार योजना काल में विकास कार्यों पर कुल २,३५६ करोड रुपए व्यय होना था, किन्तु वास्तव में केवल १,९६० करोड रुपया व्यय किया जा सका, अर्थात् प्रथम पच वर्षीय योजना पर अनुमान से १७% कम व्यय किया जा सका।

आयोजना पर खर्च हुए १,६६० करोड रु० निम्न साधनो से प्राप्त हुए। ये आँकडे पाँचवें वर्ष में हुए वास्तविक खर्च के अनुमानो पर आधारित किये गये हैं:—

	रु० करोडो में	कुल प्रतिशत
कर और रेलो की बचत	७५२	३८
ऋण	२०५	१४
छोटी बचत और अन्य कोषो मे जमा हुआ धन	३०४	१६
अन्य पूँजीगत साधनो से प्राप्ति	९१	५
विदेशी सहायता	१८८	१०
घाटे की व्यवस्था से	४२०	२१
योग	१,९६०	१००

२२ जून सन् १९५७ को योजना आयोग के उपसभापति ने जो विज्ञप्ति प्रकाशित करने के लिए तैयार की, उसमें प्रथम पच वर्षीय योजना की प्रगति तथा सफलताओ की विवेचना की गई है। इसमे एक महत्त्वपूर्ण बात की ओर सकेत किया गया है, वह यह है कि यद्यपि सार्वजनिक क्षेत्र में अनुमान से लगभग ४२६ करोड रुपया कम खर्च हुआ, परन्तु निजी क्षेत्र ने इस दिशा में पूरी सफलता प्राप्त की, अर्थात् औद्योगिक विकास के लिए २३३ करोड रुपये व्यय होने का अनुमान था, जबकि वास्तव में २३१ करोड रुपया व्यय किया गया। प्रथम पच वर्षीय योजना का व्यापक प्रभाव इस बात से प्रकट होता है कि योजना काल मे वास्तविक राष्ट्रीय आय में लगभग १८% की वृद्धि हुई है। इस अवधि में प्रति व्यक्ति आय में ११% की वृद्धि और उपभोग व्यय में ९% की वृद्धि हुई है।

सबसे महत्त्वपूर्ण प्रगति कृषि उत्पादन के क्षेत्र में हुई। खाद्यान्न का उत्पादन २०%, कपास का उत्पादन ४५% तथा मुख्य तिलहनों का उत्पादन ८% बढ गया। सिंचाई की छोटी और बडी योजनाओ के परिणामस्वरूप सिंचित भूमि में १,०६० एकड भूमि की वृद्धि हो गई है। बिजली का उत्पादन सन् १९५० में ७७ करोड ५० लाख किलोवाट घन्टे था। सन् १९५५ मे बढकर ११ अरब किलोवाट हो गया।

औद्योगिक उत्पादन का सूचक अङ्क सन् १९५० में १०५ था, जो सन् १९५५ में बढकर १६१ हो गया। सार्वजनिक क्षेत्र मे योजना काल के अन्तर्गत जो नए-नए कारखाने खोले गये उनमें से मुख्य य है :—(१) रासायनिक खाद का कारखाना, सिन्दरी, (२) रेल का इञ्जन बनाने का कारखाना, चित्तरजन; (३) हिन्दुस्तान केबिल्स, दुर्गापुर, (४) हिन्दुस्तान शिप यार्ड, विशाखापट्टम, (५) इंटेग्रल कोच फैक्टरी, मद्रास;

(६) हिन्दुस्तान मशीन टूल, मैसूर, (७) नेशनल इन्सट्रू मेन्टल फैक्टरी, कलकत्ता, (८) टेलीफून फैक्टरी, बगलौर। पहली योजना की अवधि मे अर्थ व्यवस्था मे कुल विनियोग ३,१०० करोड रुपया आंका गया है। विनियोग की दर सन् १९५०-५१ मे लगभग ५% थी, जो सन् १९५५-५६ में बढकर ७ ३% हो गई। विनियोग में हुई इस वृद्धि के साथ देश में मुद्रा स्फीति में वृद्धि हुई। इस योजना के आरम्भ के काल की तुलना मे सामान्य मूल्य स्तर मे योजना समाप्त होन तक लगभग १३% की कमी हो गई। विदेशी भुगतान का सन्तुलन अनुकूल ही रहा है। वरन् उसमें कुछ थोडी सी बचत हुई।

उपसहार—

भारत के आर्थिक पुनरुत्थान के हेतु यह एक यथार्थ योजना है, जिसमें देश की प्रायः सभी समस्याओ पर विचार किया गया है। इस योजना मे कृषि, सिंचाई, शक्ति, यातायात आदि को प्राथमिकता देकर देश की वास्तविक समस्या को हल करने का प्रयत्न किया गया है। देश में बढती हुई बेरोजगारी की समस्या को हल करने के लिए १७५ करोड की व्यवस्था की गई है और कुटीर उद्योगो के प्रोत्साहन पर विशेष बल दिया गया है। इस योजना को प्रजातन्त्रात्मक ढग से चलाना इस बात का द्योतक है कि सरकार देश के सभी लोगो को इस योजना मे हाथ बँटाते देखना चाहती है। इतना होते हुए भी इसकी कुछ त्रुटियाँ है।

श्री गोरवाला ने लिखा है—"योजना कमीशन केवल ऐसी योजनाएँ बनाता है, जिनका सम्बन्ध केवल राजकीय क्षेत्र के व्यय से है, परन्तु ऊँचा नाम देने के लिए वह इसे प्रथम पच वर्षीय योजना बताता है।" कुछ आलोचको के अनुसार इस योजना के निर्माताओ ने अपने उद्देश्यो का बढा चढा कर दिखाया है। दूसरे, योजना का आर्थिक आधार सुदृढ नही है, क्योंकि इसमें आय की प्राप्ति के जो साधन अपनाये गये है, वे अवास्तविक है। करो द्वारा जो आय की आशा की गई है, वह जनता की कर-देय क्षमता से कही अधिक है। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के प्रतिनिधि मण्डल ने बताया है कि योजना में उल्लिखित विनियोग का लक्ष्य मुद्रा स्फीति के खतरे से प्राप्त किया जा सकेगा, यदि पर्याप्त मात्रा म विदेशी सहायता उपलब्ध न हो सकी। तीसरे, योजना में विदेशी सहायता पर बहुत आशा बाँधी गई है। चौथे, योजना मे कृषि को अधिक महत्त्व दिया गया है तथा औद्योगिक विकास को विशेष महत्त्व नही दिया गया, अत. योजना की पूर्ति के बाद भी हमारा देश एक कृषि प्रधान देश ही रहेगा। पाँचवे, योजना की अधिकतम राशि का व्यय ग्रामीण क्षेत्र में होने के कारण राष्ट्रीय आय गाँवो मे रहेगी, जिसको पुन प्राप्त करने के लिए अथवा उनकी अतिरिक्त क्रय शक्ति को सोखने के लिए कोई आयोजन नही है। छठे, जन सख्या की वृद्धि को रोकने के लिए 'कौटुम्बिक नियोजन की आवश्यकता' के अतिरिक्त योजना मे अन्य कोई भी प्रभाव

शाली उपाय नही बताया गया है। सातवें, हमारी योजना में दीर्घकालीन याजनाओं को महत्त्व दिया गया है। रूस ने भी ऐसा ही किया था, किन्तु भारत की आर्थिक स्थिति में दीर्घकालीन योजनाओं के साथ साथ अल्पकालीन योजनाओं को भी समान महत्त्व देना आवश्यक था, जिससे कि देश को शीघ्र लाभ पहुँचे। आठवें, आर्थिक विकास की किसी भी योजना की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि उसके सचालन के लिए विश्वसनीय शासन और समन्वय प्रणाली हो, किन्तु भारत का अब तक का अनुभव अधिक आशाजनक नही है। नदी घाटी योजनाओं का कार्य सचालन बडा असन्तोषजनक रहा। साथ ही, वर्तमान शासन केवल आय के साधनो का उपयोग करने में ही असफल नही रहा, वरन् वह विवेकपूर्ण व्यय करने में भी असफल रहा है, अतः आवश्यकता इस बात की है कि लोक सेवा आयोग की भाँति एक यूनियन आर्थिक सेवा आयोग की स्थापना की जाय, जो योजना की शासन प्रणाली के लिए आवश्यक प्रशासको की नियुक्ति करे। नवें, योजना में वितरण की असमानता को दूर करने के लिए भी कोई सक्रिय सुझाव नही दिये गये है। इन आलोचनाओं के होने हुए भी हमारे देश में पचवर्षीय योजना का अभूतपूर्व स्वागत किया गया है, क्योंकि यह देश के सन्तुलित आर्थिक विकास का सच्चा प्रयत्न है। साराश में, इसमें वास्तविकता की गन्ध है तथा योजनाओं को उपलब्ध स्रोतो से सम्बन्धित किया गया है।

STANDARD QUESTION

1. Discuss the essential features of the First Five Year Plan. How far it has been successful in achieving its objectives ?

———

अध्याय २५

द्वितीय पचवर्षीय योजना

(Second Five Year Plan)

प्रस्तावना—

हमारे राष्ट्र के आर्थिक पुनरुत्थान की प्रथम पचवर्षीय योजना ३१ मार्च १९५६ को समाप्त हुई। इस योजना के फलस्वरूप समस्त देश में आशा का वायुमण्डल फैल गया और इसी से प्रेरित होकर हमने द्वितीय पचवर्षीय योजना का श्रीगणेश किया। राष्ट्रीय विकास परिषद् में भाषण करते हुए द्वितीय पचवर्षीय योजना के सम्बन्ध में प्रधानमन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने कहा था— हमने अपनी यात्रा का पहला चरण पूरा कर लिया है किन्तु हम तुरन्त ही अपनी दूसरी यात्रा के लिए प्रस्थान कर देना चाहिये।

द्वितीय पच वर्षीय योजना के उद्देश्य—

द्वितीय पच वर्षीय योजना निम्न उद्देश्यों को सामने रख कर बनाई गई है—

(१) राष्ट्रीय आय में वृद्धि—५ वर्ष की अवधि में राष्ट्रीय आय में २५% की वृद्धि का अनुमान लगाया गया है जिससे कि प्रति व्यक्ति आय तथा प्रति व्यक्ति उपयोग में वृद्धि हो व हमारे रहन सहन का स्तर ऊँचा हो।

(२) आधारभूत उद्योगों का विकास—द्वितीय योजना में आधारभूत उद्योग जैसे—लौह एवं स्पात उद्योग मशीन बनाने के उद्योग आदि पर विशेष महत्त्व दिया गया है क्योंकि देश के भावी औद्योगीकरण के लिए उनकी उन्नति आवश्यक है।

(३) बेरोजगारी को दूर करना—द्वितीय पच वर्षीय योजना में लगभग १ करोड़ व्यक्तियों को रोजगार दिलाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है।

(४) समाजवादी अर्थ-व्यवस्था—आर्थिक दृष्टि से समाजवादी व्यवस्था को हमने अपना ध्येय मान लिया है अतः अब हम लाभ की दृष्टि से नहीं वरन् सामाजिक हित की दृष्टि से आगे बढ़ना है। आर्थिक विकास का अधिकाधिक लाभ उन लोगों को मिलना चाहिए जो अभी तक इससे वंचित रहे हैं। इस प्रकार धन तथा आर्थिक शक्ति भी किंचित लोगों के पास इकट्ठा नहीं होना चाहिए। अब ऐसी व्यवस्था की

आवश्यकता है जिसमे अभी तक का उपेक्षित व्यक्ति सगठित प्रयत्न से अपने को और अपने देश को धन धान्य मे सम्पन्न बना सके।

योजना की संक्षिप्त रूपरेखा—

इस योजना में कुल ७,२०० करोड रुपया खर्च होगा, जिसम से ४,८०० करोड रु० सरकार तथा २,४०० करोड रुपया निजी उद्योगपति खर्च करेंगे। इस प्रकार जहां प्रथम योजना में सरकार व उद्योगपतियों का भाग ५० ५०% था, वहाँ दूसरी योजना मे वह क्रमश. ६१ व ३६% है। सरकारी क्षेत्र के कुल ४,८०० करोड रुपए में से केन्द्रीय सरकार २,५५६ करोड रुपया और राज्य सरकार २,२४१ करोड रुपया खर्च करेंगी। जिन मदो पर रुपया व्यय किया जावेगा, उनका ब्यौरा इस प्रकार है—

	कुल व्यय (करोड रु०)	%
(१) कृषि तथा सामुदायिक विकास	५६८	११·८
(२) सिंचाई और बिजली	६१३	१९·०
(३) उद्योग और खनिज	८९०	१८ ५
(४) यातायात और सन्देशवाहन	१,३८५	२८·९
(५) समाज सेवायें	९४५	१९·७
(६) विविध	९९	२ १
योग	४,८००	१००·०

उपर्युक्त आंकडो से स्पष्ट है कि द्वितीय पच-वर्षीय योजनावधि में उद्योगो, खनिज, यातायात तथा सन्देशवाहन के साधनो के विकास पर पर्याप्त जोर दिया गया है। योजना के कुल व्यय का लगभग आधा इनके विकास पर व्यय किया जाएगा, जबकि प्रथम योजना में कुल व्यय का ⅓ भाग ही इन पर व्यय किया गया था। यदि बिजली को भी औद्योगिक विकास का अङ्ग मान लिया जाए, तो यह व्यय कुल व्यय का लगभग ५९% हो जाता है।

सार्वजनिक क्षेत्र के अलावा निजी क्षेत्र के विकास कार्यों पर जो व्यय होगा, उसका ब्यौरा इस प्रकार है—

(१) सगठित उद्योग और खानें	५७५ करोड रुपए
(२) बागान, बिजली उद्योग और रेलो को छोडकर अन्य यातायात के साधन	१२५ ,, ,,
(३) निर्माणी उद्योग	१,००० ,, ,,
(४) कृषि तथा ग्राम और छोटे पैमाने के उद्योग	३०० ,, ,,
(५) स्टॉक	४०० ,, ,,
कुल योग	२,४०० ,, ,,

इस प्रकार सार्वजनिक क्षेत्र और निजी क्षेत्र मे मिलाकर दूसरी पच-वर्षीय योजना पर केवल ७,२०० करोड रुपए व्यय होने का अनुमान है।

योजना का वित्तीय प्रबन्ध—

द्वितीय पच वर्षीय योजना के सार्वजनिक व्यय को पूरा करने के लिये निम्न साधनो से धन प्राप्त किया जाएगा।

क्रम सख्या	विवरण	करोड रुपये	
१	घरेलू साधन		
	१—चालू राजस्व से बचत		८००
	(क) कर की वर्तमान दरो के अनुसार	३५०	
	(ख) आन्तरिक करो मे	४५०	
	२—जनता से ऋण के रूप मे		१,२००
	(क) बाजार से ऋण	७००	
	(ख) छोटी बचत	५००	
	३—बजट के अन्य साधनों से		४००
	(क) विकास काय में रैलो का भाग	१५०	
२	(ख) भविष्य निधि तथा जमा खाते	२५०	
	विदेशो से		८००
३	घाटे का बजट बनाकर		१,२००
४	कमी जो स्वदेश में नए साधनों द्वारा पूरी करनी होगी		४००
	कुल योग		४,८००

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि इस पर जो व्यय होगा उसका लगभग

आधा भाग घरेलू साधनो से पूरा किया जायेगा। शेष का ५% भाग घाटे का बजट बनाकर तथा ३३% विदेशी सहायता से पूरा किया जायगा।

द्वितीय योजना के निर्धारित लक्ष्य—

द्वितीय पच-वर्षीय योजना के अन्तर्गत कृषि उत्पादन में १८% वृद्धि का लक्ष्य है, अनाज की पैदावार १५ प्रतिशत अथवा एक करोड टन बढनी है, कपास की ३४ प्रतिशत, शक्कर की २६ प्रतिशत और तिलहन की २१ प्रतिशत। इस समय ८ करोड आदमी राष्ट्रीय विस्तार और सामुदायिक विकास कार्यक्रम मे आते है। दूसरी योजना मे ३२ करोड ५० लाख आ जायेंगे। पहली योजना में १ करोड ७० एकड-भूमि में सिंचाई हुई थी, दूसरी में २ करोड १० लाख एकड अधिक जमीन में सिंचाई की व्यवस्था हो जायगी। पहली योजना में शुरू में २३ लाख किलो-वाट बिजली पैदा होती थी। सन् १९६०-६१ तक ३४ लाख किलोवाट बिजली और पैदा होने लगेगी तथा कुल मिलाकर ६८ लाख किलोवाट हो जायगी। रेलो द्वारा यात्रियो के यातायात मे तथा माल की ढुलाई में ३४% वृद्धि होने का अनुमान है, यद्यपि आवश्यकता यह होगी कि इससे भी अधिक वृद्धि की जाय। सन् १९५८-५९ में १३ लाख टन होने लगेगा। इसी प्रकार कोयले का उत्पादन ३७० लाख टन से बढ कर ६०० लाख टन व सीमेन्ट का ४८ लाख टन से बढ कर १०० लाख टन हो जायगा। इस प्रकार उत्पादन सामग्री की तैयारी कुल १५०% बढने की आशा है। राष्ट्रीय आय मे भी २५% वृद्धि की आशा है, अर्थात् सन् १९५१-५६ में १०,८०० करोड रुपये से बढकर सन् १९६०-६१ मे यह १,३४,०८० करोड रुपये हो जायगी। प्रति व्यक्ति आय २८० रुपये से १८% बढकर ३३० रुपये हो जायगी।

द्वितीय योजना की प्रगति—

द्वितीय योजना के प्रथम वर्ष में जिस प्रकार कार्य चला उसके अध्ययन से यह प्रगट होता है कि यद्यपि इस अवधि मे सामान्य दशायें बहुत अनुकूल नही थी तथापि कुछ क्षेत्रो में बहुत प्रगति हुई।

कृषि कार्य-क्रम—

खाद्य उत्पादन कार्यक्रम के अनुसार, सन् १९५६-५७ में २·५ मि० टन की वृद्धि होने की आशा थी, जबकि वास्तविक वृद्धि केवल १·४ मि० टन हुई और सन् १९५६-५७ में कुल खाद्य उत्पादन ६६·२ मि० टन रहा, जबकि सन् १९५५-५६ मे वह ६४·८ मि० टन था। सन् १९५५-५६ की अपेक्षा चावल और गेहूँ का उत्पादन क्रमशः १·३ मि० एव ३ मि० टन अधिक हुआ। मोटे अनाजो का उत्पादन बिल्कुल नही बढ सका है और दालो का उत्पादन तो ·२ मि० टन घट गया है। व्यापारिक फसलो के सम्बन्ध में स्थिति कुछ अच्छी रही। तिलहन का उत्पादन ५·८९ मि० टन रहा,

जबकि सन् १९५५ ५६ म वह ५ ६६ मि० टन था। कपास का उत्पादन ४८ लाख गाँठ हुआ, जोकि पिछले वर्ष से ८ लाख गाँठ अधिक है। गन्ने का उत्पादन ६ ३ मि० टन हुआ, जाकि सन् १९५५ ५६ के स्तर से '४ मि० टन अधिक है और जूट का उत्पादन भी कुछ थोडा सा बढा है। पिछले वर्ष उत्पादन ४१ ९७ लाख गाठें था, जबकि इस वर्ष वह ४२ २१ लाख गाँठ हुआ।

सन् १९५६ ५७ म ४७५ बीज फार्मों की स्थापना के लिये स्वीकृति दी गई। सन् १९५६ के अन्त तक जापानी ढग से धान की खेती के अन्तर्गत १४ ५ लाख एकड भूमि लाई गई, जबकि सन् १९५६ ५७ के लिये लक्ष्य २० लाख एकड का रखा गया था। सन् १९५६ म ६'७५ लाख टन अमोनियम सलफेट और एक लाख टन फॉस्फेट प्रयोग किया गया, जबकि सन् १९५५ में यह प्रयोग क्रमश ५ लाख टन और ७८ ००० था। केन्द्रीय ट्रेक्टर सगठन द्वारा ८७,००० एकड काँस और जगल भूमि पर भूमि सुधार का काय किया जायगा। द्वितीय पच वर्षीय योजना की अवधि म केन्द्रीय गोदाम निगम देश भर में १०० गोदाम खोलेगा, जिनमें ५ ००० टन से २०,००० टन तक माल जमा किया जा सकता है। इसी प्रकार १३ राज्य निगम मिलकर २०० गोदाम खोलेंगे, जिनमें २,००० टन स लेकर १०,००० टन तक माल रखा जा सकेगा।

सामुदायिक योजनायें एव राष्ट्रीय विस्तार सेवा—

सन् १९५६ ५७ में ४९५ राष्ट्रीय विस्तार सेवा खडा (जिनमें ४९,६०० गाव और ३२ ७ मि० जन सख्या का समावेश है) पर काय आरम्भ किया गया। इसके अतिरिक्त २५० सामुदायिक विकास खड राष्ट्रीय विस्तार सेवा खडा स बनाये गये, जिनके अन्तगत ३५,७५२ गाँव और १८'३ मि० जन सख्या प्रभावित होती है। सन् १९५२ और सन् १९५३ म चालू किये गये क्रमश ५५ सामुदायिक योजनायें और ५३ सामुदायिक विकास खड अक्टूबर सन् १९५६ में पूरा हो गय।

सिचाई एव शक्ति का उत्पादन—

मध्यम एव बडी सिंचाई योजनाओं से सन् १९५६ ५७ में १'५ मि० एकड अतिरिक्त भूमि पर सिंचाई उपलब्ध हुई तथा छोटी सिंचाई योजनाओं की पूर्ति से १ ६ मि० एकड पर सिंचाई और हुई। वर्ष के दौरान में लगभग ६० बडी और मध्यम योजनायें पूरी की गई। हीराकुड योजना का सन् १९५७ म उद्‌घाटन किया गया। २४,००० किलोवाट का प्रथम उत्पादन यत्र दिसम्बर सन् १९५६ म लगाया गया। मार्च सन् १९५७ तक हीराकुड नहर व्यवस्था द्वारा १,५७,००० एकड भूमि पर सिंचाई की सुविधा विस्तृत की गई। सन् १९५६ ५७ के अन्त तक कुल विद्युत उत्पादन क्षमता ३ ६६ मि० किलोवाट हो गई थी।

औद्योगिक उत्पादन—

सन् १९५५ की अपेक्षा सन् १९५६ में उत्पादन अधिक हुआ। औद्योगिक उत्पादन के संशोधित सूची अंक ने १२२.१ से १३२.७ तक वृद्धि दिखाई। रेडियो रिसीवरों का उत्पादन ८६% अधिक रहा। साइकिल, ओटोमोबाइल, इलैक्ट्रिक मोटर, ट्रान्सफार्मर और शक्ति संचालित पम्पों के उत्पादन में ३३ से ६०% के मध्य में वृद्धि हुई। सीमेण्ट, चीनी और डीजल इंजिन आदि ८ अन्य उद्योगों के उत्पादन में लगभग १० से २५% वृद्धि हुई। सीमेन्ट का उत्पादन सन् १९५६-५७ में ४.९ मि० टन था, जबकि गत वर्ष वह ४.४५ मि० टन था। इसी प्रकार चीनी का उत्पादन इस वर्ष १.९५ मि० टन हुआ, जबकि गत वर्ष १.६१ मि० टन था। निर्मित स्टील का उत्पादन १.३१ मि० टन हुआ, जो ४% अधिक था और मिल के बने सूती कपड़े का उत्पादन ५,२८१ मि० गज था, जो गत वर्ष की अपेक्षा ४% अधिक हुआ। कमाई हुई खालों और जूता के उत्पादन में ५% वृद्धि हुई। चाय में वृद्धि नहीं के बराबर थी। हैन्डलूम उत्पादन सन् १९५५ में १,४७३ मि० गज से बढ़ कर सन् १९५६ में १,५४१ मि० गज तक पहुंच गया। सन् १९५६-५७ में ८७ मील लम्बी नई रेल्वे लाइनें ट्रैफिक के लिए खोली गई और ५२४ मील नई लाइनों का निर्माण प्रगति में है। ७०० मील दुहरे पथ का कार्य भी चल रहा है। सन् १९५६-५७ में ५५७ लोकोमोटिव, १,९३१ डिब्बों और २७,१८४ वैगनों के लिये आदेश दिये गए।

१५० मील लम्बे छूटे हुए टुकड़ों और ८ बड़े पुलों का निर्माण, ८०० मील विद्यमान टुकड़ों का सुधार और २०० मील सुधरे टुकड़ों का दोराहा आवागमन के लिए विस्तृत करने का लक्ष्य था जो काफी सीमा तक पूरा हो गया। नागरिक हवाई यातायात का कार्यक्रम निश्चयानुसार ही चला। सन् १९५६-५७ में, एयर इण्डिया इन्टरनेशनल कॉर्पोरेशन ने ३ सुपर कान्स्टेलेशन्स प्राप्त किये और ३ बोइंग जट एयरक्राफ्ट के लिए आदेश दिया। इण्डिया एयर लाइन्स कॉर्पोरेशन ने सन् १९५६-५७ में ५ विक्स विस्काउन्ट्स के लिये महत्वपूर्ण मार्गों पर चलाने के हेतु आदेश दिया है। कुशल कर्मचारियों की आवश्यकता पर अधिक ध्यान दिया गया।

यद्यपि कुछ लोगों के विचार से हमारी द्वितीय पंच वर्षीय योजना अत्यधिक महत्त्वाकांक्षी है, परन्तु वास्तव में ऐसा कहना भूल है। देश के विशाल स्वरूप को देखते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि हमारे निर्धारित लक्ष्य अधिक ऊँचे हैं। अभी तक हमें जो सफलता मिली है वह सन्तोषजनक है और साथ में प्रेरणात्मक भी। हमें आशा ही नहीं वरन् पूर्ण विश्वास है कि इस योजना अवधि के व्यतीत होने पर हम अपनी चहुँमुखी प्रगति का अनुभव करेंगे।

द्वितीय पंच-वर्षीय योजना के अन्तर्गत विदेशी सहायता एवं घाटे की अर्थ व्यवस्था

द्वितीय योजना के अन्तगत केवल सावजनिक क्षेत्र में ४,८०० करोड़ रुपया व्यय होने का अनुमान है। इतनी बड़ी धनराशि प्राप्त करने के लिए जिन विभिन्न साधनों की शरण ली गई है, उनमें से विदेशी सहायता एवं घाटे का राजस्वन भी है। विदेशी सहायता से ८०० करोड़ रुपया और घाटे के राजस्वन से १,८०० करोड़ रुपया प्राप्त करने की आशा की गई है, जानि कुल व्यय का ५२% है। प्रथम पंच-वर्षीय योजना में विदेशी सहायता से १८७ करोड़ रुपया तथा घाटे के राजस्वन से १४५ करोड़ रुपया प्राप्त किया गया था, अतः यह स्पष्ट है कि द्वितीय पंच वर्षीय योजना में इन दोनों साधनों को अधिक महत्त्व का स्थान दिया गया है।

द्वितीय पंच-वर्षीय योजना के पहले दो वर्षों में योजना पर १,४९६ करोड़ रुपया खर्च किया गया। चालू वर्ष के खर्च का योग ९६० करोड़ रुपया हो सकता है। इस प्रकार तीन वर्षों के खर्च का योग लगभग २,४५६ करोड़ रुपया होता है। प्रथम तीन वर्षों में होने वाले २,४५६ करोड़ रुपयों में से विदेशी सहायता एवं घाटे की वित्त व्यवस्था से क्रमशः ४३८ और ६१७ करोड़ रुपया मिलने की आशा है। आयोजन के लिए उपलब्ध साधन अब तक आशा से कहीं कम रहे हैं। सन् १९५७-५८ में बजट में ४६४ करोड़ रु० का घाटा रहा था। सन् १९५८-५९ के बजट में ऋणों तथा छोटी बचत में काफी अधिक धन मिलने की आशा की गई है। सन् १९५७-५८ की अपेक्षा घाटे की वित्त व्यवस्था में २५० करोड़ रु० की कमी हो जायगी, परन्तु विदेशी सहायता जहाँ सन् १९५७-५८ में लगभग १०० करोड़ रु० की प्राप्ति हुई थी वहाँ चालू वर्ष में वह बढ़कर ३०० करोड़ रु० हो जाने की आशा है। इन आँकड़ों से यह स्पष्ट है कि योजना की सफलता में विदेशी सहायता तथा घाटे की वित्त व्यवस्था का बहुत अधिक महत्त्व है।

द्वितीय पंच-वर्षीय योजना के अन्तर्गत विदेशी सहायता—

जिस समय द्वितीय पंच वर्षीय योजना का निर्माण किया गया था, उसी समय राजनैतिक क्षेत्रों में इस विवाद का बोलबाला था कि भारत सरकार के लिए ८०० करोड़ रुपये की विदेशी सहायता प्राप्त करना कठिन समस्या है। योजना के प्रारम्भिक दो वर्षों में ही कुछ ऐसी स्थिति पैदा हो गई है, जिसके कारण विदेशी भुगतान के सम्बन्ध में एक संकट सा पैदा हो गया था। इस आर्थिक संकट को दूर करने के उद्देश्य से ही सितम्बर सन् १९५७ में हमारे वित्त मन्त्री श्री टी० टी० कृष्णामाचारी अमेरिका, कनाडा, इंगलैंड तथा पश्चिमी जर्मनी के दौरे पर गये थे और उन देशों में उन्होंने इस बात की छान बीन की कि वहाँ से भारत को किस सीमा तक आर्थिक

सहायता मिल सकती है। अमेरिका में उन्हें लेशमात्र भी सफलता न मिली। उनकी असफलता के दो मुख्य कारण रहे। प्रथम तो, भारत की आर्थिक स्थिति, जो समाजवादी अर्थ-व्यवस्था पर आधारित है और जिसके अन्तर्गत शनैः शनैः उद्योग धन्धों का राष्ट्रीयकरण तथा सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार सम्मिलित है, के कारण अमेरिका के पूँजीपति तथा अधिकोष आदि भारत में अपनी पूँजी का विनियोग करने में हिचकते हैं। दूसरे, अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भारत की वैदेशिक नीति से अमेरिका सहमत नहीं है और इसके परिणामस्वरूप वह भारत को उस सीमा तक सहायता करने के लिए तैयार नहीं है, जिस सीमा तक भारत को उसकी सहायता की आवश्यकता है। भारत को केवल दीर्घकालीन ऋण के रूप में विदेशी सहायता की आवश्यकता है, जिसे वह ईमानदार राष्ट्र की भाँति कुछ समय के बाद चुका देगा। अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में भारत की साख आज काफी ऊँची है, किन्तु इतना होते हुए भी अमेरिका, कनाडा अथवा इङ्गलैंड में हमारे टी० टी० कृष्णमाचारी को विशेष सहायता नहीं मिली। हाँ, पश्चिमी जर्मनी, जापान तथा यूगोस्लाविया आदि देशों ने भारत को आर्थिक सहायता देने का वचन दिया है। यह सहायता किस मात्रा में और किस रूप में प्रदान की जायेगी, इस सम्बन्ध में सम्बन्धित देशों के बीच वार्ता शुरू हो गई है। विदेशी भुगतान के घाटे को कम करने के लिए भारत सरकार ने कुछ वस्तुओं, जिनमें चीनी, काली मिर्च, काजू तथा कपड़ा आदि सम्मिलित हैं, के निर्यात को बढ़ाने की व्यवस्था की है। जापान से एक समझौता किया गया है, जिसके अनुसार भारत जापान को कच्चा लोहा निर्यात करेगा और बदले में जापान हमारे देश को मशीनें देगा। श्री कृष्णमाचारी के स्वदेश लौटने के बाद विभिन्न राज्य सरकारों को ये आदेश जारी किये गये हैं कि वे खनिज पदार्थों को अधिक मात्रा में निकालने के उद्देश्य से उन सभी व्यक्तियों को उदारतापूर्वक लाइसेन्स प्रदान करें, जिनके आवेदन पत्र राज्य सरकारों के विचाराधीन हैं। १ नवम्बर सन् १९५७ को भारत सरकार ने एक आदेश द्वारा रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया एक्ट में कुछ आवश्यक संशोधन किये हैं, जिनके अनुसार रिजर्व बैंक के पास विदेशी प्रतिभूतियाँ तथा सोने की न्यूनतम मात्रा ३०० करोड़ रुपये से घटाकर २०० करोड़ कर दी गई है। इस प्रकार यह १०० करोड़ रुपया योजना की विदेशी मुद्रा सम्बन्धी आवश्यकता को पूरा करने में प्रयोग हो सकेगा।

घाटे की वित्त व्यवस्था—

साधनों की कमी के कारण आयोजना के शुरू के वर्षों में घाटे की वित्त व्यवस्था का अत्यधिक आश्रय लेना पड़ा है। एक समय इस पाँच वर्षों में अधिक से अधिक ९०० करोड़ रु० तक रखने का था, परन्तु अब यह निश्चित लगता है कि यह राशि १,२०० करोड़ रु० तक हो जायगी, जैसा कि पहले अनुमान किया गया था। सच तो यह है कि यदि (क) साधनों में और अधिक वृद्धि करने तथा (ख) आयोजना

न खर्चों को सीमित रखने के प्रयत्न न किये गये तो घाटे की राशि और भी अधिक बढ़ सकती है।

यदि देश के पास विदेशी विनिमय का बहुत अधिक भण्डार सुरक्षित हो तो कार्यक्रम तैयार करने मे कुछ ढिलाई की जा सकती है, परन्तु वर्तमान स्थिति में तो ऐसा करना सम्भव नही है। अप्रैल सन् १९६० और मार्च सन् १९५८ के बीच रिजर्व बैंक का विदेशी विनिमय पावना घट कर ४७९ करोड रु० रह गया। इसके अलावा अन्त र्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के नाम म जमा ९५ करोड रु० की राशि का भी उपयोग कर लिया गया है। द्वितीय आयोजन आरम्भ होने से अब तक जितनी विदेशी सहायता स्वीकृत हो चुकी है उसका याग ६७६ करोड रु० है। आयोजन की शेष अवधि म विदेशी विनिमय की जो आवश्यकता होगी उसे पूरा करने के लिये ५०० करोड रु० की विदेशी सहायता और भी मिलनी चाहिए। आयोजना की अत्यावश्यक सरकारी आयोजनाओ के लिये भी २९६ करोड रु० की आवश्यकता है।

इस सम्बन्ध म प्रोफेसर शिनोय ने इस बात पर जार दिया था कि घाटे के राजस्वन से देश में मुद्रा स्फीति का भय है। इसके परिणामस्वरूप मूल्यो में जो वृद्धि होगी उसका योजना पर बुरा प्रभाव पड सकता है। सम्भव है कि सरकार ऐसी स्थिति का सामना न कर सके। श्री शिनोय की राय के विपरीत अन्य अर्थशास्त्रियो ने घाटे के राजस्वन का समर्थन किया और यह सुझाव दिया था कि प्रारम्भ से ही सरकार को सचेत रहना चाहिए और मुद्रा स्फीति की रोकथाम के लिए आवश्यक कदम उठाने चाहिए। इसी दृष्टि स सन् १९५६ मे रिजर्व बैंक ऑफ इन्डिया एक्ट में सशोधन किया गया, जिससे बैंक को अधिक नोट छापने की स्वतन्त्रता मिल गई। इसके अतिरिक्त रिजर्व बैंक का साख नियन्त्रण के लिए अधिक व्यापक अधिकार प्रदान कर दिये गये।

द्वितीय योजना के पहले वर्ष मे ही मुद्रा प्रसार के लक्षण नजर आने लगे। फलत सरकार को अपनी नीति म कुछ परिवर्तन करना पडा। श्री कृष्णमाचारी ने घाटे की अर्थव्यवस्था के स्थान पर अतिरिक्त कर लगाना अधिक उपयुक्त बताया। इस नीति के अनुसार सन् १९५७ ५८ के बजट मे कई नये करो की व्यवस्था की गई। इतना होने पर भी योजना के अन्तिम वर्षो मे सरकार को अधिक मात्रा मे घाटे के बजट का सहारा लेना पडेगा, क्योंकि आन्तरिक ऋण एव बचत से भी आशानुकूल धन प्राप्त नही हो सकता।

जब से आयोजना आरम्भ हुई है, करो मे काफी वृद्धि हो गई है। अब तक केन्द्र ने जो कर लगाये है उनमे पाँच वर्षो मे लगभग ७२५ करोड रु० की प्राप्ति होगी। इसी प्रकार इन पाँच वर्षों में राज्यों को करो से १७३ करोड रु० की प्राप्ति होगी। इस

प्रकार आयोजना की अवधि म करा से कुल प्राप्ति ६०० करोड रु० के लगभग होगी। करा म होन वाली इस प्राप्ति का बहुत बडा भाग अन्य मदा पर खच हागा जिनम प्रति रक्षा का खच प्रमुख है। करा से इतनी अधिक प्राप्ति करन का प्रयत्न किये जान पर भी केन्द्रीय याजनाओ के खच क लिय केवल ४५ करोड रु० हा अधिक प्राप्त हो सकेंगे। इसका यह अथ हुआ कि बहुत कम राशि उपलब्ध हो सकेगा। राज्या म अतिरिक्त करा से आयोजना अवधि म १७३ कराड रु० प्राप्त हागे। वित्त आयोग क निश्चयानुसार राज्यो को १६० करोड रु० के अतिरिक्त केन्द्रीय करा म स भी काफी अधिक हिस्सा मिलना था। इनन पर भी आयोजना पर खच करन के लिय राज्या क पास आशा स कही कम धन उपलब्ध हा सका है। यदि यह मान ल कि राज्य करो से २२५ करोड रु० प्राप्त कर सकगे ता वे अपन राजस्व म से आयाजना पर सम्भवत ३५० करोड रु० खच कर सकगे जबकि आशा ३७० करोड रु० खच करन की थी। पहले तान वर्षो म केन्द्र तथा राज्यो क बजटो म आयोजना क लिए जो धन रखा जायगा उसका योग ११०० करोड रु० होगा जबकि पाच वर्षो का अनुदान २४०० करोड रु० था इस प्रकार ४०० करोड रु० की कमा रह जाता है।

उपसहार—

अत यह स्पष्ट है कि ४८०० करोड रुपए की इस योजना की सफलता के लिए धान की अथ व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण स्थान है। इसीलिए यदि पर्याप्त मात्रा म विदेशी सहायता न मिली तो योजना म कमी की जायगी और ऐसा अनुमान है कि निकट भविष्य म हमारे पास विदेशी मुद्रा कोप कुछ भी नहा रह जायगा। द्वितीय पच वर्षीय याजना की रिपोट म बताया गया है कि अप्रल सन् १९५६ म सितम्बर सन् १९५७ की अवधि म ५६१ करोड रुपए हम शोधनाशेष म अधिक देन पड। अक्टूबर सन् १९५७ स माच सन् १९५८ तक यह कमी २३० करोड रुपए की हुई। यदि विश्व मुद्रा कोष के ९५ करोड रुपए को भी इसम सम्मिलित कर लिया जाय तो पिछले दो वर्षो म लगभग ६ अरब रुपए का ह्रास विदेशी मुद्रा म हुआ है। सन १९५८ ५९ के आर्थिक वप के पहले दो महीना म भी हमारे विदेशी मुद्रा कोप म ह्रास शुरू हुआ है। इन दो महीना अप्रैल और मई म हम अपन विदेशी मुद्रा कोष म स ४२ करोड रुपया निकाल चुक है। ३० मई सन् १९५८ को हमारा विदेशी मुद्रा कोष २४२ ४२ करोड रुपया रह गया था।

STANDARD QUESTIONS

1 Summarise carefully the principal objectives of the Second

Five Year Plan In what respects is the second plan different from the First Five Year Plan ?

2 Bring out clearly the essential features of the Second Five Year Plan

3 The Second Five Year Plan is ambitious Comment

4 Write an essay on deficit financing and the problem of foreign exchange with special reference to the Second Five Year Plan

5 Describe briefly the principal achievement of Second Five Year Plan

अध्याय २९

तृतीय पंच-वर्षीय योजना

(Third Five Year Plan)

प्रारम्भिक—

गत दस वर्षों में पहली और दूसरी पंच वर्षीय योजनाओं के द्वारा देश के प्राकृतिक प्रसाधनों और जनता की शक्ति को राष्ट्र के विकास में लगाने की कोशिश की गई है। प्रारम्भ में इस बात का प्रयत्न किया गया कि योजना का उद्देश्य केवल उत्पादन को बढ़ाना और देश की आर्थिक दशा सुधारना ही नहीं है, वरन् स्वतन्त्रता और लोकतन्त्र पर आधारित ऐसी सामाजिक, आर्थिक व्यवस्था की रचना करना है, जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं को अनुप्राणित करे। देश को दूसरे महायुद्ध और बँटवारे से जो हानि पहुँची थी, पहली योजना में उसे पूरा करने की और आर्थिक व्यवस्था की नींव मजबूत करने की कोशिश की गई और संविधान में दिए हुए निर्देशक तत्वों के अनुरूप सामाजिक और और आर्थिक नीतियाँ भी ग्रहण की गयीं। सामुदायिक विकास योजना का आरम्भ और भूमि सुधार इस योजना की उल्लेखनीय बातें हैं। दूसरी योजना में पहली योजना की ही नीतियों को जारी रखते हुए पैदावार बढ़ाने, विकास में अधिक रुपया लगाने और लोगों को अधिक काम देने की कोशिश की गई। इसमें आर्थिक उन्नति की गति को तेज करने पर, बुनियादी उद्योगों की स्थापना पर, रोजगार के साधनों को बढ़ाने पर, आय और धन की विषमताओं को कम करने पर और आर्थिक शक्ति को थोड़े से लोगों के हाथों में जाने से रोकने पर, जोर दिया गया। पहली योजना में राष्ट्रीय आय में प्रति वर्ष ३।। प्रतिशत और दूसरी योजना में प्रति वर्ष ४ प्रतिशत की वृद्धि हुई।

तृतीय पंच-वर्षीय योजना की विशेषतायें

योजना आयोग वास्तव में बधाई का पात्र है जिसने ११'२५० करोड़ रु० की तृतीय पंच-वर्षीय योजना की रूपरेखा तैयार करके भारत की जनता की समृद्धि के द्वार खोल दिए हैं। हमारी तीसरी पंच-वर्षीय योजना, देश की पंच-वर्षीय योजनाओं की कड़ी में मध्य की योजना है। यह योजना बहुत वृहदाकार योजना है। इस

योजना का लक्ष्य प्रथम और द्वितीय योजनाओं के सम्मिलित लक्ष्यों से भी बहुत ऊँचा है। पहली दो योजनायें क्रमश २३ और २८ अरब रुपये की थी। तृतीय योजना १०२ अरब रुपये की है। इसका कायकाल १ अप्रैल सन् १९६१ से ३१ मार्च १९६६ तक रखा गया है। इसका मुख्य लक्ष्य है, सन् १९६५ तक अन्न के मामले म देश को स्वावलम्बी बनाना। इस योजना के पूर्ण होने पर हम विदेशो से अनाज का आयात नहीं करना पडेगा। निम्न पक्तियाँ तृतीय पच वर्षीय योजना के प्रमुख पाँच लक्ष्यो का बतलाती हे —

तृतीय योजना के लक्ष्य

(१) राष्ट्रीय आय पाँच प्रतिशत प्रति वर्ष के हिसाब मे पाँच वर्षों मे २५ प्रतिशत बढायी जाये।

(२) खाद्यान्न क सम्बन्ध म स्वावलम्बी बना जाय।

(३) फौलाद, इधन और बिजली जैसे आधारभूत उद्योगो का बढाया जाय जिसम देश का औद्योगीकरण आन्तरिक स्रोतो से ही किया जा सके।

(४) रोजगारी की सम्भावनायें बढा कर जनता के हाथो का पूरा पूरा उपयोग किया जाय।

(५) आय और सपत्ति का फर्क कम किया जाय और आर्थिक शक्ति का समुचित वितरण हो।

प्रस्तुत योजना, जो योजना आयोग द्वारा २६५ पृष्ठ की पुस्तक मे विस्तार-पूवक समझाई गयी है, पिछली योजनाओ की अपेक्षा काफी विस्तृत है। भारत-चीन के तनावपूर्ण सम्बन्धो के कारण रक्षा व्यय अधिक बढ गया है जिससे अब प्लान पर कुल विनियोग १०,२०० करोड रु० व चालू खर्चा १,०५० करोड रुपये—कुल मिलाकर ११,२५० करोड रुपया खच किया जायगा। इसमे निजी क्षेत्र द्वारा किया जाने वाला ४,००० करोड रुपये का विनियोग भी सम्मिलित है। निम्नलिखित तालिकायें द्वितीय व तृतीय पच वर्षीय योजनाओ में सरकारी व निजी क्षेत्र मे किए जाने वाले व्यय के विभाजन पर प्रकाश डालती हैं —

तालिका I

दूसरी और तीसरी योजना मे सरकारी क्षेत्र मे व्यय का विभाजन

(करोड रु० में)

	व्यय		प्रतिशत	
	दूसरी योजना	तीमरी याजना	दूसरी याजना	तीसरी योजना
१ कृषि और छोटी मिचाई-योजनाएँ	३२०	६२५	६ ६	८ ६
२. सामुदायिक विकास और सहकार	२१०	४००	४·६	५ ५
३ बडी और मध्यम सिचाई योजनाए	४५०	६५०	६·८	६ ०
४. जोड १, २ ३	६८०	१६७५	२१ ३	३२ १
५. बिजली	४१०	६२५	८·६	१२ ८
६ ग्राम और लघु उद्योग	१८०	२५०	३ ६	३ ४
७. उद्योग और खनिज	८८०	१५००	१६ १	२०·७
८ परिवहन और सचार	१२६०	१४५०	२८·१	२०·०
६. जोड ५ स ८	२७६०	४१२५	६० ०	५६ ९
१० सामाजिक सेवाएँ	८६०	१२५०	१८ ७	१७ २
११ उत्पादन में रुकावट न आना	——	२००	——	२ ८
१२ कुल जोड	४६००	७२५०	१००	१००

तालिका II

दूसरी और तीसरी योजना मे निजी क्षेत्र मे व्यय का विभाजन

करोड रु० में

	दूमरी योजना	तीसरी याजना
१. कृषि (सिंचाई सहित)	६७५	८५०
२ बिजली	४०	५०
३. परिवहन	१३५	२००
४. ग्राम और लघु उद्याग	२ ५	३२५

५ बड और मध्यम उद्योग और खनिज	७००	१०५०
६ आवास और अन्य निर्माण काय	१०००	११२५
७ उत्पादन म रुकावट न आने देने के लिए कच्चा या अद्ध तैयार माल	५२५	६००
जाड	३३००	४२००

इसम सरकारी क्षेत्र से दिए गए २०० करोड रु० भी शामिल है।

उपयुक्त तालिका के विश्लेषण स पच वर्षीय योजना की विशेषतायें स्पष्ट ह जो निम्नलिखित ह—

समाजवादी कलेवर—

तृतीय योजना का प्रमुख उद्देश्य धन और आय की विषमता को कम करन का उपाय निकालना है जिससे समाज का ढाचा समाजवादी ढग (Socialistic Pattern of Society) हो सके जिसम सब लोगो को पूर्ण प्रगति करने का अवसर मिल सक। समाजवादी ढाचे का अर्थ यह है कि हमारी नीति ऐसी होनी चाहिए जिसस समस्त समाज का कल्याण हो केवल मुट्ठी भर व्यक्तियो का नही।

कृषि को प्राथमिकता—

योजना म कृषि को प्रथम स्थान दिया गया है। अनाज में आत्मनिर्भरता प्राप्त करना और उद्योगो तथा निर्यात के लिए कच्चे माल की पैदावार बढाना तीसरी योजना का मुख्य उद्देश्य है।

तीसरी योजना मे कृषि उत्पादन का लक्ष्य

		वार्षिक	उत्पादन
		१९६० ६१ (अनुमानित)	१९६५ ६६ लक्ष्य
अनाज	(लाख टनो में)	७५०	१,०००–१०५०
तिलहन	( )	७२	९२– ९५
गन्ना (गुड के रूप म)	( )	७२	९०– ९३
कपास	(,)	५४	७२
पटसन	(लाख गाँठो म)	५५	६५

इसके अतिरिक्त फल शाक दूध मछली, मास, अण्डा, नारियल, सुपारी काजू कालीमिर्च तम्बाकू, चमडा और लकडी आदि की भी पैदावार बढाने की पूरी कोशिश की जायगी।

कृषि की अधिक से अधिक उन्नति होनी चाहिए, जिससे गाँव के लोग देश के अन्य लोगों की अपेक्षा पीछे न पड जाएं। योजना में कृषि और सामुदायिक विकास के लिए सार्वजनिक क्षेत्र में १,०२५ करोड सिचाई की बडी और और मध्यम योजनाओ के लिए ६५० करोड रु० रखे गए हैं। इसके अलावा अनु मान है कि लोग निजी ओर से भी इन कामो में ८०० करोड रु० लगायेंगे। यदि आगे चलकर यह प्रतीत हुआ कि गाँवो में और तेजी से उन्नति करने और जनशक्ति का पूरा उपयोग करने के लिए और रुपये लगाने की जरूरत है तो इसका भी बन्दोबस्त किया जाएगा। खेती की पैदावार म ३० से ३३ प्रतिशत की वृद्धि की जाएगी।

इसके अलावा फल, शाक, दूध, मछली, मास, अण्डा, नारियल, सुपारी, काजू, कालीमिर्च, तम्बाखू, चपडा और लकडी आदि की भी पैदावार बढाने की पूरी कोशिश की जाएगी।

अनाज की पैदावार बढाने का लक्ष्य इस हिसाब से रखा गया है कि प्रति व्यक्ति प्रति दिन औसत १५ अप्रैल औस अनाज और ३ औस दाल खाने को मिल सके तथा सकट के समय के लिए भी कुछ अनाज बच जाए कपास की पैदावार का जो लक्ष्य है उसस प्रति व्यक्ति प्रति वप औसत १७।। गज के हिसाब से कपडा मिल सकेगा और निर्यात के लिए भी कुछ बचेगा।

तृतीय योजना क अन्त तक सिंचाई का क्षत्रफल ९ करोड एकड हो जाएगा, जबकि दूसरी योजना के अन्त में यह ७ कराड एकड होगा। करीब ४ करोड एकड में बरानी खेती की जाएगी। १ कराड ३० लाख एकड और जमीन का कटाव आदि से बचाने का काम किया जाएगा। सन् १९६० ६१ तक करीब ३ लाख ६० हजार टन नेत्रजनयुक्त खाद का प्रयोग होन का अनुमान है, १९६५ ६६ में १० लाख टन हो जाएगा। ७।। करोड एकड जमीन में पौधो को बचाने को व्यवस्था की जाएगी। अक्टू ब, १९६३ तक देश के सब गाँवों में सामुदायिक विकास का काम चल पडेगा। सहकारी सगठन बढाया जाएगा और खेती के लिए सहकारी समितियों द्वारा अधिक ऋण दिलवाये जाएँगे। पशुओ की नस्ल सुधार के क्षेत्र में कृत्रिम गर्भाधान के ३७१ केन्द्र कायम किए जा चुकेंगे।

कच्चा पटसन ६५ लाख गाँठ, चाय ८५,००,००,००० पौंड, कपास ७२ लाख गाँठ, कहवा ८०,००० टन, तेल व तिलहन ९२ लाख से ९५ लाख टन, तम्बाकू ३,२५,००० टन, कालीमिर्च ३० हजार टन और लाख ६२,००० टन उत्पादित करने का लक्ष्य रखा गया है। तीसरी योजना में १ लाख से अधिक की आबादी के शहरो के लिए ७५ दूध सप्लाई योजनाएँ चालू की जाएँगी। ३० ग्रामीण क्रामरियाँ और

८ दुग्धजन्य पदार्थों के कारखाने स्थापित किए जाएँगे। मछली का उत्पादन दूसरी योजना में १४ लाख टन से बढ़ाकर १८ लाख टन किया जाएगा।

'बड़े' पैमाने के उद्योग—

तृतीय पंचवर्षीय योजना में उद्योग, बिजली और यातायात के विकास को भी ऊँचा स्थान दिया गया है। सरकारी क्षेत्र में बड़े उद्योगों और खानों के विकास में १,५०० करोड़ रु० लगाये जाएँगे। निजी उद्योगों में १ हजार करोड़ रु० (सहकारी सहायता को छोड़कर) लगाये जाने का अनुमान है।

लोहा और स्पात उद्योग की क्षमता इतनी बढ़ाई जायगी कि बिक्री के लिए एक करोड़ २ लाख टन इस्पात के ढोंके और १५ लाख टन लोहा मिल सके। इन उद्योगों में प्रायः पूरा विस्तार सार्वजनिक क्षेत्र में होगा। भिलाई, रूरकेला और दुर्गापुर के कारखानों को इतना बढ़ाया जायगा कि वे ५५ लाख टन इस्पात के ढोंके बना सकें। बुकारा में चौथा इस्पात कारखाना भी खड़ा किया जायगा।

खास-खास उद्योगों के उत्पादन के लक्ष्य

	वार्षिक	उत्पादन
	१९६०–६१	१९६५–६६
अलमुनियम (हजार टनों में)	१६·०	७५·०
सीमेंट (लाख टनों में)	८८	१३०
कागज (हजार टनों में)	३२०·०	७००
गंधक तेजाब (हजार टनों में)	४००·०	१२५०
कास्टिक सोडा (हजार टनों में)	१२५·०	३४०
शक्कर (लाख टनों में)	२५	३०
कपड़ा (मिल का कपड़ा) (लाख टनों में)	५०,०००	५८,०००
साइकिल (कारखानों में) (हजार अदद)	१,०५०	२,०००
सिलाई की मशीन (हजार अदद)	३००	४५०
मोटरगाड़ी (अदद)	५३,५००	१,००,०००

मशीन बनाने के कारखाने—

तृतीय पंचवर्षीय योजना में भारी मशीनें बनाने वाले, फाउन्ड्री फोर्ज (गढ़ाई और ढलाई), कोयला खोदने की मशीन बनाने वाले और भारी मशीनी औजार बनाने वाले कारखानों को कायम करने की व्यवस्था की गई है। बंगलौर के हिन्दुस्तान मशीन टूल्स कारखाने का उत्पादन दुगुना करने, भोपाल के भारी बिजली के सामान

के कारखाने को बढाने, दो और भारी बिजली के सामान के कारखाने लगाने और ऊँचे दबाव के बायलर और सूक्ष्म यन्त्रों के कारखानों को भी लगाने की योजना है। मशीन बनाने के निजी कारखानों में भी काफी काम होने की आशा है। आशा है कि कागज, सीमेन्ट, चीनी और कपडा प्रायः सब मशीन देश में तैयार होने लगेंगी।

तेल के कारखाने—

अभी तक जो पता लगा है उस हिसाब से नहरकटिया में प्रति वर्ष २७ लाख ५० हजार टन अशोधित तेल जमीन से निकाला जाएगा। इस तेल को साफ करने के लिए नूनमाटी और बरौनी में सफाई के कारखाने बनाए जाएँगे। खंभात में या और जगह जहाँ पर तेल मिलने की आशा होगी, तेल की खोज की जायगी।

विद्युत शक्ति का उत्पादन—

दूसरी योजना में बिजली का उत्पादन क्षमता ५८ लाख कि० वा० है। तीसरी योजना के अन्त तक यह बढा कर १ करोड १८ लाख कि० वा० कर दी जाएगी। अणु-शक्ति से भी ३ लाख कि० वा० बिजली बनाई जायगी। आशा है कि तीसरी योजना में १५ हजार गाँवों और छोटे कस्बों में बिजली लगाई जाएगी, जिससे इनकी कुल संख्या ३४ हजार हो जाएगी। दूसरी योजना के अन्त तक १६ हजार शहरों तथा गाँव में बिजली पहुँच जाएगी। तीसरी योजना में यह संख्या ३४ हजार कर देने का लक्ष्य है। ५ हजार से २० हजार की आबादी के सब कस्बों में बिजली आ जायगी।

रेल, जहाज और मोटर यातायात—

आशा है कि सन् १९६५-६६ में रेलगाडियाँ २३ करोड ५० लाख टन माल ढोएँगी। यह लक्ष्य दूसरी योजना से ४५% अधिक है।

१२०० मील लम्बी नई रेल लाइन बिछाई जाएँगी। १९६०-६१ में पक्की सडकों की लम्बाई १ लाख ४४ हजार मील होगी। १९६५-६६ में यह बढ कर १ लाख ६४ हजार मील हो जायगी। मोटर यातायात का विकास अधिकांश निजी क्षेत्र में होगा। अनुमान है कि किराये पर चलने वाली मोटर गाडियों और ट्रकों आदि की संख्या २ लाख से बढकर ३ लाख हो जाएगी। दूसरी योजना के अन्त तक हमारे पास ९ लाख टन के जहाज होंगे। तीसरी योजना में २ लाख टन के जहाज और लिए जाएँगे।

सडक परिवहन के लिए सन् १९६१ से ८१ तक की एक २० वर्षीय विकास योजना बनाई गई है, जिसका लक्ष्य यह है कि कोई भी गाँव पक्की सडक से ४ मील से अधिक और कच्ची सडक से १॥ मील से अधिक दूर न हो। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए तीसरी योजना में २५० करोड रु० की राशि निर्धारित की गई है। राष्ट्रीयकृत परिवहन के लिए ५,००० और बसें खरीदी जाएँगी।

जहाजरानी का लक्ष्य १४'२ लाख टन का रखा गया है, जबकि दूसरी योजना के अन्त तक देश के पास ९ लाख टन के व्यापारिक जहाज होंगे।

सचार साधन—

तीसरी योजना में २०,००० अतिरिक्त डाकघर २,००० तारघर और २ लाख टेलीफोन कनेक्शन प्रदान किए जायेंगे। तीसरी योजना में बम्बई में एक टेलीविजन सर्विस कायम की जायेगी।

छोटे और ग्रामोद्योग—

छोटे और ग्रामोद्योगों की उन्नति पर भी बहुत जोर दिया गया है। इनके लिए कारीगरों को सिखाने, कच्चा माल और ऋण की व्यवस्था करने का भी अधिक प्रबन्ध किया जाएगा। हथकरघा और घरेलू उद्योग के जरिये सन् १९६५-६६ में ३५० करोड गज कपडा बनाया जाएगा। जबकि सन् १९६० ६१ में इनसे २६० करोड गज तैयार होने का अनुमान है। दूसरी योजना मे ६० उद्योग पुरियाँ बनाई गई है। तीसरी में ३६० बनाई जाएँगी। गाँवों और शहरों दोनों में छोटे उद्योग चलाने और उनको बडे उद्योगों से जोडने का प्रयत्न किया जायगा, जिससे वे बडे उद्योगों के लिए छोटे पुरजे आदि तैयार करें।

२,८०,००,००,००० गज कपडा हाथकरघे व शक्ति करघे से बनाने तथा ७०,००,००,००० गज कपडा खादी के क्षेत्र में बनाने का लक्ष्य रखा गया है। ग्रामोद्योग तथा छोटे उद्योगों से ५८ लाख आदमियों को रोजगार मिलने की उम्मीद है।

वन सम्पदा—

२० लाख एकड भूमि में जल्दी उगने वाले पेड लगा कर ग्राम-वन स्थापित किए जाएँगे। २॥ लाख एकड भूमि पर इमारती लकडी के वृक्ष तथा ४॥ लाख एकड भूमि पर अन्य वृक्ष बोए जाएँगे। १५,००० मील लम्बे वनमार्ग बनाए जाएँगे। तीसरी योजना में ६ लाख एकड भूमि पर भू क्षय रोकने का काम किया जाएगा। रेगिस्तान का फैलाव रोकने के लिए २ लाख एकड भूमि में वन उगाये जाएँगे।

शिक्षा—

तीसरी योजना में ६ से ११ वर्ष की आयु के सब बच्चो को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा देने के लिए ४ लाख अतिरिक्त अध्यापकों की आवश्यकता होगी। सब प्राथमिक स्कूल बेसिक स्कूलो में बदल दिये जायेंगे।

सैकण्डरी स्कूलो में विद्यार्थियो की सख्या १५ प्रतिशत तक पहुँचा दी जायेगी जो फिलहाल १०—११ प्रतिशत है। तीसरी योजना के अन्त में सैकण्डरी स्कूलो की सख्या १८००० पहुँच जायेगी, हायर सैकण्डरी स्कूलो की सख्या ६००० हो जाने की उम्मीद की जाती है।

तीसरी योजना में हायर सैकण्डरी और विश्वविद्यालयो में विज्ञान की शिक्षा पर अधिक बल दिया जायेगा । तीसरी योजना के अन्त तक ११५०० स्नातक इजीनियरिंग कालेजों से और १८६०० स्नातक पाली टैकनीक कालेजो से निकलने लगेंगे, जिनमे भारत की इजीनियरो और प्रशिक्षित व्यक्तियो की आवश्यकता पूरी हो जावेगी ।

स्वास्थ्य—

दूसरी योजना की समाप्ति तक १२६०० अस्पताल व दवाखाने बन चुके होंगे जिनमें १,६०,००० पलगो की व्यवस्था होगी । तीसरी योजना में इनकी तादाद बढा कर क्रमशः १४६०० और १,६०,००० कर दी जायेगी । २२ करोड व्यक्तियो को बी० सी० जी० के टीके लगाये जा चुकेंगे । तपेदिक के मरीजो के लिये ३० हजार पलगो की व्यवस्था कर दी जाएगी ।

तीसरी योजना-काल में कुल १४,००० डाक्टर तैयार हो सकेंगे । तीसरी योजना में १६,००० डाक्टर तैयार किए जाएँगे । सन् १६६६ में कुल डाक्टर ८१००० होगे । फिर भी ६,००० व्यक्तियो पर एक डाक्टर का अनुपात कायम रहेगा ।

रोजगार—

रोजगार के विषय में योजना आयोग ने कहा है कि बेकारी अल्पविकसित देश का चिह्न है और भारत में जनसख्या की वृद्धि की तीव्र गति से यह समस्या अ र गभीर बनी हुई है । अनुमान लगाया गया है कि जिन लोगो को केवल आशिक काम मिला हुआ है उनकी सख्या १॥ करोड है । तीसरी योजना लगभग ६० लाख व्यक्तियो की बेकारी के साथ प्रारभ की जा रही है और इसमें १३५ लाख व्यक्तियो को काम दिये जाने की सभावना के बाद भी बेकारो की सख्या में १५ लाख की वृद्धि और हो जाने की आशका है ।

कृषि की उन्नति से आशिक रोजगारो की समस्या हल होगी, बेरोजगारी की नही । वाणिज्य में विकास से भी आशिक रोजगार की ही समस्या हल होगी । बेरोजगारी की समस्या केवल उद्योगो से ही दूर की जा सकती है, लेकिन वह भी अभी पूर्णत. नहीं । इसलिए वर्षों तक कृषि व उद्योगो के निरन्तर विस्तार तथा उन्नति से ही बेरोजगारी की समस्या हल हो सकती है ।

बेरोजगारी कम करने के लिये आयोग ने निम्न नीतियां निर्धारित की हैं—(१) बडे-बडे उद्योगो के उत्पादन का विकेन्द्रीकरण किया जाए, (२) गांवो में प्रोसेसिंग उद्योग खोले जायें, (३) मानव श्रम के स्थान पर मशीनो का उपयोग वहीं किया जाये, जहां उसमे लागत कम आती हो अथवा समय बचता हो, (४) जिला स्तर पर बनाये गये विकास कार्यक्रमो में रोजगार की आवश्यकताओ के अनुरूप हेरफेर किये जायें

और (५) विशेष निर्माण कार्यक्रम आरंभ किये जायें। इनमें छोटी सिंचाई, भूमि की सफाई, भक्षरण की रोक-थाम, वृक्षों की बुवाई, गांवों में सड़कों का निर्माण व मरम्मत आदि कार्य शामिल है।

सामाजिक सेवा—

६ वर्ष से ११ वर्ष तक के उम्र के बच्चों को अनिवार्य और मुफ्त शिक्षा देने का प्रबन्ध किया जायगा। इस उम्र के स्कूल जाने वाले बच्चों की संख्या ६० से ८० प्रतिशत बढ़ जायगी। अनुमान है कि स्कूलों के छात्रों की संख्या सन् १९६०-६१ में ४ करोड़ १० लाख से बढ़ कर १९६५-६६ में ६ करोड़ हो जायगी।

विज्ञान और शिल्प की शिक्षा का भी विस्तार किया जाएगा। इंजीनियरी और शिल्प विद्यालयों में तीसरी योजना के अन्त तक ५३,५०० छात्र भर्ती हो सकेंगे, जब कि दूसरी योजना में ३७,८०० होते हैं।

रजिस्टर्ड डाक्टरों की संख्या भी ८४ हजार से बढ़ कर १ लाख ३ हजार हो जाएगी। अस्पतालों और दवाखानों की संख्या १२,६०० से १४,६०० और प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों की संख्या संख्या २८०० से बढ़ कर ५,००० हो जाएगी। संतति निरोध केन्द्रों की संख्या भी १,८०० से बढ़ कर ८२०० हो जाएगी।

कम आय वालों के लिए मकान—

कम आय वाले लोगों और औद्योगिक कर्मचारियों के लिए मकान बनाने, गन्दी बस्तियों की सफाई और उनमें सुधार करने और मकानों के लिए जमीन लेने तथा उनका सुधार करने के कार्यक्रमों का विस्तार किया जाएगा। मकान बनाने के लिए धन आवास वित्त निगमों द्वारा दिया जायगा।

स्थानीय विकास कार्य —

देहाती क्षेत्रों में कुछ न्यूनतम सुविधाएँ उपलब्ध हों, इसके लिए तीसरी योजना में स्थानीय विकास का एक कार्यक्रम शामिल किया गया है। इसके अन्तर्गत जिन सुविधाओं की व्यवस्था की जाएगी वे ये हैं: (क) पीने के पानी की सप्लाई, (ख) प्रत्येक गांव को सबसे पास की मुख्य सड़क या रेलवे स्टेशन से मिलाने के लिए सड़कों का निर्माण और (ग) गांवों के स्कूल के भवन का निर्माण, जो सामुदायिक केन्द्र और पुस्तकालय का काम भी देगा।

निजी उद्योगों के लिए अवसर—

तृतीय योजना में निजी क्षेत्र के लिए पर्याप्त अवसर है। योजना की रूप-रेखा में यह स्पष्ट कहा गया है कि निजी उद्योगों के क्षेत्र में इस बात का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए कि अधिक से अधिक उद्योगपति उद्योगीकरण के इन अव

सरो का लाभ उठाएँ जिससे आर्थिक शक्ति को मुट्ठी भर लोगों के हाथ में केन्द्रित होने से रोका जा सके। इसके लिए छोटे उद्योगपतियों को विविध रूपों में प्रोत्साहन और सहायता प्रदान करने की सिफारिश की गई है।

आय तथा सपत्ति में असमानताएँ कम करने के लिए टैक्स सम्बन्धी कदमों के महत्व पर भी बल दिया गया है।

श्रमिक नीति—

उद्योग में शान्ति कायम रखने और उत्पादन में रुकावट न आने देने के लिए पिछले १० वर्षों में सरकार ने हस्तक्षेप का अधिकार अपने पास रखा है, लेकिन अब उद्योगपतियों व श्रमिकों दोनों में यह भावना बढ रही है कि उनके झगड़ों का निबटारा आपस में ही हो जाना चाहिए, जिससे न कवल उद्योग मे शान्ति रहेगी, बल्कि मजदूरों की कार्यकुशलता बढेगी तथा जीवन स्तर उन्नत होगा। इस दृष्टि से सन् १९५८ में एक अनुशासन सहिता अपनाई गई, जिससे हड़ताल और तालाबन्दी आदि की घटनाओं में कमी हुई है। लेकिन पच फैसलों तथा समझौतों का परिपालन न किए जाने की शिकायतें जारी है। यदि ये जारी रहती है तो अनुशासन सहिता बेकार है। इसलिए समझौतों पर अमल कराने के लिए अलग तंत्र कायम किया गया है। मजदूरों को शिक्षित करने तथा प्रबन्ध में उनकी हिस्सेदारी के कार्यक्रम मे भी प्रगति की गई है।

तीसरी योजना में इन्हीं से मिलती-जुलती नीतियां अपनाई जाएँगी। न्यायाधिकरणों तथा अदालतों के द्वार खटखटाने का रिवाज कम किया जाएगा, ऐच्छिक पच फैसले को बढावा दिया जाएगा, वर्क्स कमेटियों को मजबूत किया जाएगा और औद्योगिक सस्थानों मे शिकायतें दूर करने के लिए एक उपयुक्त प्रणाली कायम की जाएगी। ट्रेड यूनियन प्रतिद्वन्द्विताओं को कम करने के लिए और कदम उठाए जाएँगे। श्रमिकों की शिक्षा के कार्यक्रम मे पर्याप्त विस्तार किया जाएगा और प्रबन्ध में मजदूरों की हिस्सेदारी की योजना भी काफी बढाई जाएगी। परिस्थितियों के अनुसार विभिन्न उद्योगों में वेतन निर्धारित करने के लिए वेतन बोर्ड कायम किए जाएगे।

विदेशी व्यापार—

विकास कार्यों की बदौलत हाल के वर्षों में भारत का आयात बहुत बढ गया है। दूसरी योजना के पहले चार वर्षों में औसतन १०५० करोड रुपये का आयात रहा है जबकि निर्यात सिर्फ ६१० करोड रु० रहा है। दोनों में इतने बडे अन्तर को दूर करने के लिए आयात यथासम्भव कम करने तथा निर्यात अधिक से अधिक बढाने के लिए कहा गया है और १० वर्षों के अन्दर-अन्दर विदेशी व्यापार में पूर्ण सतुलन कायम कर देने का लक्ष्य रखा गया है।

निर्यात बढ़ाने के लिये आयोग ने सुझाव दिया है कि जिन चीजो का भारत काफी बडा निर्यातक है उनका निर्यात अभी और बढाया जा सकता है क्योंकि विदेशो मे उनकी सारी मांग को भारत पूरा नही कर पाता है। इसलिए इन चीजो का उत्पादन इतना अधिक बढाने का लक्ष्य रखा गया है कि वे देश की बढती हुई आवश्यकता की भी पूर्ति कर सकें और निर्यात के लिए भी उनकी अधिक मात्रा बच रहे।

आयोग ने कहा है कि अगर कभी प्रतिकूल परिस्थितियो के कारण किसी चीज का उत्पादन घट भी जाए तो भी पेट पर पट्टी बांध कर उसका निर्यात बढाने की कोशिश की जानी चाहिये।

परम्परागत निर्यात को बढ़ाने के साथ साथ इजीनियरिग, रासायनिक तथा चिकित्सा सम्बन्धी चीजो का निर्यात बढाने के लिए भी कहा गया है। तीसरी योजना मे इन चीजो का निर्यात ५–६ गुना बढ जाने की आशा व्यक्त की गई है।

निर्यात वृद्धि के लिये उत्पादन बढाना ही काफी नही है, उत्पादित माल की लागत भी कम होनी चाहिये। इसके लिए सुझाव दिया गया है कि कर और मुद्रा सबन्धी नीतियो मे हेरफेर करके उत्पादित माल का मूल्य प्रतियोगितात्मक रखा जाना चाहिये। इस प्रसग में सकेत किया गया है कि आन्तरिक खपत के लिए बनाई गई चीजो पर उत्पादन शुल्क बढाकर इस उद्देश्य की पूर्ति की जा सकती है।

आयोग ने निर्यात का क्षेत्र बढाने के लिए भी कहा है। उसने कहा है कि हमे केवल राष्ट्रमडलीय देशो के साथ ही व्यापार बढाने की कोशिश नही करनी चाहिये बल्कि पूर्व पश्चिम के सभी देशो के साथ व्यापार बढाने का प्रयत्न करना चाहिये। इस प्रसग मे आयोग ने कुछ देशो के साथ राजकीय आधार पर होने वाले व्यापार को बहुत लाभदायक बताया है।

मूल्य नीति—

१०,२०० करोड रुपये के भारी पूंजी विनियोग से मॅहगाई बढ जाने की आशका के बारे मे आयोजना आयोग ने कहा है कि वस्तुओं के मूल्य अनेक परिस्थितियो पर निर्भर करते है। इसलिये चीजो के दाम अपेक्षाकृत स्थिर रखने के लिये चहुँमुखी कदम उठाने होगे। आवश्यकता और परिस्थितियो के अनुसार टैक्स सम्बन्धी, मुद्रा सम्बन्धी और नियन्त्रण सबधी कदम उठाये जा सकते है।

अनाज, कपडा व चीनी के मूल्य न बढने देने पर विशेष बल दिया गया है और इस प्रसग मे अमरीका द्वारा दी गई १६० लाख टन अनाज की मदद पर सतोष व्यक्त किया गया है। उपर्युक्त सरकारी कार्रवाई, राजकीय व्यापार तथा सहकारिताओ द्वारा वितरण से भी मूल्यो की रोकथाम का सुझाव दिया गया है। अनाज के दाम भी अन्य औद्योगिक और उपभोक्ता सामग्री के मूल्यो का ध्यान रख कर तय किए जाने की

सिफारिश की गई है। मसविदे में कहा गया है कि मूल्यो का ग्रवाछनीय उतार-चढाव हर हालत में रोका जाना चाहिए। मूल्यो का नियमन एक जटिल प्रश्न है, जिसमें ग्रनेक विरोधी चीजो का समन्वय करना पडता है। इसलिए यह ग्रावश्यक है कि मूल्यो का नियमन करने वाले उपायो को प्रभावशाली ढग से ग्रौर तालमेल के साथ काम में लाया जाए।

ग्रन्त मे ग्राशा व्यक्त की गई है कि तीसरी पचवर्षीय योजना देश की ग्रर्थ व्यवस्था को स्वयस्फूर्ति विकास की ग्रोर काफी दूर तक ले जा सकेगी ग्रौर चौथी योजना में ग्रधिक तेजी से विकास के लिए ग्राधार तैयार हो जाएगा।

योजना के लिए साधन—

दूसरी योजना में लगी कुल ६७५० करोड रु० की पूंजी की तुलना मे तीसरी योजना में १०,२०० करोड रु० की पूंजी लगाने के लिए घरेलू साधन जुटाने का जी जान से प्रयत्न करना पडेगा। तीसरी योजना में राष्ट्रीय ग्राय ५ प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से बढने की ग्राशा है। ग्रधिक पूंजी लगाने के लिए इसी साधन से धन जुटाना होगा।

योजना का उद्देश्य यह है कि तीसरी योजना के ग्रन्त मे राष्ट्रीय ग्राय का १४ प्रतिशत हमारी ग्रर्थ-व्यवस्था मे लगे। दूसरी योजना के ग्रन्त में राष्ट्रीय ग्राय का ११ प्रतिशत ग्रर्थ-व्यवस्था में लगा होगा। इस समय राष्ट्रीय ग्राय की बचत की दर लगभग ८ प्रतिशत है। इस बचत को दर को भी तीसरी योजना के ग्रन्त तक बढा कर ११ प्रतिशत करना होगा।

पहली दो योजनाग्रो की भाँति तीसरी योजना के ग्रारम्भ के समय भी विदेशी मुद्रा कम रहेगी। विदेशी मुद्रा कोष से धन लेने की ग्रागे गुंजाइश नहीं है। इसके ग्रलावा दूसरी योजना के ग्रारम्भ में वस्तुग्रो का जो मूल्य था उससे ग्रब उनका मूल्य २० प्रतिशत ग्रधिक है। इन दोनो बातो को ध्यान में रखते हुए इस बात की जरूरत है कि ऐसे खर्च न किये जाएँ जिनसे मुद्रा स्फीति हो।

इसके विपरीत, ग्रब जैसी स्थिति है वह पिछली योजनाग्रो के ग्रारम्भ की स्थिति से कई प्रकार से ग्रच्छी है। पिछले दस वर्षों में उद्योग ग्रादि में ग्रधिक पूंजी लगायी गयी है। सिंचाई, बिजली ग्रौर परिवहन में भी काफी प्रगति हुई है। दूसरी योजना मे, सरकारी क्षेत्र में, ग्रनेक कार्यक्रम ग्रभी पूरे हीं किये जाने थे, जबकि तीसरी योजना में वे पूरे हो चुकेंगे ग्रौर उनसे लाभ होने लगेगा। इस लाभ को ग्रागे पूंजी के रूप में लगाने के लिये लेना होगा। शिक्षा और प्रशिक्षण की जो सुविधाएँ अब तक दी गयी है, वे तीसरी योजना में ग्रौर भी बढेगी ग्रौर इनसे भविष्य में ग्रधिक लाभ होगा। नए-नए उद्योग धन्धे शुरू करने की क्षमता रखने वाले ग्रौर प्रबन्ध का ग्रनुभव रखने वाले लोगों की संख्या भी बढ रही है ग्रौर वे ग्रब ग्रधिक संख्या में उपलब्ध है।

इस बात पर जोर दिया गया है कि योजना के लिये साधन जुटाने की समस्या को ऐसा नहीं मानना चाहिये, जैसे वह किसी स्थिर और निश्चित कोष से धन लेने की बात हो। एक हद तक अर्थ-व्यवस्था के साथ साथ साधन भी बढ़ते हैं। पिछले कुछ वर्षों में जो कठिनाइयाँ रही हैं, उनके बावजूद इतनी प्रगति हुई है कि भविष्य में पहले से अधिक प्रयत्न करना सम्भव हो गया है। गरीबी और कम बचत के विषावत चक्र को तभी तोड़ा जा सकता है जब पूरे साधन जुटाये जायें और जो लाभ होता रहे वह निरन्तर उत्पादन के लिये लगाया जाता रहे।

सरकारी क्षेत्र में तीसरी योजना में जो खर्च होगा उसके लिये धन जुटाने की योजना निम्नलिखित सारिणी में दी गयी है :—

	(करोड़ रु० में) दूसरी योजना	तीसरी योजना
१. वर्तमान करों के आधार पर राजस्व से बचने वाला धन	१००	३५०
२. वर्तमान आधार पर रेलों से मिलने वाला धन	१५०*	१५०
३. वर्तमान आधार पर सरकारी उद्योगों से मिलने वाला धन	—†	४४०
४. सार्वजनिक ऋण	५००	८५०
५. अल्प बचत	३८०	५५०
६. भविष्य निधि आदि से मिलने वाला धन	२१३	५१०
७ अतिरिक्त कर और सरकारी उद्योगों से लाभ में बढ़ती से मिलने वाला धन	१०००	१६५०
८ विदेशी सहायता जिसकी बजट में व्यवस्था की गई है	९८२	२२००
९ घाटे की अर्थ-व्यवस्था	११७५	५५०
जोड़—	४६००	७२५०

अतिरिक्त कर—

पांच वर्ष की अवधि में १,६५० करोड़ रु० के अतिरिक्त कर लगाने का जो लक्ष्य है, उसकी पूर्ति योजना की सफलता के लिए बहुत आवश्यक है। भारत में इस समय करों से राष्ट्रीय आय का लगभग ८·५ प्रतिशत भाग मिलता है। कर-उपलब्धि में सामान्य रूप से जो बढ़ती होगी और तीसरी योजना में जो अतिरिक्त कर लगाए

* यात्रियों के किराए और माल भाड़े में हुई बढ़ती को मिलाकर
† ऊपर (१) में सम्मिलित

जाएंगे, उनसे यह सख्या बढ़कर ११ प्रतिशत हो जायगी। विकास कार्यों की तेज गति को देखते हुए इसको बहुत अधिक भार नहीं माना जा सकता। फिर भी १६५० रु० के अतिरिक्त कर लगाने का लक्ष्य पूरा करने के लिए केन्द्रीय और राज्य सरकारों को बहुत प्रयत्न करना पड़ेगा। इस कर राशि में से एक तिहाई के कर राज्य लगाएंगे।

तीसरी योजना के कारण प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष, दोनों प्रकार के कर बढ़ाने और सरकारी उद्योगों का लाभ बढ़ाने की जरूरत होगी। जहाँ तक आय कर और निगम-कर का प्रश्न है, कर प्रशासन को कड़ा करके उनकी वसूली बढ़ानी होगी, कम्पनियों के खर्च के ब्यौरे पर नजर रखनी होगी और एस कदम उठाने होंगे, जिनसे वे कर से बच न सकें। अप्रत्यक्ष करों और वस्तुओं के मूल्य में बढ़ती होने में निश्चय ही लागत और मूल्य दोनों बढ़ेंगे, पर यह ऐसा त्याग है जो करना ही पड़ेगा।

घाटे की अर्थ व्यवस्था—

अप्रत्यक्ष करों और घाटे की अर्थव्यवस्था से मूल्य पर जो असर पड़ता है, उसमें भेद करने की आवश्यकता है। अप्रत्यक्ष करों द्वारा मूल्य बढ़ जाने से मुद्रा-स्फीति की सम्भावना कम रहती है जबकि घाटे की अर्थ-व्यवस्था से यह सम्भावना और बढ़ती है। अतः यह विचार है कि तीसरी योजना में केवल ५५० करोड़ रु० की घाटे की अर्थ व्यवस्था की जाए जबकि दूसरी योजना में १,१७५ करोड़ रुपये की घाटे की अर्थ-व्यवस्था की गई थी।

विदेशी मुद्रा—

तीसरी योजना में बड़ी तेज गति से उद्योगों की स्थापना के कारण विदेशी मुद्रा की काफी मात्रा में आवश्यकता पड़ेगी। यह अनुमान है कि योजना में १,६०० करोड़ रु० विदेशी मुद्रा के रूप में व्यय होंगे। इसके अलावा लगभग २०० करोड़ रु० के पुर्जे आदि भी आयात करने की जरूरत पड़ेगी जिससे देश में मशीनी सामान का उत्पादन बढ़ाया जा सके। इस प्रकार योजना के लिए २,१०० करोड़ रु० की विदेशी मुद्रा की आवश्यकता होगी।

योजना में नए कामों के लिए जितनी विदेशी मुद्रा की जरूरत होगी उसे छोड़ भी दिया जाए तो भी तीसरी योजना की अवधि में पिछले ऋणों और ब्याज की अदायगी के कारण ५०० करोड़ रु० की जरूरत रहेगी। इस प्रकार तीसरी योजना में विदेशी मुद्रा की आवश्यकता बढ़कर २,६०० करोड़ रु० हो जायगी। इस जोड़ में वह ६०० करोड़ रु० भी शामिल किए जा सकते हैं जो पी० एल-४८० के अन्तर्गत अमरीका से मिलेंगे। इस प्रकार तीसरी योजना की कुल जरूरत ३२०० करोड़ रु० हो जाती है।

विदेशो से सहायता के बारे मे निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। योजना का रूप ऐसा रखना होगा कि उसमे घटबढ की जा सके। सरकारी और गैर सरकारी दोनो क्षेत्रो में कार्यक्रम इसी आधार पर शुरू किए जा सकते है कि बाहर से निश्चित रूप से क्या सहायता मिल सकती है। इसके लिए कार्यक्रम पहले से तैयार करके रखने होंगे, जिससे आवश्यक विदेशी मुद्रा मिलते ही उन्हे पूरा किया जा सके। विदेशी मुद्रा के उपयोग मे देर करने से तीसरी योजना मे उत्पादन बढाने का कार्यक्रम गडबड मे पड जायगा।

भुगतान के विषय मे देश को जिन कठिनाइयों का सामना करना पड रहा है वे कोई स्थायी या आकस्मिक नहीं हैं बल्कि हमारी विकास की क्रिया का ही एक अग हैं कुछ समय तक अत्यधिक आयात की जरूरत बाहरी सहायता से पूरी की जा सकती है। परन्तु यह याद रखना जरूरी है कि यह असन्तुलन धीरे-धीरे कम होता जाय और कुछ समय बाद समाप्त हो जाय। इसका यह अर्थ नही है कि एक खास अवधि के बाद विदेशो से धन का आना रोक दिया जाएगा। व्यापार में लगी पूंजी आती ही रहेगी और आती ही रहनी चाहिए, परन्तु विशेष सहायता कार्यक्रमो पर निर्भरता धीरे धीरे कम हो जानी चाहिए और कुछ समय बाद समाप्त हो जानी चाहिये।

निजी क्षेत्र मे पूंजी केवल सगठित उद्योगो, खान, बिजली और परिवहन में ही नही लगी हुई है, बल्कि कृषि, ग्राम और लघु उद्योगो, दहात और शहरो म मकान बनाने मे भी लगी हुई है।

तीसरी योजना में निजी पूंजी मुख्यत: बडे और मध्यम उद्योगो मे बढाई जाएगी। दूसरी योजना में बडे और मध्यम उद्योगो मे ७०० करोड रु० की पूंजी लगाई गयी जबकि तीसरी योजना मे १,०५० करोड रु० की पूंजी लगाने का विचार है। अन्य क्षेत्रो मे अधिक पूंजी लगायी जाएगी, परन्तु अनुपात से वह कम होगी।

योजना के अन्तर्गत निजी क्षेत्र का उद्योगो मे फैलने का काफी अवसर है। इसका मुख्य कारण यह है कि अब तक की पचवर्षीय योजनाओ के परिणामस्वरूप उद्योगो के बढने के अवसर ज्यादा हो गये है। इस विषय में जो नीति है उसका मुख्य लक्ष्य यह है कि इन अवसरो से छोटे और मध्यम दर्जे के उद्योगपति लाभ उठाएं और आर्थिक शक्ति थोडे से लोगो के हाथ में केन्द्रित होने की प्रवृत्ति पर शुरू में ही अकुश लग जाए।

जनता को लाभ

तृतीय पचवर्षीय योजना से जनता को प्रत्यक्ष लाभ इस भांति मिल सकेगा—

(१) एक करोड ३५ लाख बेकारो को रोजगार मिलेगा।

(२) छः से ग्यारह वर्ष के प्रत्येक बच्चे को निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा।

(३) अनाज का उत्पादन बढ़ने से प्रति व्यक्ति को प्रति दिन १५ औंस गेहूँ, चावल और तीन औंस दाल मिल सकेगी।

(४) प्रति व्यक्ति को प्रति वर्ष १७·५ गज सूती कपड़ा सप्लाई किया जा सकेगा।

(५) दो हजार नये अस्पताल खुलने से इलाज कराने में अधिक आसानी होगी।

(६) ग्रामों की जनता को पानी और सफाई की व्यवस्था तथा पास के स्टेशन या कस्बे तक सड़क।

(७) १५ हजार अन्य ग्रामों तथा कस्बों को बिजली मिलेगी।

(८) प्रत्येक गांव में स्कूल और पुस्तकालय बनेगा।

तृतीय योजना—एक दृष्टि—

तीसरी योजना के कुछ मोटे लक्ष्य यह निर्धारित किए गए हैं कि खाद्यान्न का उत्पादन बढ़ा कर दस साढ़े दस करोड़ टन वार्षिक कर दिया जाये, इस्पात उत्पादन की क्षमता १ करोड़ टन हो जाये, विद्युत् उत्पादन की क्षमता ५८ लाख किलोवाट से बढ़कर १ करोड़ १८ लाख किलोवाट हो जाये, १ करोड़ ३५ लाख और व्यक्तियों के लिये रोजगार का प्रबंध किया जाये, देश के तमाम गांवों को सामुदायिक विकास योजनाओं और सहकारी समितियों के अन्तर्गत ले आया जाय, ६ से ११ वर्ष तक की उम्र के तमाम बच्चों के लिये निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था की जाये और तमाम देहाती क्षेत्रों में पीने का शुद्ध पानी और दूसरी न्यूनतम सुविधायें सुलभ की जायें। तीसरी योजना के प्रारम्भ में कृषि विकास को प्राथमिकता दी गई है। राजकीय और निजी दोनों क्षेत्रों में २,४५० करोड़ रुपये की राशि रखी गई है जो दूसरी योजना की राशि से काफी अधिक है। दूसरी योजना के काल में खाद्यान्न का उत्पादन बढ़ा है, किन्तु वह देश की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये अभी काफी नहीं है और देश को अभी भी विदेशों से अन्न का आयात करना पड़ रहा है। कृषि उत्पादन पर विशेष ध्यान देकर देश को इस लज्जाजनक स्थिति का जल्दी से जल्दी अन्त करना ही चाहिये।

तीसरी योजना के प्रारम्भ में उद्योग और खनिज विकास और सामाजिक सेवाओं के लिये बढ़ी हुई धनराशि की व्यवस्था की गई है। उद्योग और खनिज विकास के लिये तीसरी योजना में राजकीय क्षेत्र के लिये १,५०० करोड़ और निजी क्षेत्र के लिये १,००० करोड़ की राशि रखी गई है। सामाजिक सेवाओं की राशि को ८६० करोड़ से बढ़ाकर १,२५० करोड़ कर दिया गया है। विकास की रफ्तार को तेज करने के लिये तीसरी योजना का आकार स्वभावतः दूसरी की अपेक्षा बड़ा होगा और विभिन्न मदों के लिये बढ़ी हुई धनराशि की व्यवस्था करनी होगी।

तीसरी योजना के साधन जुटाने के लिए १,६५० करोड रुपया अतिरिक्त करो द्वारा सग्रह करने की कल्पना की गई है। इसमें राजकीय उद्योगो की आय भी शामिल होगी। जनता पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष करो का भार काफी बढा हुआ है। अतः अतिरिक्त करो की बात जनता के लिए विशेष रूप से चिन्तनीय होगी। यह आज नही कहा जा सकता कि इस साधन से इतनी बडी राशि का सग्रह कहाँ तक व्यावहारिक होगा और उसकी लोकमानस पर क्या प्रतिक्रिया होगी। तीसरी योजना में घाटे की राशि को १,१७५ करोड से घटा कर ५५० करोड कर दिया गया है। यह एक बुद्धिमानी का निर्णय है। कारण घाटे की अर्थ-व्यवस्था कीमतो को बढाने में सहायक होती है। दूसरी योजना के काल में कीमतो में चिन्ताजनक वृद्धि हुई है और इस कारण देश को अनेक विकट समस्याओं का सामना करना पड रहा है। इस बारे में देश को भविष्य मे अधिक सतर्क रहना होगा। तीसरी योजना विदेशी सहायता की उपलब्धि पर भी काफी हद तक निर्भर करेगी। विदेशी सहायता की राशि २,६०० करोड रुपया अनुमान की गई है। देश को तीसरी योजना के काल में बेरोजगारी की समस्या का भी सामना करना पडगा, जो काफी विकट बनी हुई है। दूसरी योजना के अन्त मे ९० लाख व्यक्ति बेरोजगार रहेंगे। राष्ट्रीय आय और व्यक्ति की औसत आय में जो भी वृद्धि हुई हो, किन्तु बेरोजगारी का व्यापक रूप में रहना देश के लिए चिन्ता का ही विषय होगा।

कुछ सुझाव—

भारत की प्रथम पचवर्षीय योजना मे कृषि को प्रथम स्थान दिया गया था। दूसरी योजना में इसका स्थान द्वितीय था, किन्तु यह नही कहा जा सकता कि उससे सम्बद्ध विभिन्न मदो के लिये कुछ कम धन राशि रखी गयी थी। तृतीय पचवर्षीय योजना मे उद्योग और कृषि के सतुलित विकास की बात कही गयी है। इससे स्पष्ट है कि कृषि पर योजना के पाँच वर्षों में विपुल व्यय किया जायगा। जो देश मुख्यतः कृषि पर ही निर्भर हो उसे यह व्यय करना भी चाहिये, परन्तु इसके साथ यह देखना भी आवश्यक है कि वह तरीके से किया जा रहा है और फलदायी सिद्ध हो रहा है अथवा नही।

ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था तथा ग्राम जीवन और कृषि से सम्बद्ध विभिन्न साधन स्रोतो के सगठन का बहुत निकट का सम्बन्ध है। यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नही होगा कि ग्रामीण अर्थ व्यवस्था वस्तुतः उक्त सगठन पर ही निर्भर करती है। आज ग्रामीण अर्थ व्यवस्था मे जो दोष दृष्टिगोचर होता है और किसान सुखी एव समृद्ध प्रतीत नही होता उसका एकमात्र कारण उक्त सगठन की शिथिलता है। इसलिये आवश्यकता इस बात की है कि उसे मजबूत बनाया जाय।

ग्राम और कृषि जीवन के जिन विविध अंगों का ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था से सम्बन्ध है उनमें पशु-पालन, ग्रामोद्योग, सिचाई की व्यवस्था, ऋण प्रबंध, बीज तथा खाद वितरण और माल की बिक्री आदि सभी आते हैं। पिछली दो पंचवर्षीय योजनाओं में इन सभी मदों के लिए पर्याप्त धन की व्यवस्था की गयी थी और इस बार तृतीय योजना में उन मदों को बहुत महत्व दिया गया है। पर अनुभव से यह स्पष्ट है कि केवल महत्व देने और धन की व्यवस्था कर देने से ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था उन्नत नहीं हो सकती। उसके लिये यह देखना होगा कि जो रुपया खर्च किया जा रहा है वह कहीं अपव्ययित तो नहीं हो रहा अथवा इस प्रकार तो नहीं लग रहा है कि उसमें कुछ फल की प्राप्ति न हो सके। इसके अतिरिक्त इस बात का भी ध्यान रखना होगा कि आदमियों सहित सब साधन स्रोतों का अधिक से अधिक उपयोग किया जा सके।

सरकार कृषि क्षेत्र में जितना रुपया लगा रही है उस अनुपात से वह फलदायी नहीं हो रहा, यह बात अत्यन्त स्पष्ट है। इसलिये और रुपया लगाने से पूर्व यह विचार किया जाना चाहिये कि इसका क्या कारण हो सकता है। कारण का पता स्थिति के अध्ययन से ही लग सकता है। इसलिये श्री एस० के० पाटिल ने दिल्ली में कृषि विषयक आर्थिक अनुसंधान केन्द्र का उद्घाटन करते हुए उक्त अध्ययन पर जो बल दिया है वह सर्वथा उचित है। इस अध्ययन से जहाँ वर्तमान ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था के दोष दृष्टिगोचर हो सकेंगे वहाँ उसे उन्नत करने के लिये नयी नयी प्रेरणाएँ और सुझाव भी प्राप्त हो सकेंगे।

तृतीय योजना की सफलता के लिये प्रशासनिक कुशलता पर बल

तीसरी योजना के मसविदे में नीति संबंधी वक्तव्य में यह भी कहा गया है कि सरकारी उद्योगों का संचालन खर्च कम से कम और आय अधिक से अधिक करने की दृष्टि से होना चाहिए तथा सब स्तरों पर प्रशासन में ईमानदारी और काम को शीघ्र निबटाने की भावना होनी चाहिए। प्रशासन में कुशलता लाने के लिए आयोग ने सुझाव दिया है कि मंत्री, सचिव तथा विभागीय अध्यक्ष सब स्तरों पर लोगों के लिए काम निश्चित कर दिया जाना चाहिए और उन्हें बता दिया जाना चाहिए कि उन्हें अमुक समय में वह काम पूरा करना है। एक बार नीति निर्धारित कर दिए जाने के बाद उस पर अमल का काम उसके लिए जिम्मेदार व्यक्तियों पर पूर्णतः छोड़ दिया जाना चाहिए। प्रशासनिक व्यक्तियों का उचित ढंग से प्रशिक्षण किया जाना चाहिए, दैनिक काम को जल्दी निबटाया जाना चाहिए, जिसके लिए प्रक्रियाओं को आसान करना जरूरी है। जिन कर्मचारियों का काम जनता से वास्ता पड़ना है, उनमें ईमानदारी तथा सौजन्य की अत्यन्त आवश्यकता है।

अनुत्पादक निर्माण कार्यों में अधिकतम किफायत की सिफारिश करते हुए आयोग ने कहा है कि ठेकेदारों पर बहुत अधिक निर्भर नहीं किया जाना चाहिए। जहां

सम्भव हो वहाँ विभागीय आधार पर काम कराया जाना चाहिए और विभागीय श्रमिकों को उनके काम के हिसाब से मेहनताना दिया जाना चाहिए। श्रमिकों की सहकारी संस्थाओं तथा ऐच्छिक संगठनों को निर्माण कार्य करने के लिये प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

जनता का सहयोग

आयोग के प्रस्तावों में जनसहयोग के क्षेत्र में ऐच्छिक संगठनों के महत्व को स्वीकार किया गया है। इनके लिए तीसरी योजना मे १० करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई है।

तीसरी पंचवर्षीय योजना में पहली दोनों योजनाओं की अपेक्षा कृषि उत्पादन में वृद्धि की रफ्तार दुगुनी रखी गई है। इसके लिए सिंचाई, उपजाऊ मिट्टी को बहने से रोकने, खाद आदि के निर्माण में ग्रामीणों के अथक सहयोग की जरूरत होगी। इसलिए गावों में काम करने की इच्छा रखने वाले हर व्यक्ति को काम दिया जाना चाहिए और उत्पादन बढ़ाने में उपलब्ध मनुष्य शक्ति का अधिकतम प्रयोग किया जाना चाहिए। इसके लिए सुझाव दिया गया है कि देहाती क्षेत्रों के हर विकास खंड में किए जाने वाले कार्यों का क्रम बनाया जाना चाहिए, फिर उस गाव-कार्यक्रम में विभक्त किया जाना चाहिए और इस प्रकार सब परिवारों को उसकी जानकारी दी जानी चाहिए।

योजना के कार्यक्रमों को अधिक लोकप्रिय बनाने के लिए विश्वविद्यालयों तथा कालेजों में और अधिक योजना मंच कायम करने तथा केन्द्रीय व राज्य सरकारों के प्रचार कार्यक्रम को बढ़ाने का सुझाव दिया गया है।

STANDARD QUESTIONS

1. Explain clearly the principal Objectives of the Third Five Year plan. How our country is likely to be benefitted by them ?
2. Bring out clearly the salient features of the Third Five Year Plan.
3. Write an essay on "Priorities under the Third Five Year Plan."
4. Attempt a critical note on the essential features of the Draft outline of the Third Five Year Plan Have you any suggestions to offer ?

UNIVERSITY OF SAUGAR

B Com Preliminary Exam 1960

Economic Problems of India

GROUP II PAPER II

Time—3 hrs *Max Marks —100*

Answer any five *questions All questions are of equal value*

1 Mention the causes and economic effects of endless sub division and fragmentation of land in India Discuss remedial measures

2 How did the problem of Rural indebtedness become severe in India ? What has been its effect on India s agricultural economy ?

3 Examine the role of co operative movement in Agricultural Credit in India

4 The Indian moneylender holds its own in Agricultural Finance Discuss

5 ' The Community projects and Rural Extension Services are expected to revitalise the Indian villages and give a new life to the rural population'' Discuss

6 Discuss the development of Iron and Steel or Sugar industry in India

7 Discuss the main problems facing the Indian Cotton or Jute industry

8 How far the establishment of the Industrial Finance Corporation has been helpful in solving the problem of long term finance for industries in India ? Discuss

9 Discuss the problem of landless labourers in India and suggest measures for solving the problem

10 Discuss the population problem in India

VIKRAM UNIVERSITY

B Com (Part II) Three Year Degree Course Exam 1960

First Paper—Economic Problems of India

(1) What is an economic holding ? How would you judge whether a holding is an economic or uneconomic one ?

(2) 'The Indian agriculturist is born in debt, lives in debt and dies in debt ' Comment

(3) How far is it true to say that credit is only a part of co-operative economic development ?

(4) Review the present and future prospects of sugar industry

(5) What are the objectives of the Industrial Finance Corporation ? Estimate its contribution to the provision of Industrial Finance

(6) What do you understand by Co operative Farming ? Does it increase the efficiency of agriculture ?

(7) Trace the history of Labour Movement in India

(8) What are the defects of rural banking in India ? In What directions have they been remedied ?

(9) Describe the essential features of Decimal Coinage ? what are the general effects of the introduction of Nava Paisa

VIKRAM UNIVERSITY

B Com (Part II) Three Year Degree Course

Supplementary Examination, 1960

APPLIED ECONOMICS AND PLANNING

First Paper -Economic problems of India

Attempt any five questions All questions carry equal marks

1 Account for the low agricultural productivity in India

2 Examine the measure for the consolidation of holdings What is the progress in this direction in your State ?

3 Analyse the causes of rural indebtedness in India To what extent has this problem been solved successfully ?

4 The establishment of credit societies in the villages is a sine qua non of the organisation of credit in the context of planned investment in the development schemes ? Explain

5 Review the present position and the future prospects of the iron and steel Industry

6 What are the agencies providing industrial finance ? Describe the working of any one principal agency

7 What are community development projects and what are their economic consequences ?